बालकाण्ड खण्ड २ के प्रकरणोंकी सूची

प्रकरण	पृष्ठाङ्क
श्रीभरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद	१—४१
तदन्तर्गत उमा-शम्भु-संवादका हेतु	४२—४७७
१— सती-मोह-प्रसंग	४३—१९२
(क) श्रीशङ्करजीकी (अगस्त्य-सत्संग करनेपर) श्रीरामदर्शनकी उत्कण्ठा तथा दर्शन	४०—८०
(ख) सतीजीका सन्देह	८०—८५
(ग) शिवजीका सतीजीको समझाना	८५—९०
(घ) सतीजीका श्रीरामजीकी परीक्षाको जाना	९५—१११
(ङ) सतीजीको रामप्रभावदर्शन	१११—१२५
(च) सती-चरितसे शिवजीको संताप और सतीत्यागका संकल्प तथा समाधि	१२८—१४९
(छ) सतीका पश्चात्ताप	१४९—१५५
(ज) शिवजीका समाधिसे जागना, दक्षयज्ञमें सतीजीका जाना तथा देहोत्सर्ग करना	१५५—१९२
२— श्रीपार्वती-जन्म-तप-(उमा-चरित-) प्रकरण	१९२—२६३
(क) हिमाचलके यहाँ जन्म और उससे शैलराजकी शोभा	१९२—२०१
(ख) देवर्षि-आगमन, भविष्य-वर्तमान-कथन, नामकरण, तपके लिये प्रेरणा तथा आशीर्वाद	२०१—२३५
(ग) मेना-हिमाचल-संवाद	२३५—२४२
(घ) मेना-पार्वती, पार्वतीजीका स्वप्न सुनाना और तप करने जाना	२४२—२४९
(ङ) पार्वती-तप	२४९—२६३
३— श्रीशम्भुचरित	२६०—४२८
(क) शम्भु-दिनचर्या	२६४—२६८
(ख) श्रीराम-शिव-संवाद	२६८—२७६
(ग) सप्तर्षिद्वारा पार्वतीप्रेमपरीक्षा और उसका समाचार शिवजीको	२७६—३०८
(घ) तारकासुरके अत्याचारसे देवताओंकी ब्रह्माजीसे पुकार और कामदेवका शिवजीके पास भेजा जाना	३०८—३२०
(ङ) कामदेवका प्रथम बारका प्रभाव-विस्तार	३२०—३३२
(च) ,, द्वितीय ,, ,,	३३४-३३५
(छ) ,, तृतीय आक्रमण, शिवसमाधिका छूटना, कामका भस्म होना और रतिको वरदान	३३७—३४७
(ज) उमा-शम्भु-विवाह-प्रसंग	३४७—४२८
(१) ब्रह्मादि देवताओंका शिवजीके पास जाकर विनती करना और उनका विवाह स्वीकार करना	३४७—३५२
(२) सप्तर्षियोंका गिरिजा और हिमाचलके पास जाना, लग्न धराना	३५२—३६२
(३) बारातकी तैयारी और प्रस्थान	३६१—३७५
(४) हिमाचलके यहाँकी तैयारी	३७६—३८१
(५) बारातकी अगवानी	३८१—३८७
(६) मेना आदिका वरको देखकर दु:खी होना, भवानीका समझाना तथा नारदादिका ऐश्वर्य कथन करना	३८६—४०३
(७) जेवनार, पाणिग्रहण, बिदाई	४०३—४२३
(८) षड्वदनका जन्म और चरित	४२४—४२८
४— श्रीभरद्वाजजीका शिवचरितमें प्रेम	४२८—४३९
५— कैलास-प्रकरण तदन्तर्गत उमा-शम्भु-संवाद एवं शिवगीता	४४५—५८९
(क) कथाका स्थान	४४५—४५१
(ख) शिवस्वरूप-वर्णन	४४९—४५६
(ग) श्रीपार्वतीजीका शिवसमीप जाना और विनम्रतापूर्वक अपना संदेह प्रकटकर उसके मिटानेकी प्रार्थना करना	४५५—४७६

प्रकरण पृष्ठाङ्क

(घ) श्रीपार्वतीजीके प्रश्न ....४७७—४८९
(ङ) प्रश्नोत्तर-प्रकरण ४८९
(च) दाशरथि रामसे भिन्न राम कहनेवालोंको फटकार तथा श्रीरामजीके परात्पर स्वरूपका वर्णन ....५२२—५७७
(छ) श्रीपार्वतीजीके भारी मोहकी निवृत्ति और कृतज्ञता-प्रकाश करके उनका पुनः प्रश्नोत्तरकी प्रार्थना करते हुए ब्रह्मके तन धारण करनेका हेतु पूछना इत्यादि........५७७—५८९

६— अवतार-हेतु (तीन कल्पोंके अवतारका हेतु) ....५८९—७०२
(क) साधारण हेतु ....५८९—५९७
(ख) 'जय-विजयको सनकादिक-शाप' के कारण रामावतार ....५९८—६०५
(ग) वैकुण्ठवासी भगवान्‌को वृन्दाका शाप होनेसे रामावतार ....६०५—६१०
(घ) हरगणों तथा क्षीरशायी भगवान्‌को नारदशाप होनेसे रामावतार ....६१०—७०२
(१) नारदजीकी समाधि और कामदेवकी असफलता ....६१६—६३२
(२) कामके पराजयसे नारदको मोह; शिवजी तथा क्षीरशायी भगवान्‌से स्वयं कामपराजयकी कथा कहना ....६३२—६४४
(३) भगवान्‌की प्रेरणासे मायानगर आदिकी रचना, नारदका विश्वमोहिनीसे विवाह करनेके लिये भगवान्‌से उनका रूप माँगना और भगवान्‌का परम हित करनेका वचन देना ....६४५—६६३
(४) नारदको बंदरका मुख देना, हरगणोंका नारदके साथ स्वयंवरमें विप्रवेषसे जाना और कूट करना, नररूपधारी क्षीरशायीको विश्वमोहिनीका जयमाल पहनाना और साथ चल देना ....६६३—६७२
(५) नारदकी व्याकुलता, हर गणोंको शाप ....६७१—६७५
(६) भगवान्‌का विश्वमोहिनी और श्रीसहित मार्गमें मिलना, नारदका शाप देना, भगवान्‌का मायाको दूर करना ....६७५—६८६
(७) नारदका पश्चात्ताप, शंकरशतकका उपदेश, हरगणोंका शापानुग्रह ....६८६—७०२

७— ब्रह्मके अवतारका कारण श्रीमनु-शतरूपाप्रेम ....७०२—७७५
मनु-शतरूपा-प्रकरण
(क) मनु-शतरूपाका वंश ....७०२—७०४
(ख) ,, ,, वैराग्य और नैमिषारण्यमें ब्रह्मदर्शनार्थ तप ....७०८—७२३
(ग) आकाशवाणी, दर्शनकी प्रार्थना, विश्ववास भगवान्‌का दर्शन देकर मनभावता वर माँगनेको कहना और उनके प्रेमवश उनके पुत्र होना स्वीकार करना ....७२३—७७५
भानुप्रताप-प्रकरण ....
(क) केकयराज सत्यकेतुका पुत्रको राज्य देकर वनको जाना ....७७५—७७९
(ख) भानुप्रतापका दिग्विजय करके धर्मपूर्वक राज्य करना ....७७८—७९१
(ग) भानुप्रतापका शिकारके लिये विन्ध्याचलके महावनमें जाना इत्यादि ....७९०—७९६
(घ) ,, ,, मुनिवेषधारी शत्रुको महामुनि समझ तृष्णावश उसके जालमें फँसना ....७९६—८४४
(ङ) कालकेतुके और कपटमुनिकी बातचीत ....८४४—८४९
(च) कालकेतुके उपायसे भानुप्रतापको घोर शाप और कुलसमेत नाश ....८४९—८६५
(छ) रावण आदिका अवतार ....८६५—८७२
(ज) रावणका तप, वरदानप्राप्ति, विवाह, लङ्का और कुबेरपर विजय ....८७२—८८७
(झ) रावणका परिवार, निशाचर सुभटोंका बल, दिग्विजय ....८८७—९००
(ञ) निशाचरोंका अत्याचार, पृथ्वीकी सुर-मुनि-ब्रह्मादिसे पुकार ....९०१—९१३
(ट) ब्रह्मस्तुति और आकाशवाणी ....९१३—९३६
(ठ) ब्रह्माका पृथ्वीको समझाना, देवताओंको वानरतन धारणकी शिक्षा इत्यादि ....९३६—९४१

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

खण्ड २ में आये हुए कुछ काममें आनेवाले शब्दों एवं विषयोंकी अनुक्रमणिका

विषय	दोहा-चौपाई आदि	विषय	दोहा-चौपाई आदि
अंग (अक्षौहिणी एवं चतुरंगिणीके)	१५४.३	अजर-अमर	८२.७
,, (राजा वा राज्यके)	१३९.५, १५४	अतर्क्य	१२१.३
,, (छविके नौ अंग)	१४७.१	अति पुनीत	१५२
,, (भाग्यके)	१५४	अति	५४.१-२
अघ	११५.१	अति सभीतकी दशा	५५.४—६
अंश	१४४.६, १५२.२, १८७.२, ८	अत्यन्त शोभामें विधिके बनानेकी उत्प्रेक्षा	९४.८
,, (महत्, विभूति)	१५२.२	अद्वैतमतानुयायियोंमें दो भेद	११८.१
अंशोंसहित अवतारका कारण	१५२.३	अद्वैत सिद्धान्तका ब्रह्म, सगुण, निर्गुण, माया	११६.१-२
'य' अव्ययके अर्थ	११९.८	अधम अभिमानी	१२१.६
अकाज	१६१.१	अधमता	,,
अकिंचन	१६१.३	अधर्मकी उत्पत्ति कामनाओंके विकाससे	१२१.६
अकोविद	११५.१	अधर्मसे पहिले वृद्धि, अन्तमें मूलसहित नाश	१८०.२
अक्षौहिणी-महा-अक्षौहिणी	१५४.३	अधिकारी रामचरितके	११०.३
अखण्ड	१४४.४	,, को ज्ञान देनेसे वह बढ़ता है	७६.१
अगवान	९५.२	अध्यात्म, वाल्मी० रा० और मानसके भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण	४९.७-८
अगस्त्यजी	४८.१-२	अध्यास बिना अधिष्ठान, कल्पित पदार्थ, अधिष्ठाता तीनोंके हो नहीं सकता	११७
,, का आश्रम	५०.१-२	अनन्तका कथन यथाश्रुत यथामति होता है	११४.५
,, के यहाँ सभी देवता आते थे, सबके बैठनेके लिये पृथक्-पृथक् आसन बने थे	४८.१-२	अनन्यगति	१४५.५
,, और शिवजीने ही सत्संगकी याचना श्रीरामजीसे की और किसीने नहीं	४८.१-२	अनरण्य महाराजका रावणको शाप	१८२.१२
अग्निका प्राकट्य चार प्रकारसे	१८५.५—८	अनाथहित	१४६.३
अगुण (अव्यक्त हैं गुण जिसके)	११६.१	अनुग्रह (शाप)	१३९.४
,, ('मायिक गुणोंसे रहित' अर्थ मानसके कतिपय प्रसंगोंमें संगत नहीं)	,,	अनुमान	११८.४, १२१.४
,, सगुण कब होता है	११५.५, ११६.१-२	अनुरागसे कार्यकी सिद्धि	१४३
,, ,, की एकता	११६.३	अनुष्ठान अधिकार-प्राप्त्यर्थ	७४.४—७
,, ,, विवेक	११५.५, ११६.३	,, की पूर्तिके समय अनेक विघ्न आते हैं	८१.६
,, ,, में भेद नहीं (मुनि, वेद, पुराणके प्रमाण)	११६.१-२	अनुष्ठान और सांगता	७४.४—७
अज्ञ	११५.१, ११७.१	अनुहारि	४७, २४०
अघके अर्थ	१०४.७	अपकीर्ति होनेपर प्रतिष्ठितका कर्तव्य	१३६.३, १५८.५
अघटित	११५.५	अपछरा	८६. छन्द
अघारी	१८६. छंद ३	अपमान (जातिमें) असह्य होता है	६२.६
अचरका सजीवत्व	८४		
,, सेवा करना	१०७.७		
अज	१०८.८, ११६.२		

विषय	दोहा-चौपाई आदि
अपतत्त्वमें चतुर्थांश तेज और चतुर्थांश पृथ्वीतत्त्व	११६.३
अपारा	५१.४
अभिलाषकी परिभाषा	१४४.४
अभिषेक (शिव-अभिषेक)	७४.४—७
अमर	८२.७
अमरावती	१७८.७
अयोध्या, काशी आदिमें मरणसे मुक्तिपर शंका	४६.३—५
अरुणोदय, उषः, प्रातः	४४.८
अरूप	११६.२
अर्थ, धर्मादि और उनका समयसे सेवन	१५४
अर्थ	४५.१-२
अर्थपञ्चक	४४.१-२
अलख	११६.२
अलखगति	१०८.८
अवडेरना	७९.८
अवतारका हेतु कृपा, करुणा	११८.१—३
,, के अनेक हेतु हो सकते हैं	१२४.५
,, ,, चार कार्य	१२१
,, ,, प्रमाण	१४४
,, निज भक्तोंके लिये	५१. छन्द, १४४.७
अवतार चार प्रकार (आवेश, प्रवेश, स्फूर्ति, आविर्भाव)	१८५.५
अवतार विप्र सुर सन्त धेनु हित	१८६. छंद २
अवतार अपने रसस्वरूपका अनुभव करानेके लिये	४९.७-८
अवतारोंके मुख्य और गौण दो कारण	१२१.१-२
अवतार चौबीसवीं चतुर्युगीमें	४६.७
अवधेशकुमार	४६.७, २७
अवसर जानि	८९.७, १०७.१
,, पर कार्य करनेसे सिद्धि और प्रशंसा	१०७.१
अवसर चूकनेपर पछतावा	४९.१-२
अविगत	१८६.२
अविद्या (पञ्चपर्वा)	११५.७-८, १३६.५—८
अशंका	७२.४, ११३.१
अशिव वेष असुरोंको मोहित करनेके लिये	१६.१, ९५.५-६

विषय	दोहा-चौपाई आदि
अश्रद्धासे किया हुआ कर्म व्यर्थ	४४.३—५, ८, ५.८
अश्रु आदि आनन्द और शोकके	५५.६
अष्टावक्र वेदान्त और मानसके दृष्टान्त	११८.३
असम्भावना, सम्भावना, दारुण-असम्भावना	११९.८
असत्य, झूठ, मृषा, मिथ्या	१, ११२, ११७.७-८
अहंकार, अभिमान	११६.७
अहमिति	,,
आकाशवाणियाँ और उनका रहस्य	१८७.८
आकृतिको शब्दोंका वाच्य माना गया है	११२.१-२
आज्ञा शिरोधार्य की जाती है	८१.१
आचार्याभिमान परम गुण है	८०.८
आततायी	१८३.६
आदर, बड़ आदर	६६.६
आदर्श मनुष्यचरित ही अनुकरणीय है	४८.५—९
आदिशक्ति	१८७.८
आदिशक्ति और उनकी कला, अंश, विभूति ३३ शक्तियाँ	१४८.२
आदि सृष्टि	१६२
आत्मरूपमें ८ आवरण	११७.३-४
आनना (लाना)	११३.५
आपुनु	१५९
आभूषण (शंकरजीके)	९२.५
'आयसु धरि सीसा' बड़ोंकी आज्ञाके सम्बन्धमें कहनेकी रीति	१६०.१
आर्त अधिकारी	११०.२
आर्त प्रपन्न	५९.५—७
आसन और उनके धर्म	१०६.५
आसनके भेद	५८.५—८
,, स्पर्शसे हानि-लाभ	१०६.५
आस्तिक मूढ़	७१
इन्दु	१०६.६
इतिहास	५८.६, ६५.४
,, भारतके और आजकलके इतिहासमें महदन्तर	६५.४
इन्द्र, श्वान् और युवान् एक सूत्रमें	१२५
इन्द्रको काक और श्वान्की उपमा	१२५.७-८
,, वीररसके अधिष्ठाता	१२२.४-६

विषय	दोहा-चौपाई आदि
इन्द्रपद वैषयिक सुखकी पराकाष्ठा	१२५.७-८
इन्द्रिय और उनके देवता	११७.५-६
इहाँ	५२.५, ९४.२
ईश, ईश्वर	४९.३, ६९, १८७.१
ईश्वरका चरित अनुकरणीय नहीं है	४८
ईश्वरोंके वचन तथा उन कर्मोंका जो उपदेशानुकूल हो अनुकरण करना चाहिये	६९
ईश्वरके जागनेसे जगत्‌की रक्षा	६०.३
ईश्वर ही सब करता है तब हम पुरुषार्थ क्यों करें	१२४
ईश्वर-जीवमें भेद	५६.४, ७०. १-२
ईश्वर अद्वैत सिद्धान्तका विद्योपाधि ब्रह्म है	११६.१
ईश्वरके शुद्ध सात्त्विक गुण मायाके ही गुण होनेपर भी ईश्वरके ही माने जाते हैं (अद्वैत)	११६.१-२
उछाह	८८
उत्तम वक्ता अभिमानरहित बोलते हैं	११४.५
उत्साहसे धन-धर्मकी वृद्धि	४४.८
,, भंगसे धन-धर्मकी हानि एवंनिष्फलता	४४.८, १५५
उदार	११०.५, १२०, १८७.२
उदासी वेषमें मृगादिका वध कैसे?	४९.७-८
उपकार परम धर्म है	८४.१-२
उपदेश—नारद-मोह, मनु-शतरूपा, भानुप्रताप और भुशुण्डि-चरित प्रसङ्गोंसे	१७६.१—५
उपदेशकी रीति	१२७
उपनिषद् और उनके छः विभाग	४६.१—३
उपरोहित	१६९.४
उपवन	८६.७
उपाधि चार प्रकारकी	१४४.५
उपासकका स्वभाव	१२५.३-४
'उमा' के अर्थ	५३.१, ५७.३, ६७.५—७, ७१.४, ७४. ७, १२०.८
,, के प्रभावसे गुण-कर्म-कालादि बाधा नहीं करते	६६.१-२

विषय	दोहा-चौपाई आदि
उमा-शिव-चरित रूपकमें कुण्डलिनी महायोगका वर्णन	६
उष: अरुणोदय, प्रात:	४४.८
एहू (यहो)	५९.८
ऐश्वर्य (षट्)	१७७
ऋषि, मुनि	४४.७, ६८. ४, ७, ८
कंकण	९२.२
कंत, कान्त	७१.४
कंधर	१४७.७
कछु काल	१४२.१—४, १५१
कटकई	१५४.५
कथन छः प्रकारके लोगोंका सर्वथा उपेक्षणीय है	११३.२
कथा-कीर्तन-श्रवण विश्राम है	१०६.३-४
,, का स्थान कैसा चाहिये	१०७.१-२
,, के अधिकारी-अनधिकारी	४८.४, ११० १—३
,, प्रसङ्गके बीचमें दूसरी बात न करे	६०.५
,, माहात्म्य	४७.६-७
,, से मार्ग जल्दी चुक जाता है	५८.५
,, पुनीत पुरानी	१५३.१
,, सुरधेनु	११३
कन्याके विवाहमें घर, वर, कुल देखा जाता है	७१.३
कन्याका वर कैसा हो?	७१.३
कन्याका विवाह गुणहीनके साथ न करे	७१.४
कन्या किसको न दे	७१.३
कपट और चरित	६५.४
कपटी लोग बात छिपानेपर जोर दिया करते हैं	१६८.४
कमलके धर्म	१४६
कमलासन	५८.७
कर जोड़ना प्रसन्न करनेका ढंग	२८५
करण	११७.५
कराला देवी	४७.६
करिकर सरिस	१४७.८
करुणा	९७. छन्द, १४८.८
कर्तव्य करना धर्म है, फल हरि-इच्छानुसार होगा	६२

विषय	दोहा-चौपाई आदि
कर्म (भाग्य)	९७.७
,, फलाशा न रखकर करनेसे चित्तकी शुद्धि	४४, १०
कर्म नित्य, नैमित्तिक, काम्य	४४, ९, १०
,, सामान्य और विशेष	४४, १०
,, के भेद-प्रभेद	४४, ९
,, के साथ क्रियाका सम्बन्ध	१०६.७
,, ज्ञान उपासनाका क्रम	४३
,, की गति कठिन है	१६३.५
कर्मके तीन भेद	१६३.५
कर्म-धर्म (भगवदनर्पित) व्यर्थ एवं भवबन्धनकारक	१५६.२
कर्म-धर्म और विद्या कहलाने योग्य कर्मादि	१८१.१
कलश (मंगल)	९१.८
कल हंस	८६ छन्द
कला	८६, १०७, १२६.४
कला (षोडश कला)	१८६
,, (बारहमें ही पूर्णता)	१८७.२
कल्प और मन्वन्तरोंके नाम	७५.४
कल्पित	११५.५
कल्पोंकी संख्या और नामोंमें भेद	१६४
कवि तुलसीदास	
कवि रंगमंच और द्रष्टाओंके बीचमें उपस्थित रहकर द्रष्टाओंको रहस्य बताता चलता है	४६.६—८
कवि तुलसीदास अत्युक्तिका समाधान प्रायः ऐश्वर्य दिखाकर करते हैं	९४
,, हर रसको उसके पूरे जोरमें लिखकर अन्तमें महाकाव्य-कलाके (शान्तरसके) उच्च शिखरपर पहुँचा देते हैं	९४, १०७.१
केवल वार्ताएँ नहीं लिखते किंतु सारी प्रगतियों आदिका भी वर्णन कर देते हैं	,,
,, ,, प्रसंग और ध्वनिसे घटनास्थलकी सूचना देते हैं	१८७
,, केवल भावार्थ भेदवाले शब्दोंके प्रयोगसे गूढ़-भाव-परिस्थिति आदि जना देते हैं	१०५.८

विषय	दोहा-चौपाई आदि
कविकी कलामें हास्यपात्रके प्रति प्रेम बना रहता है	४७.२
,, की सावधानता	४९.७-८
,, की कविताकी मूल प्रवृत्ति है कि लोग क्षणिक रसाभासोंमें न भूलें, नित्य सत्य-रस प्राप्त करें	४९.७-८
,, की भावना	,, ,,
,, के बार-बार श्रीरामके वास्तविक रूपके स्मरण करानेके कारण	,, ,,
,, यह नहीं मानते कि कोई चरित्र हर समय ही हास्य-चरित्र रहता है	७८.७-८, ९९.१-२
,, की हास्यकला अधिक शिक्षाप्रद है	,, ,,
,, ,, काव्यकलाका कमाल है कि हास्यरसको भी महाकाव्यकलामें निबाहा है	७९
,, काव्यकलामें कलाकारी और कारीगरी साथ-साथ चलती है	८१.४-५
,, के 'कुकड़ूँकू' बोलनेवाले चरित्र भी प्रायः रंगमंचसे हर्षित विदा होते हैं	८१
,, के शृंगाररसमें मर्यादाका अवलंघन नहीं है	८४
,, की कलाकी विशेषता कि संकेत ऐसे होते हैं कि रसभंग न हो	९२.४
,, ने मानव-प्रकृतिका अभ्यास करनेके लिये पर्याप्त सामग्री दी है	९६.५-६
कवि तुलसी और बर्नार्डशा	१५२
,, शैक्सपियर	१५२
,, तुलसीदासकी कलामें फिल्म और सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास कलाके गुण भरे हैं	१५२
,, ही महाकाव्य और नाटकी कलाओंके एकीकरणमें पूर्ण सफल हुए	१५२

विषय	दोहा-चौपाई आदि
कविने इस सफलताके लिये किन युक्तियोंका प्रयोग किया	१५२
,, की प्रहसनकला स्वाभाविक है	१३९
,, की प्रहसनकलाका मूल प्रेम है	१३९
,, के मालोपमाओंकी विशेषता	१४६
कश्यपजी मनु हुए	१८७.३
,, और मनु दोनों प्रजापति हुए	१८७.३
कहत सुनत	४८.५
कहना किनका न सुने	११५.७-८
कहहु और सुनहु तीन-तीन बार	४७
'कानसे सुनकर' का भाव	१६०.८
कामकला	१२६.३-४
कामक्रीड़ा	१२६.५
कामदेव वासुदेव भगवान्‌का अंश	८८.१-३
,, कृष्णपुत्र दूसरे जन्ममें	८८.१-३
,, का मुख्य शत्रु ब्रह्मचर्य	८४.७
,, ,, स्थान मन है	८३.५
,, की सेना और सहायक	८४.३-४
,, के धनुष और पञ्चबाण	८३.७-८
,, के पंचबाण धारण करनेके भाव	८३.७-८
,, ,, सेनापति, सेना	८६
,, ,, तीनों आक्रमणोंका मिलान	८७.८
,, ,, बाण ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, वैष्णवास्त्रसे अधिक भयंकर	८७.३
,, को आम और बौर प्रिय	८७.१-२
,, ब्रह्माका वरदान	८७.३
,, ,, शाप	८४.४
,, ने शिवजीके अतिरिक्त विश्वम्भरको क्यों सताया?	८४.५
काम राजा	८४ छन्द
कामरूप (वन, सागर आदिके दो-दो रूप)	६५.६, ९४.४
कामारि	१२०
'कामोद्दीपन त्रिविध समीरसे'	८६ छन्द
,, (मरे हुए मनमें) करनेवाली वस्तुएँ	८६.८
कारण	१६५.१
,, तीन प्रकार (उपादान, निमित्त, साधारण)	१८६ छन्द ३

विषय	दोहा-चौपाई आदि
कालकी प्रवृत्ति चैत्र शुक्लसे हुई	१६२
काल पाकर जन्म	१७६.१
कालिका	४७.६
काशीमें मुक्ति, श्रुतियोंमें विरोध	४६.३—५
किन्नर और गंधर्वके दो-दो भेद	६१.१, १०५
कुण्डल	९२.२
कुन्द इन्दु दर और नीलसरोरुह नीलमणि नील नीरधर	१०६.६
कुम्भकर्णकी स्त्री आदि	१७८.४
कुबेर	१७६.४, १७९. २,५,८
,, पर रावणकी चढ़ाईका कारण	१७९.८
,, की माताका नाम	१७९.२
कुसमय	५०.१-२
कूजना	१२६.२
कृतज्ञ	७६.५-६
कृपा गुण	७६.५, ११८.३
कृष्णतनय प्रद्युम्न	८८.२
केकय	१५३.२, १५३
केकयकुमार अश्वपति	१५३
केतु	१५६.५
केतु पताका	९४ छन्द
कैमुतिकन्याय	११६.४
कैलास शिवभवन है	४८.६
,, के अधिकारी-अनधिकारी	१०६.१
कोसल देश	११८
कौतुक शब्द नारद-सम्बन्धमें	६६.५
कौसल्याजीके पिताका नाम	११८
क्रोधके आठ साथी	६३
,, तीन प्रकार	८७ छन्द
क्लेश आनेपर दुष्कर्मोंका स्मरण होता है	५७
खर-शूर्पणखा रावणके भाई-बहिन	१७६.१—५
खरभरु	८४ छन्द
गंधर्वके दो भेद, प्रधानोंके नाम	६१.१
गणेशपूजन	१००
गत	४५.७
गहगहे	१५४.४
गाना, गावा, गाई	४५, ११८.४
गाली विवाहकी	९९ छन्द
गिरापति	१०५.४

विषय	दोहा-चौपाई आदि
गिरा सुहाई, गिरा गम्भीर	५७.४, १८६
गिरा (बर गिरा)	१७४.४
गिरिजा	७६.८
गिरिदुर्ग	१७८.१
गिरिनाथ	४८.६
गिरीश	५५.८
गीताके 'परित्राणाय……।४।८।' और मानसके 'असुर मारि……। १२१।' का मिलान	१२१
गुण चौदह हैं	६७.१
गुण (राजाओंके छ: गुण)	१५३.१—४
गुणखानि	१४८.३
गुणगानमें कथा और भक्ति दोनों आ जाते हैं	४८.५
गुण दोष, दोष गुण	६६, १३०
(दिव्य) गुणोंकी दो अवस्थाएँ, व्यक्त और अव्यक्त	११६.१-२
(सात्त्विक) गुण जीवको मायासे छुड़ानेवाले हैं	११६.१-२
गुण आत्मारामको भी खींच लेता है	१६४.४
गुरु	८०.८
गुरुके वचनपर दृढ़ विश्वास चाहिये	८०.८
,, की अवज्ञाका फल दु:ख है	८०.८
,, का दर्जा माता-पितासे ऊँचा	७७.३
गुरुजनोंका आदर न करने वा अपमान करनेसे आयु, श्री आदिका नाश	१२८.५-६
गुरुजनोंका वचन शिरोधार्य करना चाहिये	१३७
गुरु सुर संत पितृ विप्र (पञ्चदेव)	१५५.४
गुहा	१२५.१
गूढ़ गुण	४७.४
गोतीत	१८६ छन्द २
गोसाईं	५६.२
गोस्वामी तुलसीदासजीका दृष्टिकोण और भावना	४९.७
गोस्वामी तुलसीदासजीकी शैली—	
(१) जहाँ विशेष माधुर्यका वर्णन आता है वहाँ सूत्रधारकी तरह साथ ही रहकर ऐश्वर्य भी दिखा देते हैं	४९.५-६, १४४.४
जहाँ सगुणमें भ्रम सम्भव है वहाँ ऐश्वर्य-वाचक अगुण, अखण्ड आदि विशेषण देते हैं	१४४.१—४
(२) पाठकको बराबर सावधान करते जाते हैं जिसमें वह भगवान्‌को मनुष्य न समझ ले। मनुष्य समझना भारी प्रमाद और भवसागरमें डालनेवाला है	४९.५-६
(३) जो बात कहीं फिर लिखनी आवश्यक है उसे दोनों जगह न लिखकर केवल दूसरी जगह लिख देते हैं	६५.५-६
(४) जब कोई बात दो या अधिक जगह लिखनी है तो प्राय: उसका कुछ अंश एक जगह और कुछ दूसरी जगह लिख देते हैं। पाठक अर्थ लगाते समय सबको सर्वत्र समझ लें	८४.३-४
(५) प्रसिद्ध कथाओंको बहुत संक्षेपमें कहते हैं	६५.४
(६) जिस विषयको एकसे अधिक बार लिखना है उसे प्राय: एक प्रधान स्थानपर लिखते हैं और अन्यत्र वही वर्णन वहाँके दो-एक शब्दोंसे जना देते हैं	९४.२-३
(७) महाकाव्यकला और नाटकीय कलाका एकीकरण कर दिया है जो पाश्चात्त्य कवियोंको असम्भव प्रतीत होता था	४६.६—८
(८) ब्रह्मके अनेक विशेषण हैं, कुछ-कुछ अनेक जगह कहे हैं	१४४.१—४
(९) दो भाइयोंकी बड़ाई-छोटाई प्राय: क्रमसे जना देते हैं	१३२.४—६
(१०) मर्यादाकी रक्षा सर्वत्र की है	१३५.१—३
(११) हास्यकलामें हास्यपात्र-का हित रहता है	१३९
(१२) ऐश्वर्य कहकर उसे माधुर्यमें स्थापित करते हैं	११९.१-२
(१३) ऐश्वर्य दिखानेमें	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
श्रीरामजीको सच्चिदानन्द कहते हैं	११६.५-६
(१४) एक उपमा या उत्प्रेक्षासे जब वक्तव्यकी पूर्ति नहीं होती तब और उपमाओं वा उत्प्रेक्षाओंका प्रयोग करते हैं	
(१५) वैभवका उत्कर्ष दिखानेमें इन्द्रके वैभवकी उपमा देते हैं	१३०.३
(१६) जिस विषयके वर्णनमें जहाँ जितनी आवश्यकता समझते वहाँ उतनी उपमाएँ देते हैं	१४६
गोस्वामीजीकी सावधानता	१४८.८, १५१.१—३
गौरी	७८.१
ज्ञान	४४
,, लौकिक-अलौकिक	१५१.२
,, (विमल ज्ञान)	४५
,, गुणधाम	११७.७-८
,, सब सत्य है	११७
ग्रन्थका प्रयोजन	४७.१
ग्रामवासिनियाँ और नारद	१३७.१—५
ग्रीवा	१४७.७
चकोर चन्द्रकी उपमा	४७.७
चक्रवर्तीके लक्षण	१५९.४
चतुरंगिणी सेना	१५४.३
चतुर, चतुराईका प्रयोग	४७.३
चन्द्र अवतंस	८८.६
चन्द्रमाकी उत्पत्ति अत्रिके अश्रुजलसे	७२.८
,, ,, भगवान्के मनसे	७२.८
,, में छबिके अङ्ग	१४७.१
चपरि	१५६
चरण पकड़ना (बारंबार) प्रेम, सुख और कृतज्ञतासूचक	११९
चरण पकड़ना, आर्तवचन बोलना, क्षमा-प्रार्थनाकी मुद्रा	१२६
प्रार्थनाकी मुद्रा आर्तदशामें भी होती हैं	१६७
चरणोंमें पड़ना करुणारसकी पूर्णता और प्रार्थनाकी सीमा	७१.७
,, को हृदयमें धरनेके भाव	७४.१
चरित देखकर मोह और	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
[illegible]	१४१.५
[illegible]	४९
[illegible]	७४.४—७
[illegible]	९८.३, १५२.४
[illegible]	४९
[illegible]	७९.१-२
[illegible]	७९.१-२
[illegible]	४७.६
[illegible]	५८.१
[illegible]	१७२.७
छबिके [illegible]	५०.१, १४७.१
छबि [illegible]	१४८.५
,, में [illegible]	,, ,,
,, ,, का [illegible]	,, ,,
,, के [illegible]	,, ,,
छबिसिन्धु	५०.१-२
छल क्या है?	१०४.४—६
छीर (क्षीर) नीरकी प्रीति	५७
जन्तु	११९.१
जगतजनक	६४.५
जगत्में जो सत्यत्व भासता है वह जगत्का नहीं है श्रीरामका है	११७.७
जगत् है ही नहीं (अद्वैतमतमें) भ्रान्तिमात्र है, असद्रूप स्वप्नवत् मिथ्या है	११८.१
,, और मायाके सम्बन्धमें दो मत दिखाये	११८.१—३
,, और ब्रह्मका शरीर-शरीरी सम्बन्ध है	११८
,, त्रिकालमें रामरूपके अतिरिक्त कुछ नहीं है	११७
जगत्का भासना असत्य है न कि जगत्	११७
,, भगत्स्वरूप ही सत्य है, उसका नानात्व भ्रम है	११७
,, का नानात्व भ्रम मिथ्या है	११७
(स्त्री-पुत्रादि यावत् देहव्यवहार) को सत्य मानना भ्रम है	११७
जगदात्मा	६४.५
जगमूला	१४८.२
जड़	६९, ११७.१-२
(श्री) जनक-सुनयनाजी	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
पूर्वजन्ममें कौन थे	१५२.४
जनायी	१६१.७
जप	८४.७-८
जपयज्ञका शास्त्रीयविधान	७४.४—७
जपके अर्थ	५०.३
जय जय	१८६ छन्द, १-२
जय विजय	१२२.४-५
,, ,, को शाप क्या और क्यों हुआ?	१२२.४-५
,, ,, शाप हरि इच्छासे	१२३.१-२
जलंधर	१२३.७-८
जलमें मुँह देखनेका निषेध	१३५.७
जलचरकेतू	१२५.६
जलपना	११५.५
जहँ तहँ	५५.१
श्रीजानकी-वियोग कभी नहीं होता	११७.१-२
जाया	९७.३
जीव (के अर्थ)	६९
जीव और ईश्वर	६९, ७०.१-२
जीवका स्वरूप	५८.५—८
जीवके सात धर्म	११६.७
,, अपनी प्रवृत्तिसे ही पापकर्म करता है	१३८.४
,, कर्मानुसार तन पाता है	५५.२
,, की पाँच कोटियाँ	५८.८
,, ध्यानावस्थामें सर्वज्ञ, स्वतः सर्वज्ञ नहीं	५३.१—४
,, सहज स्वरूपमें लीन हो सकता है पर ईश्वर नहीं हो सकता	६९
जीव ब्रह्मका प्रतिबिम्ब	११७.५,
जूझना	१५४.३
जोगी (योगी)	९३ छन्द
जोषिता (योषिता)	११०.१
झूठ, मृषा, मिथ्या आदिके अर्थ	११७.७-८
,, (परिवर्तनशील, परिणामी)	११७.,,
ठयना	१३३.२
डमरू	९२.५
तत्त्व (प्रकृतिके)	४४
,, (गूढ़ तत्त्व)	१००.१—३
तत्त्वज्ञानी ऊँचे भक्तोंके	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
सिद्धान्त समझनेके लिये हृदय शुद्ध चाहिये, यह कैसे हो?	१२४
तत्त्वोंकी संख्यामें मतभेद और उनका समन्वय	४४
,, का विभाग जानना वेदान्तनिरूपणके लिये आवश्यक	४४
तप	४४.१
,, का अर्थ त्रिदेवके सम्बन्धमें	१६२.२
,, (शमदमादिरहित) तामस है	४४.१, २-३
,, शारीरिक, वाचिक, मानसिक	४४.३
तम, धूम, धूरिके दृष्टान्त	११७.३-४
तम, मोह, महामोहमें भेद	११५.७-८
तर्क	१२१.३
,, मन, बुद्धि, वाणीद्वारा ही होता है	१२१.३
तात	४७.५, ९०.७, १६०.३
तान, तान तरंग	१२६.५
'तापस सम दम' से उपदेश	४४.२, २-३
'तापस बेष बिसेषि उदासी' और मृगवध	४९.७-८
तामस देह	१२२.५
तारकासुर (मत्स्य, शिव, पद्मपुराणों आदिमें)	८२.५
,, का जन्म पार्वतीजन्मके पश्चात्	८२.५-६
,, तेज प्रताप बल	८२.५-६
तीर्थवासीकी दिनचर्या	१४३
तीर्थस्नानका नियम	१४३.५
'तु' अव्यय कई अर्थ देता है	९४.६
तुलसी-'कवि तुलसी', 'गोस्वामी तुलसीदास' में देखिये—	
तेज, प्रताप	८२.७-८
तेज, प्रताप, शीलकी उपमा	१५३.३
'तेज विशाल' श्रीरामजीका कैसा था?	७६.५
तोरन	९४ छन्द
'तोर' एक वचनका प्रयोग	४५.७-८
तोही प्यारसूचक	१२७.७-८
त्रिकूटाचल	१७८.५
त्रिदेव	८८.६—८
,, श्रीरामसेवासे प्रभुत्वको प्राप्त हैं	१४६.१—५
त्रिदेवोंकी उत्पत्ति श्रीभरतादि-अंशोंसे	१४४.६, १८७.२

विषय	दोहा-चौपाई आदि
त्रिनयन शिवजीके तीन नेत्र	८७.६
त्रिपाद्विभूतिमें जाकर पुनरागमन नहीं त्रिपुर आराती	५७.८
,, आख्यान (भागवत)	४८.६
,, ,, (महाभारत)	४८
,, बाणासुरके	४८
त्रिपुरारि	४६, ४८.६, ६२, ११२.६, १३८.७
त्रिपुरासुर	४८.६
,, वधमें युद्ध-सामग्री	४८.६
,, के पुत्र	४८
त्रिपुर और मन	१०६.८
त्रिवाचा, त्रिसत्यम्	१५२.५
त्रिविध सृष्टि	१८६ छन्द
त्रेतायुग	४८.१-२
त्रैलोक्यविजयी कौन है?	१२७.१—४
थापना	१२१
दंड	४८.८, १११, १५४.७
दंडक वन	४८.८
दक्ष	४८.६, ६०.५—८
,, का शिवजीसे वैर और शाप	६२.१—३
,, ,, नारदको शाप	७९.१
,, की कन्याओं और दामादोंके नाम	४८.६, ६२.१—३
दक्षकुमारी	४८.६, ५५ ७, ६२, ४९
दक्षके अभिमानका प्रमाण	६०.६-७
दक्षपुत्रोंकी कथा	७९.१
दक्षपुत्रोंसे नारदके दस प्रश्न	९७.१
दक्षयज्ञके आचार्य भृगु थे	६४
,, पद्मपु० और मानसमें भेद	६१.२
,, प्रसंगमें 'सुर' शब्दका प्रयोग	६१.४
,, गंगाद्वारमें	६०.६
दरस, दरस देखना या दिखाना	११३.३
दर्शनकी उत्कण्ठामें 'भीर लोचन'	८९.१
दशमुख और दशरथ ही क्यों रामावतारके लिये होते हैं	१७६.२
दशरथराउ और अवधभुआल	१५१

विषय	दोहा-चौपाई आदि
दशोपचार पूजन	४५.५-६
दादुर जीह (अग्निका शाप)	११३.६
दाशरथी रामसे भिन्न कोई राम नहीं यह शिवसिद्धान्त है	११४.६—८
दिक्पाल	९२
दिलीप महाराजकी नन्दिनी-सेवा	४८.७
दिशा (दश)	८६.७
दीन	११५.४
दुःख और सुख	६८.१
दुराधर्ष	८६.४
देवजातियाँ	६१.१—४, ९९.६
देवताओंके सभी नाम सदा सिद्ध रहते हैं	५३.१
,, वाहन आदि	९३
देवताओंका रावणके भयसे पक्षीरूप धर लेना	१८२.९
देववधूटियोंको पार्वतीजीका शाप	१८२.१—५
देवसर्ग आठ प्रकारका	६१.६
देवहूतिकी कन्याएँ और जामाता	६४
देह-स्वभाव बिना हरि भक्तिके नहीं जाता	१७६.१—५
देही (=देह)	६४.६, १३४.८
दैव-आसुर-सम्पदा	११३.८
दैव-पुरुषार्थ-वाद	६८, ६९.१
दैव-वाद	१२४
दैव-बल ही बलवान् है	५६.६
दैव भी पुरुषार्थकी सहायतासे बड़ा होता है	६९.१
दोष गुण और गुण दोष	६६
द्वादशाक्षर मन्त्र	१४३
धन्य-धन्य	११२.६
धरा	१८४.४
धरि	५१.८, छन्द
धर्म और अधर्म	१५५
,, उत्साहरहित होनेसे निष्फल	,,
,, धर्मकी परिभाषाएँ शास्त्रोंमें	४४
,, की व्याख्या श्रीकृष्णद्वारा	४४
,, ,, धर्मव्याधद्वारा	४४
,, ,, हंस भगवान्द्वारा	४४
,, ,, स्वायम्भू मनुके अनुसार	४४
,, के आठ अङ्ग	४४
,, ,, चार चरण	८४.७, १५३.३

विषय	दोहा-चौपाई आदि
धर्मके लक्षण, धर्मका मूल	६४.१
,, नाम क्यों पड़ा	४४
धर्मका पतन देखकर धर्मात्मा अधीर न हों—	१८३
धर्म-विधि	४४
धर्म (राजाओंके)	१५५.५
,, से सुख और भक्ति	१५५.२
धाम (सप्तपुरियों) में अधमकी मुक्ति होनेसे क्या 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा' आदि वाक्य व्यर्थ ही हैं?	४६.४
धीरज	८४.७
धेनु और गौ	१८४.७
ध्यान धरना योगकी प्रक्रिया	५६.४
ध्यान छोड़कर भक्त चरित सुनते हैं	१११
नन्दीश्वरका दक्ष और यज्ञके ब्राह्मणोंको शाप	६२.३
नर, नर तन	१५२.१
नर और मनुजका अर्थ	४८
नर इव	४९.७
नाई (=न्याय)	९०.८
नाग (के नाम, रूप)	६१.१, ६८
नाटक कलाकी व्याख्याके लिये देशकालपात्रका विचार आवश्यक	१३९
नाथ	११६
नाम और कथामें चन्द्र-चन्द्रिका-सम्बन्ध	४७.७
नाम किनका नहीं लिया जाता	१३२.६, १६०.४
नाम चार प्रकारके	१६०.४
नाम बतानेकी विधि	५३.७
नाम-रूप-लीला-धाम चारों मंगलभवन	११२.४
,, ,, जगपावन	५०.३
नामादि चारों श्रीरामविग्रह और नित्य	४६, २९, ३०
नामोच्चारण जोर-जोर करनेसे शान्ति	५२.७
नारद	६६.५
,, (का अर्थ)	९८
नारदकथित उमाके गुणों,	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
दोषोंके प्रकट और गुप्त भाव	६७
नारदका वैराग्य	१३१.१
नारदजीको दक्षका शाप	७९.१-२, १२५.४
,, कालकी कन्या दुर्भगाका शाप	१२५.४
,, पार्वतीजीके गुरु	८०.८
,, भगवान्‌का मन हैं	७१.८
नारदमोहकी कथा शिवपुराणमें	१२५.१-२
,, अद्भुतरामायणमें	१३४
,, प्रसंगसे उपदेश	१२७.१—४, १७६.१—५
,, ,, का अभिप्राय	१३८
नारद-वचन सभी कल्पोंमें सिद्ध किया जाता है	१२४.५-६
नारद शब्द गुरुत्वका द्योतक	८०.८
नारिस्वभाव	५१.६
निज (सच्चा, खास)	१०८.१
निज तन्त्र (तन्त्रके अर्थ)	५१
निज भक्त	१५०
,, ,, के लक्षण सुतीक्ष्णजीमें	१५०
,, ,, ,, ,, कौसल्याजीमें	१५१.३
निजानन्द	१४४.५
निठुर	११३.७
निन्दा विधेयकी स्तुतिके लिये की जाती है, निन्दायोग्यकी निन्दाके लिये नहीं	११३.१
निमन्त्रण बिना कहाँ जा सकते हैं	६२.५
,, ,, ,, जानेसे कल्याण नहीं	६२.५
निराकारका ध्यान ज्ञानरूपसे होता है	११८.४—८
निरूपण	१६३.५
निर्गुणका निरूपण, सगुणकी प्रशंसा	१४६.५
निर्गुण-सगुण	११६.१-२
,, ,, दो भिन्न अवस्थाएँ हैं	
,, में केवल ऐश्वर्य माधुर्यके गोपनत्व एवं दर्शनत्वमात्रका भेद है	११६.३
निर्गुण-सगुणके स्वरूपोंमें अवस्थाभेदके कारण भेद मालूम पड़ता है, वस्तुतः भेद नहीं है	११६.३

विषय	दोहा-चौपाई आदि
निर्गुण ब्रह्म भगवान्‌की एक अभिव्यक्तिमात्र है	१८७.८
नीचका कपटी स्वभाव नहीं छूटता	४९.४
नीच मारीच और रावणका विशेषण	४९.३-४
नीरधरकी उपमा	१४६
नील सरोरुह आदि तीन विशेषण	१४६
नेति नेति	१४४.५
नेत्र (ज्ञान वैराग्य, श्रुतिस्मृति)	११५.१-२
नैमिषारण्य	१४३.१-५
,, सत्ययुगमें शीघ्र फलदायक	१४३.२
पञ्चकन्या (पञ्चकं ना)	१७८.२
पञ्चपर्वा	११५.८, १३६.५—८
,, ,, की उत्पत्ति	१३६.६
,, ,, योगशास्त्रके पञ्चक्लेश	११५.८
,, ,, के पाँचो विकार नारदको	१३६.६
व्यापे	१३६.६
पञ्चीकरण	११७
पञ्चोपचार पूजन	४५.५-६
पतंगके अर्थ	१२६.५
पताका, केतु	९४ छन्द
,, रथका एक अंग है	१२५.६
पद टेकना	४५.४
पद (भगवान्‌के) प्रयागरूप	४४.५
पदमूल	११३.४
पदिक	१४७.६
पद्मासन दो प्रकारका	५८.७
परम अर्थ	४४.१-२
परम शक्ति, पराशक्ति, आदिशक्ति	१८७.६
परमार्थ क्या है? परमार्थ-निरूपण	४४.१
परमार्थ-पथ	४४.१
परमार्थसाधनसे पतित होनेका उपाय	४४.१
परवासुदेवका ध्यान	१४३
परावर	११६
परिछन	९६.३
परिधन, परिधान	१०६.६, १४३.८
परिवार (समाज)	१७६.२
परेश	११६.७
परोपकार परम धर्म है	८४.१
,, समस्त शास्त्रोंका सिद्धान्त	११२.६
पश्चात्तापसे पाप धुल जाते हैं	५९.५, १०४.७
पाँति	९९.७
पाणिग्रहण	१०१.३
पातिव्रत्यका प्रभाव	१२३.७
पान (मदिरापान)	१८०.१—५
पापका फल कब मिलता है?	६४.१—४
पापीका कर्म ही उसका छेदन करता है	९०.६
पार्वती (शब्दका भाव)	१०७.१-२
पार्वतीजीका जन्मस्थान गौरीकुण्ड	६५.६
,, की जन्मतिथि	६५.६
,, के गुरु नारदजी	८०.८
,, ,, (हिमाचलके यहाँ) जन्मके कारण	६५.५-६
पार्वतीजीके नामस्मरण आदिका फल	६७.५-६
,, के लिये उमा शम्भु-विवाह प्रसंगमें बहुवचनका प्रयोग	९०
,, विवाहका लग्न	९१.४
,, विवाहका मण्डप त्रियुगीनारायणपर	६५.६
,, को तप करानेका प्रयोजन	७०.५
,, ने तप शृङ्गीतीर्थ - (गौरीशिखर) पर किया	७३.७
पावन स्थानोंमें संत भजन करते हैं	१२५.१-२
,, आश्रमका लक्षण	,, ,,
पिता-वचन	४८.८
पितासमेत नाम लेनेकी रीति	५३.७, १५८.८
पिशाच	८५.६, ९३ छन्द
पुकार	१८५.१
पुत्र	१७७
,, उत्तम, मध्यम, विष्ठातुल्य	४८.८
,, नरकसे रक्षा करता है	१५०.१
,, पितासे उऋण नहीं	१५०.१
,, शिष्य और सेवकके धर्म	७७.३
पुण्यके दो विभाग	१५५.८
पुनि	११६.५-६
पुनीत (अति)	१५२
,, जल	६६.१
,, प्रीति	५६

विषय	दोहा-चौपाई आदि	विषय	दोहा-चौपाई आदि
पुनीत वाणी	४५.६		१३६.१—४
पुनः पुनः पुलक निष्ठा प्रेम		प्रद्युम्न, मायावती और शम्बरासुर	८८.२
देखकर	८१	प्रबान	१२३.१
,, ,, ,, प्रेमका सूचक		प्रभु	४६.६, ४९.१,
पुराण पुरुष	११६.७		५४.८, १२१.८
पुरारी	६४.५	प्रमाण (अनेक प्रकारके)	५१.५—८
पुरुष	११६	,, के चार भेद	११८.४
(नीच) पुरुष जिस पदार्थको		प्रलय चार प्रकारके	१६३.६
ग्रहण करता है उसकी		प्रश्न चार प्रकारके	१११.६
निस्सारतापर ध्यान नहीं देता	१२५	,, के उत्तरमें भारतकी प्राचीन	
पुरोहितका पद मन्त्रीसे बड़ा है,		शैली	४७.८
धर्मविभाग उसके हाथमें		प्रसंग	११६.४
रहता है, उसके कार्य और		प्रसिद्ध	११६
अधिकार शुक्रनीतिमें	१६९.५	प्रह्लादजी	१२२.७-८
पुरोहित	१७१	,, के गुण और सुयश	,, ,,
पुलस्त्यकी स्त्री	१७६.१—५,	,, भक्तशिरोमणि	१२२.८
	१७९.२	प्रह्लादको नारदका उपदेश	७९.२
पुष्पक यान	१७९.८	प्रहसन-प्रसंग (नारदमोह-	
,, ,, कुबेरको रघुमहाराजसे		प्रसंग) की जोड़का साहित्य-	
वा ब्रह्मासे मिला	,,	जगत्‌में मिलना कठिन है	१२८.५-६
षोडशोपचार-भेद पूजाके		प्राण बचानेके लिये किन	
पञ्चोपचार, दशोपचार	४५.५-६	अवस्थाओंमें भाग जाय	१५८.५
पूजाके पाँच प्रकार अभिगमन		प्रात:काल	४४.८
आदि	४५.५-६	प्रात:स्नानका माहात्म्य माघमें	४४.७
पूर्णकाम	१०१	प्रारब्ध और पुरुषार्थ ६८	६९.१
पृथ्वी कामधेनुका रूपक	१५५.१	,, भी बिना पुरुषार्थके	
प्रकाशक, प्रकाश्य	११७.५-६	काम नहीं देता	६९.१
प्रकाशनिधि	११६	प्रियव्रत	१४२.४
प्रचंड (चंड, प्रचंड, अति		प्रीति दोषरहित	१५३.७
प्रचंड) माया	१२८.८	प्रीति पुनीत और अपुनीत	१२०.८
प्रजापति और उनके नाम	६०.५—८	,, की प्रशंसा	१५१.६, १६२.३
प्रणामसे कार्यसिद्धि, अन्यथा		,, और क्रोध तीन प्रकारके	८७ छन्द
असिद्धि	८४.३	,, निरतिशयमें माहात्म्यका	
,, पिताका नाम लेकर		ज्ञान विस्मृत हो जाता है	६५.५
करनेकी रीति	५३.७	प्रेत	८५.६
	१५८.८	प्रेमकी संतृप्त दशा	१४५.१
,, पुनः पुनः भय और		बक बगला बग्ध्यानी	१६२.६
पश्चात्तापसे भी होता है	५५.८	वक्ताके सप्त लक्षण	१०७.१-२
प्रताप, तेज, बल	८२.५—८	,, चार लक्षण	१२०
प्रतिष्ठितका मानभंग मरणसे		,, कैसा वैराग्यवान् हो?	१०६
अधिक भयंकर दुःखद, उसे		,, के सप्त लक्षण शिवजीमें	१०७.१-२
मरण आदि ही उपाय हैं	६२.६, ६३.६,	(उत्तम) वक्ताकी वाणीसे	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
श्रोताको सुख	१०५.१-२
वक्ताको उत्तम श्रोतासे सुख	१०५.१-२
,, उपदेश करनेका अधिकार कब है?	१०६.५-६
,, निरभिमान होना चाहिये	११४.५
वक्ताओंकी रीति	४७, ११२, ११४.५-६
,, के कथाके स्थान	१०५.८
,, के कथारम्भकी तिथियाँ	१०६.३-४
,, ने मति-अनुसार कहा है	४७, ११४.५
,, ने यथाश्रुत कहा है	१०५.३-४, ११४.५
,, ने हर्षपूर्वक कहा है	१११
,, ने श्रीरामजीको प्रणाम करके कथा कही	१०५.७
बखानने और विस्तारसे कहनेमें भेद	१२२.३-४
वट (कैलासका), वटछाया सुखदाई	५२.२, १०६.२—४
बधावा	१७२.५
वनमाल	१४७.६
वरके कुल आदिका विचार	७१.१—३
,, सम्बन्धमें कन्या, माता, पिता आदिकी अभिलाषा	६८.१
वर (वरदान) प्रसन्न होनेपर दिया जाता है	७५.१-२
,, (कठिन वर) माँगनेकी रीति	१४९.१
'वर माँगो' कहनेकी रीति पार्वतीतपमें नहीं बरती गयी	७४
बरनहिं और कहहिंके भेद	४४
वराहावतार	१२२.६, १२३.१—३
बरेषी	८१.३
बला-अतिबला विद्याके जानकारको कोई सोतेमें मार नहीं सकता	१७०
वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण	११२.१
वाणीकी पुनीतता	४५.६
,, के प्रकार और स्थान	१०५.५-६
,, सुहाई	१६०.३
वानर देवांश थे	१८५.३

विषय	दोहा-चौपाई आदि
वारिचरकेतू	८४.६
वाल्मीकि-आश्रमकी पावनता, रमणीयता अनुपम	४४.६-७
वासुदेव, परवासुदेव	१४३
,, मन्त्र	१४३
वाहन देवताओंके	९१
बिंग्य (व्यंग्य)	९३.३
विदा माँगना शिष्टचार है	४८.५-६
विदिश	१८५.६
विदेह नाम कबसे पड़ा	४५.३-४, ८
विधाता चतुर वा जड़	९६.७-८
,, कर्मानुसार भावी लिखते हैं	६८
,, का लिखा अमिट है	६८, ९७.८
,, का लिखा तब शुभ मुहूर्तका क्या महत्त्व	६८
,, सृष्टिरचना कैसे करते हैं	७३.३
,, हीको सब दोष देते हैं	९६.७-८, १७५.२
बिधि	८२.८, ८२
,, फलदाता है अत: सब उनको दोष देते हैं	९६.७-८
,, यथायोग्य करनेसे बिधि और चतुर कहते हैं	९६
विप्र (मुनिको कहनेका भाव)	१२२.४—६
बिप्र और गौको ही असुर क्यों सताते हैं	१२१.७
विप्रकोप त्रिदेवकोपसे अधिक है	१६६.४
बिबसहू नाम लेनेका भाव	११९.३
विवेक राजाके सुभट	१२९.१
विवेकी	१५६.१
विभाग	१२५.३-४, १११.१
विभीषण	१७६.४
,, की स्त्री आदिके नाम	१७८.४
विभीषण परम भागवत और पार्षद	१७६.५
विमल विवेक	४५
विमानोंके आकार	९१
वियोगी	८५.६
विरंचि	८२.८
,, बनावा (अति शोभा दिखानेमें)	९४.८
विरह-विलापके चरितसे उपदेश	४९
विराग (वैराग्य)	४४
विरोध तीन प्रकारका	८७ छन्द

विषय	दोहा-चौपाई आदि
विवाहकी गालियाँ मीठी	९९.८
,, समय शिवगणोंने भी सुन्दर रूप धर लिया	९९
विवेककी सेना	८४.७-८
विवेकमय वचनोंसे शोकादि दूर होते हैं	९७.५
विशद यश	१२१
,, ,, रामावतारमें ही है	१२१
विश्रवाकी माता, नाना और स्त्रीका नाम	१७९.२
विश्राम (कथा-वार्ता)	१०६.३-४
विश्वकर्मा	१७८.५-६
विषम	८३.८
विषय, इन्द्रियाँ और देवताओंके नाम	११७.५-६
,, काईके दूर करनेकी ओषधि	११५.३-४
,, से वैराग्य होना (घरमें रहते) कठिन है	१४२
विष्णुपीठ और रुद्रपीठ	१००
विष्णुभगवान्का तप	७३.३
बिहँसना	५३.६
'बिहसि' में उपहास-परिहास दोनों भाव	५१
वीणा	१२८.४
वीर	१५४.२
,, शत्रु-ललकार नहीं सह सकते	१८२.८
वीरका आदर-सम्मान करके युद्धमें भेजा जाता है	१२५.५-६
वीरभद्रकी उत्पत्ति और स्वरूप	६५.१-२
बूझना, बूझिअ	५९.४
वृन्दा कालनेमिकी कन्या	१२३.७
,, की कथा	१२३.७
,, की कथासे उपदेश	१२४.१-२
,, से छलका दूसरा कारण	१२४.५-६
वृषकेतु (नामकरण श्रीरामद्वारा) के भाव	५३.८, ५३, ५८.५, ६४.७, ८८.७
वेताल	८५.६
वेद (की विस्तृत व्याख्या)	४६.१-२
,, का अन्त नहीं	१०९
वेदोंका अन्तिम निर्णय वा साध्य ब्रह्मप्राप्ति	४४
वेदशिरा मुनि	७३
वेदान्त	४४
वेदी	१०२.२
बेलपत्र और तुलसी-सेवनसे सत्त्वगुणकी वृद्धि	७४.४—८
वैदेही	४९.५
वैभव-विलासमें इन्द्रकी उपमा	१३०.३
वैरी क्षत्रियकी वाणी कोमल, हृदय कठोर होता है	१६०.६
वैश्रवणके पुत्र	१७६.१—५
,, (कुबेर) को 'राजराज' की उपाधि	१७६.१—५
बोलना बिना पूछे कब उचित है	५१.६
व्याधि-दशा	५५.५
व्यापक	११६.८
ब्रह्म	११६.८, १२०.६
,, के अंश जो अवतरित होते हैं	१८७.२
,, के सात धर्म	११६
,, के तीन लक्षण	१०८.८
,, (मानसनिर्माताके मतसे)	१८७.८
,, के अनेक विशेषणोंको कुछ-कुछ अनेक स्थानोंमें कहकर बताया है	१४४.५—८
,, अलक्ष्यगति है	१०८.८
,, अचिन्त्यशक्ति और विरुद्ध धर्माश्रय है	११८.४—८
ब्रह्म सर्वत्र सब रूपोंमें नित्य अपनी महिमामें स्थित है	४-८
,, सदा दया आदि दिव्य गुणों और सम्यक् ऐश्वर्योंसे युक्त है (समन्वयसिद्धान्तमें)	११६.१-२
,, द्विभुजमूर्त्ति श्रुतिमें	१४७.८
,, में इन्द्रियादिके निरपेक्ष सर्वदा सर्वविषयक मान आदि विद्यमान हैं	११८.४
,, गुणसामान्याभावयुक्त है ही नहीं	११६.१-२
,, सदा दया, क्षमा, वात्सल्य आदि दिव्य गुणों और सम्यक् ऐश्वर्योंसे युक्त है	११६.१
ब्रह्म दिव्य और अदिव्य सर्वगुणोंसे रहित केवल सच्चिदानन्द	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
रूप है (अद्वैतसि०)	११६.१
ब्रह्म मायाके गुणोंका आदि आश्रय होनेसे सगुण कहा जाता है, पर है निर्गुण ही (अद्वैतसि०)	११६.१
,, विद्योपाधिको ईश्वर कहा जाता है (अद्वैतसि०)	,,
,, के नाम वेदान्त, सांख्ययोग और पौराणिकोंके मतमें	११६
,, के रूप, इन्द्रियों और उनके व्यापारोंका वर्णन वेदोंमें	११८.४—८
,, स्वतः सर्वज्ञ-सर्वदर्शी	५६.४
,, सृष्टिका निमित्त और उपादान कारण स्वयं है	१८६, छन्द ३
ब्रह्मस्वरूपके पाँच भेद	१०९.१
ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् (भगवान्‌का अर्थ सूत्ररूपमें)	११९.५-६
ब्रह्म राम और उनका धाम	१८७.८
,, ,, के स्वरूप और स्वभावके जानकार	१४६.१-५
,, ,, का सर्वाङ्ग चिन्मय है	११८.४—८
ब्रह्मनिरूपण	४४
ब्रह्मचर्य दो प्रकारका	८४.७
,, व्रत और उसके बाधक	,,
ब्रह्ममय	८५ छन्द
ब्रह्मवेत्ताओंके श्रुति और शास्त्र	११५.१
ब्रह्मसूत्रपर १२ भाष्य	४४
ब्रह्मस्तुतिमें मतभेद	१८६
ब्रह्मस्तुति और अश्विनी नक्षत्रका साम्य	१८६
,, छन्दमें होनेका कारण	१८६
,, सोलह तुकोंमें होनेका कारण	१८६
,, कहाँ हुई	१८७
,, में चार छन्दका कारण	१८६
ब्रह्माजीका तप	७३.३
,, की आयु वर्तमान कल्पतक	१६४
,, की दस प्रकारकी सृष्टि	६१.१
,, के दो लोक	१८७
,, ,, नौ मानस पुत्र जो ब्रह्मातुल्य हैं	६०.५
ब्रह्मा, विष्णु, महेश 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' रूप	८८.६
,, और दशरथजीका प्रेम (पत्रिका बाँचनेपर)	९१.६
ब्रात	९२.७
ब्राह्मणका हृदय कोमल, वाणी कठोर	१६०.६
भक्तका लक्षण भागवतोंमें प्रेम	१०४.५
,, मोक्ष नहीं चाहते, भक्ति ही चाहते हैं	६५.५
,, के गर्व और दुष्टके गर्वके नाशके भिन्न-भिन्न उपाय	१२९.४
,, के गुण	१२२.७-८
,, और भगवान्‌के यशोगानका एक फल	,,
भक्तवत्सल (भगतबछल)	१४६.८
भक्तापराध भक्त ही क्षमा कर सकता है	१३८.५
भक्ति	४४, ४८.३-४
,, ज्ञान-वैराग्य तुलसीमतसे क्या है	४४
,, और उसके लक्षण	६६.३
,, की दुर्लभता	६६
,, की प्राप्तिपर भक्तकी दशा और शोभा कैसी होती है	६६.३-४
,, के अधिकारी	४८.४
,, ज्ञान-वैराग्ययुक्त होनी चाहिये	४४
भक्तिहीन पुरुष अशोभित है	६६.३
भक्ति जैसी होगी वैसी गति होगी	४४
,, वाचकी, मानसी, कायिकी, वैदिकी और आध्यात्मिकी	,,
,, सात्त्विकी, राजसी, तामसी	,,
,, सुहाई	४८.४
,, का संस्कार नहीं मिटता	१७६.५, १७८
भक्तोंकी रहनी, रीति असमञ्जसमें	५२.७-८
भग (ऐश्वर्य) साधारण और असाधारण	११४.४
भगवच्छक्तिके चार अर्थ	१५२.१—४
भगवत्-भागवत-चरित अमित है	१०५.३-४
भगवान् (षडैश्वर्यसम्पन्न)	४४, ४६.३
भगवान् (षडैश्वर्यसम्पन्न)	११४.४, १२३.१-२
,, अनाथपर कृपा करते हैं	१४६.३
,, अपनी कृपासे प्राप्त होते हैं	१४६.६
,, जीवोंके कर्म और अधिकारके अनुसार ही	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
उनकी विधि-व्यवस्था करते हैं	१२४
भगवान् तपादिसे नहीं मिलते	१४६.६, १४९.६
,, प्रेमसे प्रकट होते हैं	१४६.८
,, भक्तके पराधीन हैं	७६
,, विशेषण जीव विशेषके लिये	११४.४
,, ,, परमात्माके लिये	११४
,, जिस मर्मको छिपाना चाहें उसे कोई जान नहीं सकता	१३०
,, ब्रह्मण्यदेव हैं, विप्रवचनको प्रमाण करते हैं	१२३.१
,, परोक्षप्रिय हैं	१२१.१-२
,, लोकसंग्रहार्थ धर्माचरण करते हैं	१२४.१-२
,, शापको व्यर्थ कर सकते हैं, कोई उनको जबरदस्ती शाप ग्रहण नहीं करा सकता	१२२.५, १२४.१, १३६.३, १३८.३
,, सब करते हैं तब साधनकी आवश्यकता क्या?	५२.७, १२४
,, स्वयं धर्माचरण लोकशिक्षार्थ करते हैं	१२४.१-२
,, शब्दका प्रयोग जहाँ भक्तका हित हुआ	११८
,, का अवतार भक्तके लिये	५१
,, ,, प्राकट्य आवेश, स्फूर्ति, प्रवेश और आविर्भावरूपसे	१८५.५—८
,, का नरतन धरना, सहायता लेना हीनता है	१३७.७
,, की भक्ति स्त्रियोंको भी कही गयी है	१०२.३
,, की द्वादश मासमें द्वादश नामसे पूजा	४४.३—५
,, की भगवत्ताका स्मरण सभी आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें दिलाया गया है	४९.७-८
,, के जन्म, कर्म, नाम आदि सब अनन्त हैं	११४.३-४
भगवान्के प्राकट्यमें अग्निकी उपमाका कारण	१८५.५—८
,, को भूल जाना बड़ा भारी प्रमाद है	४९.७-८
,, में अनुराग संत-गुरुवचनपर	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
आरूढ़ होनेसे	६८.५
भगवान्से ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् तीन भाव	११९.५
,, राममें षडैश्वर्यके उदाहरण	११८
भजन कहाँ करना चाहिये	१२५.३-४
,, के बाधक मोह, मद, मान	१२४
,, श्रीरामकृपासे ही बनता है	,,
भरत वैकुण्ठाधीश, लक्ष्मण क्षीराब्धीश, शत्रुघ्न स्वयंभूमा हैं	१५२.२
भरद्वाज	४४.१
,, नामका कारण	१
,, वाल्मीकिजीके शिष्य	४४.६, ४५.८
,, का सूर्यसे ११ हजार वर्ष वेदाध्ययन	४५.८
,, का स्वर्गमें इन्द्रसे आयुर्वेद सीखना	४४.६
,, और वाल्मीकि आश्रमोंके विशेषण	४४.६
,, के कृतज्ञता दर्शनका उल्लेख न होनेका कारण	१०४.३
,, पार्वती और गरुड़के प्रश्नोंमें नाम, रूप, लीला और धाम चारोंके प्रश्न	४६
,, आदि तीनोंने अपनेमें मोह भ्रम संशय कहा	४७.१
,, याज्ञवल्क्यसंवाद रा० प्र० के मतसे १७५ तक	१७५
भरि लोचन (दर्शनकी उत्कण्ठामें)	८९.१
भवसागरका रूपक	१८६ छन्द
भवानी	४७.८, ५८.३, ६२.४, ६३.१, ९७.५
भाई (मनका सम्बोधन) दूसरोंकी सहानुभूतिको उत्तेजित करनेवाला है	५२.४, १३२.१
भागवतभजनका प्रभाव तुरत देख पड़ता है	१३८.५-६
भाग्यशालीके संसर्गसे ऐश्वर्यका उदय	६५.७
,, ,, कालादिकी बाधा नहीं होती	६६.१
भानुप्रताप-आख्यानमें रामनाम और भक्ति शब्द नहीं	१७०.३, ६

विषय	दोहा-चौपाई आदि	विषय	दोहा-चौपाई आदि
भानुप्रताप अरिमर्दन पूर्वके कौन थे?	१५३	मंगल कलश	९१.८
,, नाम-नाश-कथन-समय	१६६.३	मंडल	१५४.८
,, भगवद्भक्तिहीन था	१५९.६, १६४.५	मन्त्र	४९.५-६,
,, की कथा कहाँकी है	१२१.३—५,१५३.१		१७०.७, ६७
,, की वेदादि धर्ममें अति श्रद्धा	१५३	मन्त्र और मन्त्री चार प्रकारके	१५४.१
,, की भूलें	१७०.६, ८	मन्दोदरी	१७८.१—४
,, के आख्यानसे उपदेश	१७४	,, का सौन्दर्य	१७८.२
,, के हृदयमें गुप्त वासना	१५५, १५९.६-७	मकर राशि	४५.२
	१६४.५, १६४	,, स्नान	४५.१-२
,, को ज्ञानी, विवेकी कहनेका		मणिके धर्म	१४६
भाव	१६४	मति-अनुसार, यथामति	४७, ११४.५
भाविक अलंकारके उदाहरण	५०.३-४	मद (मदिराका नशा)	८६.३
भावी और उसके भेद-प्रभेद	५६.६	मदन	८५.५, ८७.५,
भावी अमिट है तब शुभ मुहूर्त			१२६.१
आदिसे क्या लाभ?	६८	मद-ममता भवबन्धनके कारण हैं	१५२.३
भावी जाननेपर भी कर्तव्य		मद-मोह आदिका जीतनेवाला	
करना धर्म है	६२	संसारमें नहीं	६०.६
भुजदंड, भुजबल्ली	१७६.२	मनु (मनु और मनुकी स्त्री)	१४६.७
भुजा उठाकर प्रतिज्ञा		मनुज, नर	४८, ४९.१
करनेकी रीति	१६५.५	मनु-प्रकरणसे उपदेश	१७६.१—५
भुशुण्डिचरितसे उपदेश	१७६.१—५	मनु-शतरूपा	१४२.१
भूत और पिशाचके भेद	११५.७-८	,, ,, के तपकी कथा कालिका-	
भूत-ग्रहोत्थ तथा पिशाच-		पुराणमें	१४३
ग्रहोत्थके भेद	,,	,, ,, और पार्वतीतप	७४, १४४.१
भृङ्गी	९३.४	,, ,, किसका दर्शन चाहते हैं	१४४
भृगु	६४	,, ,, और श्रीभरत (दण्ड और	
,, का शिव-भक्तोंको शाप	६२.३	लकुट)	१४८.७
,, की लातका आध्यात्मिक भाव	६४	,, ,, प्रकरणमें तीन-ही-तीनका	
भोगवती	१७८.७	अद्भुत प्रसंग	१४५.५—८
भोग अष्ट प्रकारके	८४.७-८,९०.३	,, ,, ,, का उपक्रम, अभ्यास	
भोग-विलासमें इन्द्रकी		और उपसंहार भक्तिसे	१५२
उपमा दी जाती है	१५१	,, और भानुप्रताप	१७४
भोजनके चार प्रकार	९९.४, १७३.१	मनोज-नसावन	५०.३-४
भोरी	१७१	मन्वन्तरोंके नाम	७५.४
भ्रम	५३.१	ममता	१६४.४
भ्रम और कुतर्क प्रीति-		मय	१७८.२, ६
प्रतीतिके बाधक हैं	११९.७	मरुतयज्ञमें देवताओंका पक्षीरूप	
भ्रम (अयथार्थ ज्ञानके विषयको		धारण करना	१८२.९
यथार्थ ज्ञानका विषय समझना)	११७	महाकाव्य और नाटकीयकलाके	
,, का मिटाना क्रियासाध्य नहीं,		एकीकरणकी युक्तियाँ	१५२
कृपासाध्य है	११८.१—३	महामोहके दस भेद	११५.७-८
मंगल	९१.८, ९१	महिदेव	१७५.१

विषय	दोहा-चौपाई आदि
महिषेशु	४७.६
महीश	१६७.६
महेश	६४.५, ७०.४
माघ-नामका कारण	४५.१-२
माघ-स्नानकी विधि	४४.८
माता-भावमें केवल चरण-दर्शनका अधिकार	१०४.७
माधुरी	१४८.६
माधुर्यकी विशेषता वा गूढ़ता	११०.२
मानस और अध्यात्मरामायण	११०.३
मानस और भा०	७।१।४०, १२२.७-८
मानस, वाल्मीकीय, महाभारत, पद्मपु०, अध्या० रा० के रावण, विभीषणादि	१७६.१—५
मानस, अध्यात्म और वाल्मीकिके दृष्टिकोण	४९.७-८
मानसके सारे प्रश्नोंके उत्तरमें आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रहस्योंका एकीकरण	४६.६—८
मानसमेंके कलापरिवर्तनको Mr. Growse न समझ सके	४६.६—८
मानसका सिद्धान्त	१७६.१—५
मानसमें जहाँ-जहाँ स्मरण करना कहा है वहाँ उसे प्रत्यक्ष लिखा है	७७.८
मानसी प्रजा-सृष्टि	१६३.६
माया (=दया)	९७.३
'माया' के अर्थ	९७.३, १५२.४
माया	१२६.१, १२८.८, १२९.८, १५२.४, १८१.१
,, पाँच प्रकारकी	१५२.४
,, का व्यापना क्या है?	१३८.८
,, (प्रकृति, अव्यक्त) ब्रह्मकी शक्ति है	११६.१-२
,, की आवरण और विक्षेप-शक्तियाँ	१०८.३-४
,, के त्यागका चिह्न	१३८.१
,, ,, परिवारमें सात्त्विक गुणोंको न गिनानेका कारण	११६.२
,, के बलको सबने बखाना है	५६.५
,, जिसे मोहित न कर सके ऐसा कोई नहीं	१२८
मायासे श्रीराम ही रक्षा कर कर सकते हैं	१२८, १३६
,, ,, रक्षाके लिये हरि-भजन उपाय है	५२.८
,, और जगत्का एक ही स्वरूप है	११८.१
,, ,, श्री पृथक्-पृथक् हैं	१२९.८
,, सबकी (श्रीराम, त्रिदेव, देवता, राक्षस, मनुष्यकी) अलग-अलग होती है	१६९.४
मार	८३, १२७.५-६
मारीचमें नीचता और प्रेम	४९.३-४
माल्यवान्, माली, सुमाली	१७८.५—८
माष (मक्ष, अमर्ष)	८७.१
मास (चार प्रकारके ज्योतिषमें)	४५.१-२
मिथ्या, मृषा	११२.१, ११७.७, ११७, ११८.८
मिलान—	
(क) गिरी और वटकी शोभा	१०६.३-४
(ख) दूलह और शिवदूलहका साज	९२.१—५
(ग) पंपासर और मदन-प्रसंग	८६ छन्द
(घ) पार्वतीतप मानस और पार्वतीमंगलका	७४.१—३
(ङ) श्रीपार्वती-प्रण और श्रीसीता-प्रण	९०.३—५
(च) श्रीपार्वती-प्रेम और श्रीशिव-प्रेम	७६.३-४
(छ) पार्वती-मनुशतरूपा-तप	७४, १४४.४
(ज) ब्रह्माजी और दशरथजी (पत्रिका पानेपर)	९१.६—८
(झ) शिवजीके सतीप्रति वचन और उनकी सिद्धि	६२.४—६
(ञ) शैलराज और रामभक्त	६६.३
(ट) सप्तर्षियोंके वचन और पार्वतीजीके उत्तर	८०.७-८
(ठ) श्रीभरद्वाज-पार्वतीजीके प्रसंग	४७.८
(ड) नारद-शिव-मदन-प्रसंग	१२७.१—४
(ढ) नारद-हरगण-शापानुग्रह	१३९
(ण) मनु-शतरूपा-नारद	१५२
(त) श्रीपार्वती, गरुड़ और	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
भरद्वाजजीके संशय	११९
मुण्डमाल (किसके सिरोंकी),	७९.५, ९२.१—५
मुनि किसे कहते हैं	१२९.१
मुनि और ऋषि	४४.७, ६१.४
,, का प्रधान लक्षण भगवद्भक्ति	१८७.१
,, आदिके सगुण-अगुणके अभेदको गानेके प्रमाण	११६.१
,, और बुधका प्रमाण वेद-पुराणके साथ देनेका भाव	११६.१
मुनियोंके ध्यानमें अवस्थाका नियम नहीं	१४६.५
'मुसुकाई' में हास्यकलाका सुन्दर प्रयोग	४७.२
मूढ़, अति मूढ़	४७.४, ४९.५, १५१.५
मूल-फल, शाक-कन्द	७४.४
मृग (पुनीत)	१५६.४
मृत्युके चार द्वार	१७२
मृषा (अयथार्थज्ञानका विषय, धोखा देनेवाला)	११७
मेघनाद	१८०.७
मेना (मैना)	६८.३
,, का पुत्र मैनाक	,, ,,
मेलना	६८.८
मैत्री समान शील व्यसनवालोंमें	१७०.४
मैथुन अष्ट प्रकार	८४.७-८
मोरकी बोली दो प्रकारकी	१६१
मोह और तमके आठ-आठ भेद	११५.७-८
,, ,, महामोह	४७.६
,, भ्रम, संशयके भेद	३१.४, ४७.१
,, ,, ,, तीनोंको तीनों श्रोताओंने अपनेमें स्वीकार किया है	४७.१
,, का प्रभाव	१२०.१-२
,, महिपालके तीन सुभट	१२८
,, मद, मान भजनके बाधक	१२४
,, से बुद्धि नष्ट होती है	१३५.४-५
मोहना	१००.६
मौन सम्मति-लक्षण	१७३.८
यज्ञ वेदों और पुराणोंमें	१५५
यथाश्रुत	१०५.४, ११४.५
यदुवंश	८८.१
यमककी विषमताद्वारा	

विषय	दोहा-चौपाई आदि
भावप्रदर्शन	४५.२
यश (विशद)	१३१
याज्ञवल्क्य	४५.४—८
,, मोक्षवित जनकके समयसे कुलगुरु	४५.३-४
,, ब्रह्मनिष्ठ-संवादमें शाकल्यका सिर फटना	४५.८
युग और उनका प्रारम्भ	४८.१-२
योगाग्नि	६४.८
,, में शरीर दग्ध होनेसे पुनर्जन्म नहीं होता	,, ,,
योगी प्रज्ञालोकके प्रभावसे त्रिकालज्ञ होते हैं	६६
,, लोग त्रिकालज्ञ होते हुए भी सर्वज्ञ नहीं होते	६६
योगी-(बड़ योगी-) का सामर्थ्य	११८.४—८
योषित	११०.१
रघु (महाराज)	४८.७-८, १८७.५
,, का पराक्रम और दान	४८.७
रघुकुलकमल पतंग	९८.७
रघुकुलमणि दशरथजी और रामजी	११६
रघुपति	५५.१—३
रघुवंश (नामका कारण)	४८.७
रजत-सीप भानुकर बारि दो दृष्टान्तोंका भाव	११७
रज्जुमें सर्पका भ्रम उसकी स्वल्पसत्ताका प्रत्यायक है	११७
रज्जुका सर्प देख पड़ना अज्ञान नहीं है किंतु उसको सर्प समझना अज्ञान है	११७.१—४
रति	८७ छन्द
,, का रुदन आदि	८७ ,,
,, की विनती	,, ,,
रस	१११
,, (षट् रस)	१७३.१
,, (नवों रसोंकी व्याख्या)	१०४.१—३
रसोई चार विधिकी	१७३.१
राक्षस नवजात बालकोंको पार्वतीजीका आशीर्वाद	१८१.३
राजधर्म	१५५.५
राजा चार प्रकारके	१५४.१—४

विषय	दोहा-चौपाई आदि
राजाकी चार भुजाएँ	१५४.२
,, के छः गुण	१५३.४
,, (राज्य) के सात अङ्ग	१५४
राजा, गुरु और देवताके यहाँ खाली हाथ न जाय	९४.६
राजाओंको मृगया, पाँसा खेलना और मद्यपान निन्दित	१५७.४
राजि	८६.६
श्रीरामजी अपनेको प्रकट करना क्यों नहीं चाहते	४८
,, कृतज्ञ हैं	७६.५
,, निर्मल दर्पण हैं	५४.१
,, के विषयमें तुलसीकी भावना	४९.७-८
,, के नाम रूप गुणगान आदि पावन हैं	५०.३-४, १०९.८
,, ,, ,, की चर्चा श्रोताओंने की है	४६
,, ,, ,, को शिवजी हृदयमें बसाये हैं	४६
,, ,, ,, सच्चिदानन्द-विग्रह हैं	४६
श्रीरामजीको परोक्ष प्रिय है	१८७.९
,, में प्रेम करनेसे पातिव्रत्य भंग नहीं होता	५६
,, के मायाबलकी प्रशंसा सभीने की है	५६.५
,, और श्रीरामचरितमें चंद्र-चंद्रिकासम्बन्ध	४७.७
(श्री) राम जिसमें नहीं वह शास्त्र नहीं, न काव्य, स्मृति और संहिता	११६
,, नाम और रूप दोनोंको सूर्य कहा है	११६.५-६
,, ,, रूपादि सभी मंगलभवन हैं	११२.४
,, ,, ,, सभीकी प्रधानता	१२१.१-२
,, ही रामावतार लेते हैं	१२२.३, १८५.४
,, ही ब्रह्म, हरि, वासुदेव, सच्चिदानन्द हैं	१४३
,, सबसे हँसकर बोलते हैं	१४७.२
,, को सगुण, निर्गुण, अनूपरूप कहनेका भाव	१४७
,, को श्रीसीताजी ही जानती हैं, दूसरा नहीं	१८६ छन्द

विषय	दोहा-चौपाई आदि
श्रीरामजीने रावणवधके पश्चात् छओ ऐश्वर्य प्रकट कर दिखाये हैं	११८
श्रीरामको रिझानेकी वस्तु	१४९.४
रामकृपाका चिह्न	१३८.१
रामचरित आदरपूर्वक सुने	११४.१-२
,, ऐश्वर्य और माधुर्य दो प्रकारका	११०.२
'राम सदा सेवक रुचि राखी' में एक ही अपवाद	१५१.६
रामस्वरूप-स्वभावके जानकार	१४६.४
रावणके अर्थ उपनिषद्में	१७६.५
,, नाम कैलासके नीचे दबनेपर	१७६.५
रावण	१७६.१—४
,, के दस सिर	१७६.१—४
,, ,, ,, का आध्यात्मिक अर्थ	
,, का नव सिरोंकी आहुति देना	१७७.१—४
,, को ब्रह्मा, शिव दोनोंने मिलकर वर दिया	१७७.५
,, की माँका घर	१७८.१
,, कुम्भकर्ण, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्षसे कम बलवान् था	१२२.७-८
,, और उसके भाइयोंका तप	१७७.१
,, की जन्मकुण्डली	१७६.५
,, के कठिन तपका कारण	१७७.१
,, तप गोकरण-क्षेत्रमें	१७७.१
,, के वशमें ब्रह्मसृष्टि कैसे	१८२.१-२
,, ने जानकर मुक्त होनेके लिये द्रोह किया था	४९.५-६
,, और मारीच दोनों नीच	४९.४
राशि १२ हैं	४५.१-२
रिषि (ऋषि) सात प्रकारके	४४.७
,, देव आदि एक ही समयमें कई रूप धर सकते हैं	६०.१-२
रुद्र	८६.४, ९६.४
रुद्रकी उत्पत्ति ब्रह्मासे	९१.६
रुद्री क्या है	७४.४—७
रूप, शील, तेज	७६.५-६
लङ्का और उसकी दुर्गमता	१७८.५—८
श्रीलक्ष्मणजी	५३.१
लच्छन ३२ हैं	६७.३
लोभ प्रतिलाभ बढ़ता है	१८०.२
शंकरजी ईश्वर, ब्रह्म, रामोपासक	५८.५—८

विषय	दोहा-चौपाई आदि
शंकरजी वैष्णवाग्रगण्य	४८
,, के शतनाम और उसके जपका रहस्य	१३८.५
शंभुचरितमें नवधाभक्ति, नवरस	१०४.१—३
" आचरणद्वारा जपादिका उपदेश	७६.१-२
'श'—शंभुचरित विवाह-प्रसंगमें तालव्यी शकार 'शिव' शब्दमें	५७.२, ६३
शक्ति (प्रलयकालमें लीन हुई) फिर ईश्वरका ही आश्रय लेती है	९८.६
शत्रु बुद्धि-बलसे जीता जाता है	१५४.२
शत्रुका सयानपन	१६०.७
शत्रु (वीर शत्रु) ललकार नहीं सह सकते	१८२.८
शत्रुघ्नजी स्वयंभूमा हैं	१५२.२
शब्द साधारण और असाधारण	११४.४
शम-दम	४४.१
शरदातप	१२०.१
शशिकिरण	४७.७
शाक छ: प्रकारके	७४.४
शान्तरस	१०७.१
शाप क्रोधसे होता है	१२३, १३९.४
शाप मिटानेका सामर्थ्य ऋषिमें नहीं है	१३८.३
,, ,, ,, भगवान्में है	१२४.१
शाप भगवान् व्यर्थ कर सकते हैं	१२४.१, १३८.३
शाप-अनुग्रह	१३९.४
शारदा (सरस्वती) मति फेरनेमें प्रधान	१७७.८
शारदा-(मण्डन मिश्रकी धर्मपत्नी-) के प्रश्न श्रीशंकराचार्यजीसे	१२६.३-४
शिवजीका अमंगल वेष असुरोंको मोहित करनेके लिये	२६.१, ९५.५
शिवजीका आचरणद्वारा उपदेश	७३.१
,, ,, राममन्त्रानुष्ठान जीवोंको मुक्तिके लिये	४६.५
,, ,, व्याह-समय गणोंसहित सुन्दर रूप धारण करना	९९
,, ,, श्रीरामजीको प्रत्यक्ष प्रणाम एक ही बार	५०.३
,, की उपासना बाल वा किशोर रूपकी	११२.३, १४६.४
शिवजीकी दिनचर्या	७५.८
शिवजीकी रहनी	६०.५
,, ,, रामभक्ति	४८
,, के अमंगल वेषके आध्यात्मिक भाव	९२.१—५
,, ,, किस अंगमें कौन सर्प आभूषित है	९२.१—३
,, ,, मुण्डमालमें किसके मुण्ड हैं	७९.५-६, ९२.१—३
,, ,, तीन नेत्र	८७.६
,, ,, सिरपर गङ्गाका भाव	१०६
'शिव' नामसे समस्त पापोंका नाश	६३
" जीके सब विशेषण श्रीरामजीमें हैं	१०७
शिवरूप लावण्यनिधिके रत्न	१०६
,, वर्णनमें सद्गुरुके सब लक्षण	,,
,, ,, नवों रस	,,
श्रीशिवजी और श्रीपार्वतीजीका अपने-अपने स्वामीमें प्रेम	७६.१-२
शिवविवाह-कार्य करानेवाले महर्षिके नाम	९९
शिवजी भगवान्के आवेशावतार	९८.४, ११०.१
शिवसमाज और देवसमाज	९३
" के गुणपरक भाव	९३.८, ९३
शिवजी समाधिस्थ और उसी समय राम-रावण-युद्धके दर्शक भी	६०.२
शिव, ब्रह्म, कर्ता, कर्म, अर्हन् आदि सब श्रीरामजीके नाम हैं	११६
शिव, भुशुण्डि आदि रामस्वभावके जानकार	१४६.४
शील	७६.५, १०५.१, १२७.१—४
,, (=परिपूर्ण)	१५५.२
शुक्र (शुक्राचार्य)	६४, १५४.१
" और बृहस्पति	१५४.१
" (=तेज)	६४.६
शुनासीर	१२५.७
शेषजी रामचरितके वक्ता	१०९.८
शैल-नदी आदि अचरोंके दो रूप जड़ और चेतन	९४.४
श्रद्धा-उत्साहसे धन-धर्मकी वृद्धि	४४.८
श्रवण, विचार और प्रत्यक्षदर्शनमें बहुत अन्तर	९६.५-६

विषय	दोहा-चौपाई आदि
'श्री' श्रीजानकीजीका नाम है	१४७.६
श्री और माया भिन्न-भिन्न हैं	१२९.८
श्रीनिवास	१२८.४
श्रीवत्स	१४७.६
श्रीभगवान्	७१
श्रुतिमाथ	१२८.४
श्रुतिसिद्धान्त हारीतमत	१०९
'' अर्थपंचक	१०९
श्रुतिसेतु	८४.६, १२१
श्रोताकी खातिरी वक्ताओंकी रीति है	११२
श्रोताके लक्षण	१०५.१-२
'' को वक्ताओंसे सुख	१०४.१, १०५.२
(उत्तम) श्रोतासे वक्ताको सुख	१०५.१-२
श्वान, इन्द्र और युव एक सूत्रमें	१२५
षट्-वदन	१०३.७
षट्-रस	१७३.१
षडैश्वर्य मुक्तकोटिके जीवोंमें भी हो जाते हैं	४६.३
षोडशोपचार पूजन	४५.५-६
संकल्प	५७.२
संत-गुरु आदिकी निन्दा सुननेपर कर्तव्य	६४.३-४
संत-महात्माओंके चरणोंमें तीर्थोंका निवास	६६.७
संतपादोदकका माहात्म्य	६६.७
संतकी प्रशंसा किन लक्षणोंसे	१६०.२
'' लक्षण जिसकी कोई नकल नहीं कर सकता	१६१
संदेह विशेष दोनों पक्षोंके बलवान् होनेपर होता है	५०.५
संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि	६१.१, १२७.१
संवाद	४७
'' के प्रसंगकी रीति	१२४
सँभारना	१७०.७
संयम, धीरज, धर्म	८४.७-८
संशय	४५.७
'' के निरसनका तुरत प्रयत्न करे	५१.६
'' पार्वती, गरुड़, भरद्वाजके एक-से हैं	११९
संशयात्माका कल्याण नहीं	५१.६
सकल गुण	६७.१
सखा सही	८६ छन्द
सच्चिदानन्द	५०.३, १४४.२
'' का प्रयोग ऐश्वर्यमें	११६.५
'' ब्रह्मका स्वरूप है न कि गुण	११६.१
सज्जनोंके यहाँ चार बातोंका अभाव नहीं होता	६६.८
सतीजी विष्णुतेजका अवतार	६४.६
'' विष्णुमायाका अवतार	४७.८
सती, सती-विवाह, सतीजन्मके पूर्वकी कथा	७९.८
'' का सीतारूप कब छूटा	५५.४—६
'' की बहिनों-बहनोइयोंके नाम	६२.१—३
'' '' रामपरीक्षा-विधिमें चूक	७८.३-४
'' '' '' से कितना संदेह निवृत्त हुआ	१०९.५-६
,, के दक्षयज्ञमें जानेका मुहूर्त	६२
,, के हरिसे वर माँगनेपर विचार	६५.५-६
,, को चार अग्नि लगीं	६३.६, ६५.६
,, के प्रश्नोंमें रूप, लीला, नामका क्रम	१०८.५—७
सती-मोह-प्रसंगपर आक्षेप और उसका उत्तर	५४.१-२
सती-मोहसे उपदेश	१०४.७-८, १२४
सतीत्वका बल	१२३.७
सत्ता जहाँ स्वल्पमात्र नहीं होती वहाँ भ्रम नहीं होता	११७
सत्पुरुषोंके संगमें जड़ भी सुखदाई हो जाते हैं	६५.७
सत्य (शुचि और अपावन)	७५.२
'' (परिवर्तनरहित, अपरिणामी)	११२.१-२, ११७.७-८
'' युगमें प्राण अस्थिगत रहता है	१४५.४
सत्संग-(स्वप्नमें किये हुए-) का माहात्म्य	११५.१-२
सत्संगकी याचना दो ही महात्माओंने की है	४८.१-२
सद्गुरु-लक्षण	१०६
सप्तद्वीप	१५४
'' जीतनेमें समुद्र कैसे पार किये	१५४
सप्तर्षि	७५.४, ७७.८
'' वर्तमान मन्वन्तरके	७७.८

विषय	दोहा-चौपाई आदि
सप्तर्षिके स्थान वा आश्रम	८२.३-४
,, शिवविवाहके मध्यस्थ	७७.८
,, तपस्वियोंकी देखभाल करते हैं	७८.४
,, के वचन और उनके उत्तर	८०.८
,, के वचनोंके निन्दा और स्तुतिपक्षके भाव	७९.५-६
सब दुःख	१५५.२
सब सुख	११३
सभासदोंको सभामें यथार्थ कहना चाहिये	६४.१
,, का अयथार्थ सुनकर चुप रहना पाप है	१
'सभीत अति' का स्वरूप	५५.५
सम (=कुछ कम)	१८०.६
सम तूल	११३.४
समन्वय सिद्धान्त	११२.१-२, ११६.१-२
,, ,, में सगुण निर्गुण, माया	११६.१-२
समर्थको दोष नहीं	६९.८
समाज (सभा, जुटाव)	४४.७
,, के अनुकूल वेषसे वहाँ जाय	१३५.१—३
समाधि	५८.८, १२७.१—४
समालोचकको बताना चाहिये कि दोषकी सम्भावना क्यों और कैसे है	६५.५
समुद्रके चौदह रत्न	१०६
सयानपनके रहते प्रभु कृपा नहीं करते	१८६ छन्द
सहज वैर	६६.१-२
,, ,, जीवनभर रहता है	
सहज स्वरूप	५८.८
सही	८६, ९४ छंद
सांख्यशास्त्र (सेश्वर और कपिल)	११६, १४२.७
सादर	४७.५, ११४.१-२
,, मज्जन	४४.४
साधक अति कष्टमें भी इष्टका प्रेम नहीं छोड़ते	८१.६-७
साधना	१५४.५, १७१.३
साधु-सन्तोंको उपदेश	१६१
साधु साधु	१८५.८
सामवेदमें रामकथा	११५.४
सावधान सुनु	१२२.३-४

विषय	दोहा-चौपाई आदि
साष्टाङ्ग प्रणाम	१३८.२
सिद्ध	६१.१
सिद्धान्त समूहका होता है	११०.१
'सिरु नाई' (प्रणाम) से कार्यसिद्धि	८४.३
सिरपर तृण धारण करना दासत्वका स्वीकार करना है	१६७.८
(श्री) सीताजी चिद्रूपा	१५२.४
,, के सम्बन्धमें 'माया' शब्दका प्रयोग	१५२.४
सीदना	१२१.७
सीपमें रजत, रज्जुमें सर्प और रविकिरणमें जलका भास क्यों	११७
सुख दो प्रकारका	७९.८
सुख-दुःख दोनोंमें पुलकादि	६८.१—३
सुजान किसीको दोष नहीं देते	५६.६
सुधा-सम	११२.५
सुनासीर	११५.७
'सुनु' के अन्तर्गत मनन, निदिध्यासन भी हैं	११५
सुन्दरतामें प्राणदा शक्ति है	८६.८
सुभद	९१
सुमति	१६२.३
'सुर' (शब्दका प्रयोग दक्षयज्ञप्रसंगमें)	६१.१—४
सुरतरु सुरधेनु	१४६.१
सुरधेनु (कामधेनु)	११३
सुरलोक सब	११३
सुविचार	७२
सुशीलता	१२७.१—४
सुहृद्	१६०.५
सूपशास्त्र	९९.४
सेज	१७२.१
सेना चतुरंगिणी	१५४.३
सेनाके दस संघ	,, ,,
सेवक-धर्म कि स्वामीको संकोचमें न डाले	४८
सेवत सुलभ	१४०.८
सोचमें निद्रा नहीं आती	१७०.२
सौभरि ऋषि	६०.१-२.
सौभाग्य-वर्णन	६६.८
स्त्रियोंकी परतन्त्रता	५३

विषय	दोहा-चौपाई आदि
स्त्रियोंका वेदाधिकार	११०.१
स्त्रीको सौन्दर्य प्रिय है	१३१
स्त्रीका नाम नहीं लिया जाता	१३२.६
स्त्री-लालसा योग, ज्ञान, भक्तिका नाशक है	१३३.१
स्त्री-संग्रहका विचार विरक्तके मनमें आते ही अनेक दोष आ जाते हैं	१३१.२—५
स्त्री-सम्बन्धी विचार	१३९
स्त्री-स्वभाव	५३.५
स्नानसे थकावट दूर होती है	१५९.१
स्नेह (=कोमलता)	९६
स्मरणयोग कौन है	१२९.१-२
स्वप्नके विकल्पमें केवल मन द्रष्टा, दर्शन और दृश्यरूप होकर भासता है	११८.३
स्वप्नके सत्संगका माहात्म्य	११५.१-२
स्वभाव प्रबल है, सब उससे लाचार हैं	४९.४, ५३.५
स्वभावका प्रभाव	५३.५
" केवल धर्मशीलता आदिसे नहीं जाता, हरिभक्तिसे जाता है	१७६.५
स्वयंवरा सखी	१३४
स्वर्ग २१ हैं	११३
स्वातिबुन्दसे पात्रानुसार पृथक्-पृथक् गुण	११३.८
हटकना	६३
हर, रुद्र, महेश	९६.५-६
हरि	१८७.८
हरि (के अर्थ)	११७.७-८
हरि इच्छा, भावी, माया तीनों प्रबल	५६.६
'हरि इच्छा भावी बलवाना' तब पुरुषार्थका क्या प्रयोजन	५२.७
हर्ष यात्रा-समय शकुन	१५४.४
हर्ष-शोकके अश्रु आदिकी पहचान	६८.१, २२८
हाथ जोड़नेसे देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं	१५०.३
हास	५३.६
हास, प्रसन्नता, स्वभाव, माया	१२८.५-६
हास्यरस नैतिक सुधारका सहायक	१२७
" का महाकाव्यकलामें प्रयोग तुलसीका कमाल है	
" का उचित प्रयोग यही है कि हास्यपात्रका हित हो	१२९.५-६
" की एक सूक्ष्म बात	९४ छंद
हितोपदेश न मानना विधिकी प्रतिकूलता जनाता है	५२.६
हिमाचलके यहाँ सब वस्तुओंकी शोभा अकथनीय	९४
" से अधिष्ठातृदेवता अभिप्रेत है	६५.५-६, ९४.५
हिमाचलका जन्म शिवजीके दक्षिण बगलसे	६५.६
" भगवतीके लिये तप	६५.६
हेतु (=प्रेम)	८३.८, १०७.५
हृदयनिकेत	८६
'होइहि सोइ जो राम रचि राखा' तब पुरुषार्थ क्यों करें	५२.७

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

कुछ ग्रन्थोंके नाम जो खण्ड २ में आये हैं

अगस्त्यरामायण
अगस्त्यसंहिता
अद्भुतरामायण
अध्यात्मरामायण
अनेकार्थकोश
अन्वितार्थप्रकाशिका टीका (श्रीमद्भागवतकी)
अभिप्रायदीपक
अभिज्ञान शाकुन्तल
अमरकोश
कामसूत्र (वाभ्रव्यऋषि)
कार्तिकमाहात्म्य
काशीखण्ड
किशोररामायण
कुमारसम्भव
कुलार्णवतन्त्र
कृष्णगीतावली
कोशलखण्ड
गीता
गीता-ज्ञानेश्वरी टीका
वाराह, विष्णु, शिव, स्कन्द, हरिवंश
प्रबोधचन्द्रनाटक
प्रसन्नराघवनाटक
विजयदोहावली
विनय-पत्रिका
बरवै रामायण
वैराग्यसंदीपनी
भक्तमाल (श्रीनाभाजी)
भक्तिरसबोधिनी टीका

अमरविवेक टीका (महेश्वरकृत)
अमरव्याख्यासुधा
अलङ्कार-मञ्जूषा
अष्टाध्यायी (पाणिनि)
अष्टावक्रवेदान्त
आगमसार
आचारमयूख
आनन्दरामायण
आत्मरामायण
आह्निक-सूत्रावली
उपनिषद्—
कठ, छान्दोग्य, तैत्तिरीय,
मुक्तिकोपनिषद्, श्रीरामतापनी,
श्रीरामरहस्य, बृहदारण्यक,
शाण्डिल्य, श्वेताश्वतर,
श्रीसीतोपनिषद्।
उपनिषद्भाष्य (श्रीदर्शनानन्दकृत)
उमानन्दनाथकृत तान्त्रिक ग्रन्थ
(श्री) एकनाथमहाराजकी भागवत
टीका
एकाक्षरकोश
ऋग्वेद
कथासरितसागर
कवितावली
कामन्दकीय नीतिसार
(प्रतिष्ठेन्दुशेखर)
रघुवंश
रसरलहार
राजशिक्षा सोपान
रामचन्द्रिका
(श्री) रामरहस्यत्रय
(श्री) रामस्तवराज
" भावप्रकाशिका
टीका श्रीरसरंगमणिकृत
रामहृदय
'रायलहारस्कोप'
(वि० सूर्यनारायणकृत)
(श्री) रामाज्ञाप्रश्न
लट्टायनसंहिता
लोमशरामायण
लोलम्बराज
वसिष्ठसंहिता
वात्स्यायनसूत्र
विश्रामसागर
विष्णुधर्मोत्तर
वीरभद्रचम्पूवेदान्तसार
अभंगरामायण (मराठी)

गीतावली
चर्पटपञ्जरी
चाँद (पत्रिका)
चाणक्यनीति
(श्री) जानकीभाष्य (श्रीराम-
प्रसादाचार्य)
तार्किकरक्षा
तुलसीपत्र (बालकराम विनायक)
त्रिकाण्डशेष कोश
(श्री) दुर्गाकल्पद्रुम शास्त्रार्थ-
परिच्छेद
देवीभागत
दोहावली
नवरस तरंग (श्रीशबरीशजी)
नक्षत्रचित्रपट श्रीरघुनाथशास्त्रीकृत
नारदपञ्चरात्र
नारदभक्तिसूत्र
(श्री) निम्बार्काचार्यभाष्य
पाण्डवगीता
पातञ्जलयोग
पार्वतीमङ्गल
पुराण—
कालिका, गरुड़, पद्म, ब्रह्माण्ड,
भविष्योत्तर, श्रीमद्भागवत,
मत्स्य, महाभारत, मार्कण्डेय,
लिङ्ग, वायुपुराण, वामन,
वैदिक निघण्टु
शतपथब्राह्मण
शाङ्करभाष्य (ब्रह्मसूत्रपर)
शिवसंहिता
शिवस्मृति
शुकदेवलालकी टीका
शुक्रनीति
शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिन
वाजसनेयी
रुद्राष्टाध्यायी
श्रीभाष्य
संगीतदामोदर
सतसई (तुलसीकृत)
सत्यार्थप्रकाश (स्वामीदयानन्द)
सदाशिवसंहिता
सनत्कुमारसंहिता
सप्तशती
सरयूदासजीका रामचरितमानस-
का गुटका
सांख्यकारिकाभाष्य
(गौडपादाचार्य)

(श्रीप्रियादासजी)
भक्तमालकी टीका (श्रीरूपकलाजी)
भक्तिरसायन
भर्तृहरिशतक
भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व
भावार्थरामायण
भास्करबीजगणित
भुवनेश्वरसंहिता
मनुसंहिता
मनुस्मृति
" कल्लूकभट्टकृत टीका
मन्त्ररामायण (यजुर्वेद)
महारामायण
माधवनिदान
माधुरी (पत्रिका)
माध्यन्दिन शुक्लयजुर्वेदीय
मानसतत्त्वविवरण
मानसपत्रिका
मानसमणि
मानसर
मानसाङ्क (गीताप्रेस)
मेदिनीकोश
यजुर्वेद
योगतारावली
योगशास्त्र
योगसूत्र
सांख्यतत्त्व कौमुदी
सांख्यशास्त्र
सामवेदभाष्य (जयदेव
वेदालङ्कार)
साहित्यदर्पण
सिद्धान्ततत्त्वदीपिका
सिद्धान्तशिरोमणि
(श्रीभास्कराचार्य)
सुधा (पत्रिका)
सुन्दरविलास
सुन्दरी तन्त्र
सूर्यसिद्धान्त
सौन्दर्यलहरी
स्वप्नाध्यायी
हठयोगप्रदीपिका
हनुमानबाहुक
हस्तामलकस्तोत्र
हितोपदेश
हेमकोश

नोट— श्रीरामचरितमानसकी टीकाओंके नाम तथा संकेताक्षरोंके विवरण सब खण्ड १ में दिये जा चुके हैं, अतः यहाँ नहीं दिये जाते।

श्रीशिव-पार्वती

* श्री: *

ॐ नमो भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्याय। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः।

ॐ नमो भगवत्या अस्मदाचार्यायै श्रीरूपकलादेव्यै। श्रीसन्तगुरुभगवच्चरणकमलेभ्यो नमः।

ॐ नमो भगवते मङ्गलमूर्त्तये कृपानिधये गुरवे मर्कटाय श्रीरामदूताय सर्वविघ्नविनाशकाय क्षमामन्दिराय

शरणागतवत्सलाय श्रीसीतारामपदप्रेमपराभक्तिप्रदाय सर्वसंकटनिवारणाय श्रीहनुमते।

ॐ साम्बशिवाय नमः। श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः।

परमाचार्य्याय श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासाय नमः।

श्रीरामचरितमानस

प्रथम सोपान (बालकाण्ड खण्ड २)

अथ श्रीभरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद-प्रकरण

दो०—अब रघुपति पद पंकरुह हिअँ धरि पाइ प्रसाद।
कहौं जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद॥ ४३॥

शब्दार्थ—**पंकरुह**=कमल। **प्रसाद**=प्रसन्नता, कृपा। **बर्य**=श्रेष्ठ।

अर्थ—अब श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको हृदयमें रखकर और उनकी प्रसन्नता पाकर मैं दोनों मुनिश्रेष्ठों-(भरद्वाज और याज्ञवल्क्य-) का मिलना और उनका सुन्दर संवाद कहता हूँ॥ ४३॥

टिप्पणी—१ (पं० रामकुमारजी) '**अब**' कहकर पूर्वके '***जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई॥ कहिहौं सोइ संबाद बखानी।***' (३०। १-२) इस प्रसंगको यहाँ मिलाते हैं। पुनः इस शब्दसे रामचरितमानसके प्रसंगका आरम्भ यहाँसे जनाया।

टिप्पणी—२ ऊपर दोहेमें '***सुमिरि भवानी संकरहि***' कहकर तब इस दोहेमें श्रीरामपदकमलको हृदयमें धारण करना लिखनेका भाव यह है कि श्रीशिवजीकी कृपासे श्रीरामपदपंकजकी प्राप्ति है, यथा—'***जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥***' (१। १३८) इसी प्रकार पहले '***सिवा-सिव-पसाऊ***' पाना कहा था, यथा—'***सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ।***' (१। १५) और पीछे यहाँ श्रीरघुपतिप्रसाद पाना कहा।

टिप्पणी—३ रामायणका मुख्य प्रसंग यहाँसे प्रारम्भ होता है। '***रघुपति पद पंकरुह***' से प्रारम्भ कर [illegible] इष्टदेवकी वन्दनाकी आवश्यकता आदिमें सूचित की। '***पाइ प्रसाद***' से इस काव्यमें दैवी शक्तिकी महत्ता दिखायी। यह प्रसाद-काव्य है। '***जुगल मुनिबर्य***' के संवादरूपी कर्मघाटसे प्रारम्भ करके यह सूचित किया कि प्रथम अन्तःकरणकी शुद्धता होती है तब भगवत्स्वरूपका ज्ञान होता है और तत्पश्चात् उपासना। यह सनातन वेदमर्यादा है। इसीका पालन पूज्य ग्रन्थकारने भी किया है।

नोट—१ रामायणपरिचर्यामें (जिसका आधार संवत् १७०४ की पोथी है) इस दोहेके ऊपर निम्न दोहा अधिक है।

भरद्वाज जिमि प्रस्न किय जागबलिक मुनि पाय। प्रथम मुख्य संबाद सोइ कहिहौं हेतु बुझाय॥

नोट—२ *'अब रघुपति पद पंकरुह'……'* इस दोहेके साथ उसके पूर्ववाले दोहेके उत्तरार्ध *'सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ'* को लेकर यों भी अर्थ किया जाता है कि—'भवानी-शंकरका स्मरण करके श्रीरामचन्द्रजीके पदकमलोंको हृदयमें धारण करके और दोनोंका प्रसाद पाकर……' आगेकी कथा कहता हूँ।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहिं रामपद अति अनुरागा॥१॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥२॥

अर्थ—श्रीभरद्वाज मुनि प्रयागमें रहते हैं। उनका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है॥ १॥ वे तपस्वी हैं, शम, दम और दयाके (तो) खजाना या समुद्र ही हैं और परमार्थके मार्गमें बड़े ही सुजान हैं॥ २॥

नोट—१ *'भरद्वाज मुनि'* इति। शब्दसागरकार लिखते हैं कि—'अङ्गिरस गोत्रके उतथ्य ऋषिकी स्त्री ममताके गर्भमेंसे उतथ्यके भाई बृहस्पतिके वीर्यसे उत्पन्न एक वैदिक ऋषि जो गोत्रप्रवर्तक और मन्त्रकार थे। कहते हैं कि एक बार उतथ्यकी अनुपस्थितिमें उनके भाई बृहस्पतिने उनकी स्त्री ममताके साथ संसर्ग किया था जिससे भरद्वाजका जन्म हुआ। अपना व्यभिचार छिपानेके लिये ममताने भरद्वाजका त्याग करना चाहा, पर बृहस्पतिने उनको ऐसा करनेसे मना किया। दोनोंमें कुछ विवाद हुआ, पर अन्तमें दोनों ही नवजात बालकको छोड़कर चले गये। उनके चले जानेपर मरुद्गण उनको उठाकर ले गये और उनका पालन-पोषण किया। जब भरतने पुत्रकामनासे मरुत्स्तोम यज्ञ किया तब मरुद्गणने प्रसन्न होकर भरद्वाजको उनके सुपुर्द कर दिया……' 'भावप्रकाश' के अनुसार अनेक ऋषियोंके प्रार्थना करनेपर ये स्वर्ग जाकर इन्द्रसे आयुर्वेद सीख आये थे। ये राजा दिवोदासके पुरोहित और सप्तर्षियोंमेंसे भी एक माने जाते हैं।

पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज कहते हैं कि—'क्षेत्र दूसरेका और बीज दूसरेका, ऐसे दोसे जो उत्पन्न हो उसे 'द्वाज' कहते हैं। ममताने बृहस्पतिसे कहा कि आप इसका भरण-पोषण करें और बृहस्पतिने कहा कि तुम करो—'**मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते।**, इसीसे भरद्वाज नाम हुआ'। भारत और भागवतमें इनकी कथा विस्तारसे है। ये वाल्मीकिजीके शिष्य हैं। वनवासके समय श्रीसीता-राम-लक्ष्मणजी आपके आश्रमपर गये थे। श्रीभरतजीकी पहुनई आपने अपने तपोबलसे जिस प्रकारसे की, उसका वर्णन वाल्मीकीयमें विस्तृतरूपसे है। इस ग्रन्थमें भी संक्षिप्तरूपसे उस अद्भुत पहुनईका वर्णन है।

टिप्पणी—१ *'बसहिं'* शब्द देकर याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवादका स्थान प्रयाग बताते हैं। *'तिन्हहिं राम पद अति अनुरागा'* कहकर जनाया कि रामोपासक हैं। यहाँ *'अति'*, *'परम'* और *'निधान'* शब्दोंको देकर औरोंसे इनकी उत्कृष्टता सूचित की है। *'निधाना'* शब्द सम, दम और दया तीनोंके साथ है

टिप्पणी—२ *'तापस सम दम दया निधाना'* इति। तापस अर्थात् तपस्वी हैं, तपसे तनको कसते हैं। शम-दम-दयानिधान हैं अर्थात् भीतर-बाहरकी इन्द्रियोंको कसते हैं—यह भी तप है। *'तापस सम दम दया निधाना'* का भाव यह है कि अपने तनको तपसे ताप देते हैं और दूसरोंके लिये दयाके निधान हैं। पुनः, इन विशेषणोंसे सूचित किया है कि ये कर्मकाण्डी हैं।

नोट—२ *'तापस सम दम दया'……'* इति। इन शब्दोंसे हमलोगोंको यह उपदेश लेना चाहिये कि

केवल तप अर्थात् शारीरिक कष्ट मनुष्यका कर्तव्य नहीं है, किंतु उसके साथ शम, दम अर्थात् मन और इन्द्रियोंका निग्रह भी परमावश्यक है। नहीं तो वह तप तामसिक हो जायगा और लाभके बदले उससे हानिकी सम्भावना है, जैसा कि गीतामें स्वयं भगवान्ने कहा है—'**मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः। ...... तत्तामसमुदाहृतम्॥**' (१७।१९) '**जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥**' (१४।१८) अर्थात् जो तप मूढ आग्रहसे आत्माको पीड़ा देकर किया जाता है वह तामस है। निकृष्ट गुणोंकी वृत्तियोंमें स्थित तमोगुणी नीचेको जाते हैं।

टिप्पणी—३ '***परमारथ पद***' में सुजान कहकर ज्ञानी भी होना दिखाया तथा इनमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंकी उत्कृष्टता दिखायी। परंतु श्रीरामपदानुराग मुख्य गुण है, इसीसे उसे सबसे पहिले कहा। '***राम पद अति अनुरागा***' उपासना है, '***तापस सम दम दया निधाना***' कर्मकाण्ड है और '***परमारथ*......**' ज्ञान है।

नोट—३'***तापस सम दम दया निधाना***' इति। (क) इन्द्रियोंको वशमें करने और दुष्कर्मोंसे बचनेके विचारसे बस्ती छोड़कर शरीरको कठिन उपवास-व्रत-नियमसे कष्ट दिये जानेकी रीति प्राचीनकालसे चली आती है। इसीको 'तप' कहते हैं। ऐसे लोग प्रायः फूसकी झोपड़ी या गुफामें या वृक्षोंके नीचे वास करते हैं, कंद-मूल-फलपर रहते हैं, गर्मीमें पञ्चाग्नि तापते, वर्षामें मेघडम्बर धारण करते और जाड़ेमें जलशयन करते हैं। कभी-कभी अभीष्टसिद्धिके लिये भी तप करते हैं। श्रीमनु-शतरूपाजी, श्रीपार्वतीजी और श्रीभरतजीके तप इसी ग्रन्थमें देखिये। गीताके अनुसार तप तीन प्रकारका होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवताओं, गुरुजनों और द्विजोंका पूजन, बड़ोंका आदर-सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तपके अन्तर्गत हैं। सत्य और प्रिय बोलना, वेद-शास्त्र पढ़ना आदि वाचिक तप हैं और मौनावलम्बन, आत्मनिग्रह आदिकी गणना मानसिक तपमें है। (गीता १७। १४—१६)। (ख) '***सम***' (शम)=अन्तःकरण तथा ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें करना। '***दम***'=कर्मेन्द्रियोंको वशमें करना, बुरे कर्मोंकी ओर न जाने देना। '***दया***'=कारण या स्वार्थरहित कृपा।

(ग) 'वेदान्तभूषणजीका कथन है कि सम-दम-निधान कहनेहीसे 'तापसका' अर्थ सिद्ध हो जाता है, क्योंकि शम-दमादि तपके प्रधान अंग हैं, तब तापस क्यों कहा गया ? इसका उत्तर यह है कि '**तप संतापे**' और '**तप आलोचने**' धातुसे तापस शब्दकी सिद्धि है। '**तप संतापे**' से सिद्ध '***तापस***' के अभ्यन्तर शम-दमादि आ जाते हैं। परंतु '**तप आलोचने**' से सिद्ध तापसमें ये नहीं आते। शम-दमादि तप सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन प्रकारका होता है (गीता १७। १७-१८)। यहाँ '**तप आलोचने**' से निष्पन्न तापसका अर्थ 'विचारमान्' है; तात्पर्य कि भरद्वाज महर्षिवर शम-दमादि साधन विचारपूर्वक करते हैं। अर्थात् सात्त्विकी हैं, राजसी या तामसी नहीं हैं।

नोट—४ '***परमारथ पथ परम सुजाना***' इति। 'अर्थ' शब्दके अनेक अर्थ हैं। (क) परमार्थ=सबसे उत्कृष्ट पदार्थ, सार वस्तु, यथार्थ तत्त्व। यहाँ परमार्थ-पथमें परम सुजान कहकर जनाया कि अर्थपञ्चकके परम जानकार हैं। 'परब्रह्मका स्वरूप, जीवात्माका स्वरूप, परमात्माकी प्राप्तिका उपाय, प्राप्तिके फल और प्राप्तिके विरोधियोंका स्वरूप—ये ही पाँच अर्थ हैं' जो समस्त वेदों, पुराणों और इतिहासोंमें कहे गये हैं। इनका जानना जीवके कल्याणके लिये परमावश्यक बताया गया है, यथा—हारीतसंहिता— '**प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः। प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधिनः॥ वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः। मुनयश्च महात्मानो वेदवेदाङ्गवेदिनः॥**' श्रीरामरहस्यत्रयमें भी यथा—'**एते च पञ्चार्थाः सर्ववेदादिकारणस्य श्रीराममन्त्रस्यार्थाः।**' (श्रीमद्धरिदासाचार्यवर्य्यके द्वारा सम्पादित)

(ख) परमार्थपथ—परलोकका मार्ग; यथार्थ परमतत्त्वकी प्राप्ति या जाननेका मार्ग। परमार्थ क्या है? यह मानस, विनय, दोहावली आदि ग्रंथोंमें गोस्वामीजीने स्वयं जहाँ-तहाँ बताया है, यथा—'***एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥***' (२।९३) अर्थात् संसारके प्रपंचसे विरक्त ही

'परमार्थी' हैं। *'परमारथ पहिचानि मति लसति बिषय लपटानि। निकसि चितातें अधजरति मानहुँ सती परानि॥'* अर्थात् परमार्थवेत्ता विषयमें लिप्त नहीं होता। *'सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू॥'* अर्थात् मन, कर्म, वचनसे श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम होना ही 'परम परमार्थ' है। *'राम ब्रह्म परमारथरूपा', 'रामनाम प्रेम परमारथको सार रे॥'* (वि० ६८) अर्थात् श्रीराम और श्रीरामनाम ही परमार्थ हैं। 'परमार्थ' परम और अर्थ दो शब्दोंसे मिलाकर बना है। इस प्रकार परमार्थ=परम अर्थ। 'अर्थ'=वस्तु; पदार्थ। सबसे 'परम' (श्रेष्ठ) जो पदार्थ है वही 'परमार्थ' है। सर्वश्रेष्ठ 'अर्थ' क्या है ? जो अजर, अमर, अविनाशी, अनादि, अनन्त, सत्य इत्यादि विशेषणोंसे युक्त हो वही 'सर्वश्रेष्ठ अर्थ' है। ऐसे तो एक ब्रह्म श्रीरामजी ही हैं और इसी आशयसे मानसकविने *'राम ब्रह्म परमारथरूपा'* कहा। अब उस 'परमार्थरूपी' श्रीरामजीकी प्राप्तिके लिये जितने भी साधन कहे गये हैं, उनको 'परमार्थपथ' कहा जायगा। सुजान=चतुर, जानकार, कुशल।

(ग) श्रीलाला भगवानदीनजी कहते हैं कि भरद्वाज मुनिके लिये *'परमारथ पथ परम सुजाना'* यह विशेषण इसलिये दिया गया है कि ये कर्मकाण्डके आचार्य हैं। कर्मकाण्डमें जो परम सुजान हो वही परमार्थपथमें निभ सकता है, अन्यथा नहीं। इस बातके प्रमाणस्वरूप वह घटना है जो आगे अयोध्याकाण्डमें वन जाते समय भरद्वाजजीसे श्रीरामजीने पूछा है कि *'नाथ कहहु हम केहि मग जाहीं।'* अर्थात् जब ये परमार्थपथमें अति चतुर हैं तब हमें ऐसा पथ जरूर बतायेंगे जिसपर चलकर हम अवतार धारण करनेकी समस्त लीला (कर्म) अवाध्यरूपसे कर सकें।

श्रीमद्भागवत-द्वादशस्कन्धमें परमार्थका निरूपण श्रीकृष्णजीने श्रीउद्धवजीसे और श्रीशुकदेवजीने श्रीपरीक्षित्‌जीसे किया है। उसका सारांश यह है कि जो कुछ वाणीद्वारा कहा जाता है और मनसे चिन्तन किया जाता है वह सब मिथ्या है। जैसे प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि और आभास अवस्तु वा असत् होकर भी वस्तुबोधवश सत्यवत् भासनेसे अनर्थका कारण होते हैं, उसी प्रकार देहादि उपाधियाँ भी असत् होनेपर भी मृत्युपर्यन्त भय देती रहती हैं। यथा—'**वाचोदितं तदनृतं मनसाध्यातमेव च॥' छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः। एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम्॥**' (११।२८।४-५) 'देह जन्मता-मरता है। यह किसी समय नहीं था, समय पाकर उत्पन्न होता है और फिर समय पाकर नष्ट भी हो जाता है। जैसे बीजसे अंकुर और अंकुरसे बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तुम इस समय उत्पन्न होकर भी अब पुत्र-पौत्रादि-रूपसे पुनः उत्पन्न न होगे, क्योंकि देहसे देह उत्पन्न होता है न कि जीवात्मा। जैसे अग्नि काष्ठमें व्याप्त रहकर भी उससे पृथक् है, वैसे ही जीव शरीरसे सर्वथा पृथक् है। आत्मा अजर और अमर है। जैसे स्वप्नावस्थामें वह अपने सिरका कटना और मृत्यु आदि देखता है, वैसे जाग्रत्‌में देह आदिके पञ्चत्वको (मरण आदिको) देखता है। जैसे घड़ेके टूट जानेपर घटाकाश महाकाशमें मिल जाता है वैसे ही देहके नष्ट होनेपर जीव ब्रह्ममें लीन हो जाता है। आत्माका देहादि उपाधियोंसे जो सम्बन्ध है वह मायाकृत है। मन ही आत्माके लिये देह, गुण और कर्मोंकी सृष्टि किया करता है। तैल, तैलपात्र, बत्ती और अग्निके सम्बन्धसे दीपकका दीपकत्व है; वैसे ही देह आदिके संयोगसे जीवका तत्कृत जन्म होता है, यह संसार उसका देह-सम्बन्ध रहनेतक ही रहता है। संसारके नाशसे उसका नाश नहीं होता। वह ज्योतिः-स्वरूप, स्वयंप्रकाश, व्यक्ताव्यक्त, सूक्ष्म और स्थूल दोनोंसे परे, आकाशके समान सबका आधार है, निश्चल, अनन्त और उपमारहित है। यह आत्मा स्वयं प्रकाश, अजन्मा, अप्रमेय, महानुभवरूप, सर्वानुभवस्वरूप एक और अद्वितीय है। यथा—'**न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः। आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः॥**' (१२।५।८) '**एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः। एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे**………॥' (११।२८।३५)

अतएव विचारवान् पुरुषको चाहिये कि किसीके भले-बुरे स्वभाव अथवा कर्मकी न तो प्रशंसा ही

करे और न निन्दा ही, नहीं तो परमार्थसाधनसे शीघ्र पतित हो जायगा।—*'निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥'* (७।११२)

माघ मकर गत रबि जब होई। तीरथपतिहि आव सब कोई॥ ३॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी॥ ४॥
पूजहिं[१] माधव पद जलजाता। परसि अखयबटु हरषहिं[२] गाता॥ ५॥

शब्दार्थ—माघ मकर—टिप्पणी १ और ४५ (१-२) में लिखा जायगा। **गत**=प्राप्त। **तीरथपति**=तीर्थोंका स्वामी, प्रयागराज। **श्रेनी** (श्रेणी)=पंक्ति, समूह। **जलजाता**=कमल। **माधव**=लक्ष्मीपति वेणीमाधवजी। यह प्रयागराजका एक प्रधान तीर्थविशेष है। **अखय** (अक्षय)=क्षय या नाशरहित, अविनाशी, कल्पान्तस्थायी। *'माधव'*, 'अक्षयवट'— (२। ११) देखिये। **परसि**=स्पर्श करके, छूकर। **हरषना**=पुलकित होना, रोमाञ्चसे प्रफुल्ल होना, यथा—*'नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गात'।* गात (सं० गात्र)=शरीरके अङ्ग; शरीर।

अर्थ—माघ महीनेमें (और) जब सूर्य मकर राशिपर प्राप्त होते हैं (अर्थात् जब मकर-संक्रान्ति होती है) तब प्रयागराजमें देवता, दैत्य, किंनर और मनुष्य (आदि) सब कोई झुण्ड-के-झुण्ड आते हैं और सभी आदरपूर्वक त्रिवेणीजीमें स्नान करते हैं॥ ३-४॥ वेणीमाधवजीके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं और अक्षयवटका स्पर्शकर उनके शरीर (सब अङ्ग) पुलकित होते हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'माघ मकर गत रबि'* इति। *'माघ'* और *'मकर गत रबि'* कहकर दो मास सूचित किये। एक चान्द्रमास, दूसरा सौरमास। इसे आगेके चौपाइयोंमें स्पष्ट कर दिया गया है। यथा—*'एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं'* यह चान्द्रमास है और *'एक बार भरि मकर नहाए'* यह सौरमास है।

टिप्पणी—२ *'जब होई'* का भाव कि मकर राशिपर सूर्य चाहे पौषमें हों, चाहे माघमें, दोनों माघ ही कहलाते हैं। मकर राशिसे सूर्य उत्तरायण माने जाते हैं। *'सब कोई'* अर्थात् जिनको आगे गिनाते हैं। देव और किंनरसे स्वर्गलोक, दनुजसे पाताललोक और नरसे मर्त्यलोकवासियोंको सूचित किया। नर शब्द अन्तमें देनेका भाव यह है कि ये सब नररूपसे आते हैं। (पुनः *'सब कोई'* से यह भी जनाते हैं कि छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, पापी और पुण्यात्मा, सभी वर्णों और सभी आश्रमोंवाले, स्त्री और पुरुष इत्यादि सभी प्रकारके लोग आते हैं। सामान्यरीतिसे इन सबोंको जनाकर तब देव, दनुज आदिको साथ ही आगे लिखकर बताया कि केवल मनुष्य ही नहीं आते, किंतु देवादि भी आते हैं।)

टिप्पणी—३ *'सादर मज्जहिं'* इति। आदरसहित मज्जन करनेसे ही तीर्थस्थानका फल यथार्थ मिलता है। [गीतामें भगवान्‌ने स्वयं कहा है कि—'**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥**' (१७। २८) अर्थात् अश्रद्धासे होम, दान, तप जो कुछ भी किया जाय वह 'असत्' कहलाता है अर्थात् उसका करना न करना बराबर है, वह न इस लोकमें काम आयेगा न परलोकमें] इसीसे ग्रन्थमें सर्वत्र *'सादर मज्जन'* लिखते हैं। यथा—*'सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥'* (१।१) *'सादर मज्जन पान किये तें। मिटहिं पाप परिताप हिये तें॥'* (१। ४२) इत्यादि। *'सादर मज्जन'* यह है कि भद्र होते हैं (अर्थात् क्षौर कराते हैं, सिर-मूँछ-दाढ़ी मुँड़वाते हैं) यथा—'**मुण्डनं चोपवासं च तीर्थस्थाने विधीयते,**' '**मुण्डनं तु विरक्तानां कच्छकुक्षविवर्जितम्।**' तीर्थका माहात्म्य सुनते हैं, स्नान करते हैं, त्रिवेणीजीकी पूजा करते हैं और दान देते हैं।

टिप्पणी—४ *'पूजहिं माधव पद जलजाता'* इति। पदकमलकी पूजा करते हैं, क्योंकि भगवान्‌के पद प्रयाग हैं, यथा—*'रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथराज बिराजै। संकर हृदय भगति भूतलपर प्रेम*

१-२— सं० १६६१ वाली प्रतिमें 'पूजहिं' और 'हरषहिं' पाठ है। 'हरषहिं' के अनुस्वारपर हरताल है। ऊपर 'मज्जहिं' है, उसी तरह यहाँ 'पूजहिं' और 'हरषहिं' उत्तम जान पड़ते हैं।

अखयबट भ्राजै॥ स्याम बरन पदपीठ अरुनतल लसति बिसद नखश्रेनी। जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चलि ललित त्रिबेनी॥ अंकुस कुलिस कमल ध्वज सुंदर भ्रमर तरंग बिलासा। मज्जहिं सुर सज्जन मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा॥ बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत बिनु तीरथ तनु त्यागे। सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु पद प्रयाग अनुरागे॥' (गीतावली ७।१४) माधव और अक्षयवटका सम्बन्ध है। वे अक्षयवटके पत्रमें निवास करते हैं। इसीसे दोनोंको एक साथ कहा। अक्षयवटसे भेंटनेकी रीति है। *'परस'* से भेंटनेसे तात्पर्य है।

नोट—१ माघ-मकर-मासमें माधवभगवान्‌की पूजाकी विशेषता इस कारण है कि वे माघके स्वामी हैं। विनायकी टीकाकार लिखते हैं कि 'द्वादश महीनेके माहात्म्यमें परमेश्वर क्रमशः एक-एक नामसे पूज्य समझे गये हैं। अगहनमें केशव, पौषमें नारायण, माघमें माधव, फाल्गुनमें गोविन्द, चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें मधुसूदन, ज्येष्ठमें त्रिविक्रम, आषाढ़में वामन, श्रावणमें श्रीधर, भाद्रमें हृषीकेश, क्वारमें पद्मनाभ और कार्तिकमें दामोदरका विशेष माहात्म्य समझा गया है।

नोट—२ मानसदीपक एवं रा० प० का मत है कि 'अभिजित्' ब्रह्म नक्षत्रपर सूर्य आते हैं इससे मकर अति पावन है। बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि माघमें माहात्म्य इससे अधिक होता है कि इस अवसरपर दो प्रयाग, एक भूमण्डल दूसरा भानुमण्डल एकत्र हो जाते हैं। काष्ठजिह्वास्वामीजी लिखते हैं—*'माघमें काहे महातम लाग सब दिन मिलत प्रयाग। महिमंडलको यह प्रयाग नित यामें नहिं कछु दाग॥ दिव्य प्रयाग भानुमंडलमें ताको सुनहु बिभाग। कछुक उदित रबि सोई गंगा अनुदिन जमुना ताग। सरस्वती प्राची अस गाई संगम ललित सोहाग॥ मकरै में रबि अरुण नाम के भए सोराग। दोऊ प्रयाग मिलत हैं या में यह सुनतै मन पाग॥ कछुक उदित रबि में नहाइ अस व्यासदेव को बाग। वही भाव कोमल दरसावत भाग जनन को जाग॥'*

नोट—३ यहाँ *'दरस, परस, मज्जन'* तीनों दिखाये। *'पूजहिं माधव'*……' से दर्शन, *'परसि अखयबटु'*……' से स्पर्श और *'सादर मज्जहिं'* से मज्जन।

नोट—४ *'हरषहिं गात'* इति। वीरकविजीका मत है कि 'गात-शब्दमें मन या हृदयकी लक्षणा है, क्योंकि हर्षका स्थान हृदय या मन है, गात नहीं।'—परंतु 'हर्ष' का अर्थ 'पुलकित होना' भी है। यह अर्थ ग्रहण करनेसे लक्षणाकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥६॥
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन* तीरथ राजा॥७॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा॥८॥

शब्दार्थ—**आश्रम**=ऋषियों, मुनियों, साधु-सन्तोंका निवासस्थान। **रम्य**=सुन्दर, रमणीय। **मन भावन**=मनको भाने या अच्छा लगनेवाला। **प्रात**= सबेरे प्रभातके समय। ☞ रातके अन्तमें सूर्योदयके पूर्वका काल। यह तीन मुहूर्तका माना गया है। जिस समय सूर्योदय होनेको होता है उससे डेढ़-दो घंटे पहले पूर्व दिशामें कुछ प्रकाश दिखायी पड़ने लगते हैं और उधरके नक्षत्रोंका रंग फीका पड़ना प्रारम्भ होता है तभीसे इस कालका प्रारम्भ माना जाता है। (श० सा०) '**पञ्च पञ्च उषः कालः षट्पञ्चारुणोदयः। सप्तपञ्च भवेत् प्रातः पश्चात्सूर्योदयः स्मृतः॥**' इस प्रमाणानुसार पचपन दण्ड बीतनेपर (अर्थात् सूर्योदयसे पाँच दण्ड पहले) उषःकाल, छप्पन दण्डपर (अर्थात् सूर्योदयके चार दण्ड पूर्व) अरुणोदय, सत्तावनपर प्रातः और उसके पश्चात् सूर्योदय होता है।

अर्थ—श्रीभरद्वाजजीका आश्रम अत्यन्त पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियोंके मनको भानेवाला है॥६॥

* मज्जहिं—ना० प्र०; १७०४। मज्जन—१६६१, १७२१, १७६२, छ०।

वहाँ (उनके आश्रममें) उन मुनियों, ऋषियोंका समाज होता है जो तीर्थराज प्रयागमें स्नानको जाते हैं॥७॥ (वे सब-के-सब) प्रात:काल उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और आपसमें एक-दूसरेसे भगवान्के गुणोंकी कथा कहते हैं॥८॥

टिप्पणी—१ (क) ***'अति पावन'*** का भाव कि प्रयागराजकी सभी भूमि तथा समस्त प्रयागवासियोंके आश्रम पावन हैं और भरद्वाजजीका आश्रम ***'अति पावन'*** है। इसका कारण आगे कहते हैं कि ***'तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा।'*** (ख) ***'मुनिबर मन भावन'*** इति। जो स्थान पवित्र और सुन्दर होता है वही मुनियोंके मनको भाता है, यथा—***'आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥', 'सुचि सुंदर आश्रम निरखि हरषे राजिवनैन',*** तथा यहाँ ***'भरद्वाज आश्रम अति पावन'।*** इसीसे यहाँ ***'अति पावन'*** और ***'परम रम्य'*** कहकर तब ***'मुनिबर मन भावन'*** कहा।

प० प० प्र०—भरद्वाजजी श्रीवाल्मीकिजीके शिष्य थे। यह अद्भुत रामायणसे सिद्ध है। यद्यपि महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें ***'खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥'*** (२। १२४। ८) ऐसी स्थिति थी जो बात श्रीभरद्वाजजीके आश्रममें नहीं थी, तथापि महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रमको ***'अति पावन, परम रम्य'*** विशेषण न देकर केवल ***'सुचि सुंदर आश्रम'*** कहा गया है, यह बात कुछ खटकती-सी है पर मर्म यह है कि भरद्वाजाश्रम ***'मुनिबर मन भावन'*** है, मुनिवरोंकी दृष्टिमें यह अति पावन और परम रम्य है, पर वाल्मीकि-आश्रम इतना शुचि (पावन) और इतना सुन्दर (रम्य) है कि वह ***'कोटि काम कमनीय', 'आनँदहू के आनन्ददाता', 'जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी'*** ऐसे श्रीराम रघुनाथजीको भी आनन्दकर हुआ, उनको वह शुचि और सुन्दर देख पड़ा और वे देखकर आनन्दित हुए—***'सुचि सुंदर आश्रम निरखि हरषे राजिवनैन'। 'अनुपम न उपमा आन राम समान राम'*** को शुचि सुन्दर लगा और उससे उनको हर्ष कहकर कविने जना दिया कि उसकी शुचिता और रमणीयता अनुपम है, अनिर्वचनीय है, ***'अति'*** और ***'परम'*** आदि शब्दोंसे उसका कहना असम्भव है।

टिप्पणी—२ (क) ***'तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा'*** इति। ***'मुनि रिषय समाजा'*** कहनेका भाव कि प्रयागराजमें आते तो सभी कोई हैं—***'देव दनुज किंनर नर श्रेनी',*** पर समाज सबका नहीं होता। समाज केवल ऋषियों-मुनियोंका होता है। (ख) ***'जाहिं जे मज्जन'*** इति। ***'तहाँ होइ'*** से सूचित होता है कि इस आश्रमपर ऋषि-मुनि सदैव रहते हैं, उन्हींका समाज होता रहता है। अतएव कहा कि ***'जाहिं जे……'*** अर्थात् जो स्नान करने जाते हैं उन्हीं ऋषियों-मुनियोंकी सभा होती है। (यहाँ ***'समाज'*** के दोनों अर्थ लगते हैं—जुटाव और सभा। ऋषि-मुनि वहाँ आकर जुटते हैं और उनकी सभा होती है।)

नोट—१ मुनि और ऋषि पर्यायवाची शब्द हैं। यथा—***'बिस्वामित्र महामुनि आए॥'*** (बा० २१४) और ***'रिषय संग रघुबंसमनि।'*** (बा० २१७) यहाँ कहते हैं कि ***'तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा'*** परन्तु आगे इनके जानेके समय इनमेंसे एक ही शब्द दिया है जिससे भी स्पष्ट है कि ये दोनों शब्द पर्यायी हैं। यथा—***'मकर मजि गवनहिं मुनिबृंदा।'*** (४। २)। ***'सब मुनीस आश्रमन्हि सिधाए।'*** (४५। ३) ☞इस अर्धालीमें दोनों शब्द एक साथ आये हैं, इस कारण इन दोनोंमें महानुभावोंने कुछ सूक्ष्म भेद कहा है। वह यह कि—(क) मुनि मननशील हैं और ऋषि मन्त्रद्रष्टा। (रा० प्र०) (ख) मुनि ध्यान करनेवाले और ऋषि कर्मकाण्डी हैं। (पां०) (ग) ईश्वर, धर्म और सत्यासत्यादिका सूक्ष्म विचार करनेवाले मननशील महात्मा मुनि कहे जाते हैं। जैसे कि—अंगिरा, पुलस्त्य, भृगु, कर्दम, पञ्चशिख आदि। आध्यात्मिक और भौतिक तत्त्वोंका साक्षात्कार करनेवाले, वेदमन्त्रोंके प्रकाशक महात्माओंकी 'ऋषि' संज्ञा है। ऋषि सात प्रकारके माने गये हैं—(१) महर्षि जैसे व्यास। (२) परमर्षि जैसे भेल। (३) देवर्षि जैसे नारद। (४) ब्रह्मर्षि जैसे वसिष्ठ। (५) श्रुतर्षि जैसे सुश्रुत। (६) राजर्षि जैसे ऋतुपर्ण। (७) काण्डर्षि जैसे जैमिनि। एक पद उन सात ऋषियोंका माना गया है जो कल्पान्त प्रलयोंमें वेदोंको रक्षित रखते हैं। (श० सा०) (घ) कोई-

कोई कहते हैं हि जो महात्मा पत्नीसंयुक्त भजन करते हैं वे मुनि हैं और जो अकेले रहते हैं वे ऋषि हैं। परन्तु इसका अपवाद है।

☞ महाभारत-आदिपर्व अध्याय ९१ में ययातिजीने अष्टकजीसे 'मुनि' की व्याख्या इस प्रकार की है कि—'**अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः। ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप॥**' (९॥)' अर्थात् जिसके वनमें रहनेपर नगरके सब भोग पीछे पड़ जाते हैं और नगरमें बसते हुए वन आँखोंके सामने खड़ा रहता है, वही सच्चा मुनि है। अर्थात् नगरके भोग-विलास त्यागकर जो वनमें रहे। घररहित अपने गोत्र और शाखाके अभिमानसे रहित कौपीनमात्र धारणकर जीवनरक्षामात्र अन्न भोजन करता हुआ नगरमें रहनेवाला भी 'मुनि' है, वन उसके सामने माना गया है। (श्लोक १२, १३)।

नोट—२ '***मज्जहिं प्रात*······**' इति। '***प्रात***' पद देनेका भाव यह है कि स्नान तो त्रिकाल होता है—प्रातः, मध्याह्न और सायं। यथा—'***पावन पथ तिहुँकाल नहाहीं।***' (अ०) और अन्यत्र अनेक स्थानोंमें कथाका समाज प्रायः चौथे पहरमें ही जुटता है, दोपहरके भोजन और विश्रामके उपरान्त स्नानके पश्चात् कथाका नियम पाया जाता है, यथा—'***लगे कहन कछु कथा पुरानी। बिगत दिवस गुर आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥***' परन्तु यहाँ यह नियम था कि प्रातःकाल स्नानके पश्चात् ही समाज होता था। माघमें प्रातःस्नानका विशेष माहात्म्य है। वही स्नान मुख्य है। (पंजाबीजी) एक ही पंक्तिमें '***मज्जहिं प्रात*****······**' और '***कहहिं परस्पर***' शब्द देनेसे भी इसी भावकी पुष्टि होती है।

टिप्पणी—३ (क) '***मज्जहिं प्रात समेत उछाहा***' इति। उत्साहपूर्वक कर्म करनेसे धन-धर्मकी वृद्धि होती है और उत्साह भंग होनेसे, मनमें खेद या मलिनता आ जानेसे दोनोंकी हानि होती है। यथा—'**उत्साहभंगे धनधर्महानिः**'। 'सादर मज्जहिं······।' (४४। ४) में प्रमाण देखिये। अनुत्साहका कारण प्रायः अश्रद्धा ही होता है और अश्रद्धासे किया हुआ कर्म-धर्म सब व्यर्थ होता है। [उत्साह यह है कि शीतका भय नहीं करते।] (वै०) (ख)—'***कहहिं परस्पर***' का भाव कि कथाकी रीतिके अनुसार समाज नहीं होता कि कोई एक विशेष व्यक्ति कहे और सब सुनें वरंच सभी कहते हैं। तात्पर्य कि अनेक जगहके, देश-देशके, ऋषि-मुनि एकत्रित हुए हैं, सबकी इच्छा यही होती है कि सबकी वाणी सुननेको मिले। अतएव सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार श्रीरामजीके गुणोंका कथन करते हैं। ('***परस्पर***' का भाव डींगरजी यह कहते हैं कि जो जिससे सत्संग करनेका इच्छुक होता था उसका उससे समागम होता था।)

टिप्पणी—४ इस दोहेमें प्रयाग-माघ-स्नानकी विधि, कथाका देश और काल कहे गये हैं। विधि यह बतायी है कि—प्रातःकाल स्नान करे, फिर माधवजीकी पूजा करके अक्षयवटका स्पर्श करे, तत्पश्चात् भरद्वाज मुनिका दर्शन करे तथा कथा सुने और कहे (यह प्रथा गोस्वामीजीके समय थी और अबतक चली आती है)। '***भरद्वाज आश्रम अति पावन***' से देश और '***प्रात समेत उछाहा***' से कालका निर्देश किया गया।

दो०—ब्रह्म निरूपन धर्म बिधि बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥ ४४॥

अर्थ—ब्रह्मका निरूपण, धर्मके विधान और तत्त्वके विभागोंका वर्णन करते हैं और ज्ञान-वैराग्य-संयुक्त भगवान्‌की भक्ति कहते हैं॥ ४४॥

नोट—१ ब्रह्मका वर्णन नहीं हो सकता, यथा—'**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**', '***मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥***' इसीसे ब्रह्मका निरूपण करना कहा।

टिप्पणी—१ इस दोहेमें प्रथम तीर्थराज प्रयागको कहा, यथा—'***भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा***' तथा '***तीरथ पतिहि आव सब कोई***'। फिर भगवान्‌के पद-प्रयागको कहा, यथा—'***पूजहिं माधव पद जलजाता***' और अब यहाँ तीसरे प्रयाग अर्थात् संतसमाज प्रयागको कहते हैं। तीर्थराज प्रयागमें सरस्वती, यमुना और गङ्गा हैं और इस संतसमाज प्रयागमें ब्रह्म-निरूपण सरस्वतीजी हैं, यथा—'***सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा***'। धर्मविधि

यमुनाजी हैं, यथा—*'बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदिनि बरनी॥'* और भगवान्‌की भक्ति गङ्गाजी हैं, यथा—*'राम भगति जहँ सुरसरि धारा'।*

टिप्पणी—२ भगवान्‌के छः ऐश्वर्य हैं—ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य। इसीसे *'भगवंत'* कहा।

'ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग'

(क) ब्रह्मनिरूपणसे उत्तरमीमांसा, धर्मविधिसे पूर्वमीमांसा, तत्त्वविभागसे सांख्य-शास्त्र, *'भगति भगवंत कें'* से शाण्डिल्यसूत्र, नारदपाञ्चरात्र, श्रीमद्भागवत और भक्ति-भाव-संग्रह इत्यादि भक्तिके ग्रन्थ और ज्ञानसे वेदान्तशास्त्र अभिप्रेत हैं। इनकी कुछ विशेष व्याख्या आगे लिखी जाती है—

(ख) **'ब्रह्मेति'** उत्तरमीमांसा ब्रह्मविद्या अथवा वेदान्त। जिस तरह पूर्वमीमांसाका विषय **'धर्म'** है उसी तरह उत्तरमीमांसाका विषय ब्रह्म है—**'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'**। 'ब्रह्म' कौन है? उसका क्या स्वरूप है? अथवा वह कैसा अर्थात् किस गुण-स्वभावका है? कौन ब्रह्म नहीं है?—इत्यादि सब विचार उसमें किये गये हैं। उसे वेदान्त इसलिये कहते हैं कि वह वेदोंका अन्तिम रहस्य है। वेदान्तका अर्थ है वेदोंका अन्त अर्थात् शिरोभाग। इन शिरोभागोंको ही उपनिषद् कहा जाता है। उसमें सब वेदोंका अन्तिम रहस्य अर्थात् ब्रह्मनिरूपण ही विशेष करके प्रतिपादित है। इन उपनिषदोंकी एकवाक्यता और पूर्वापर विरोधका निराश करनेके लिये भगवान् व्यासने ब्रह्मसूत्रोंकी रचना की, जिसका प्रथम सूत्र **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** है। इन ब्रह्मसूत्रोंमें यह सिद्धान्त कर दिया गया कि समस्त वेदोंका अन्तिम निर्णय वा साध्य ब्रह्मप्राप्ति है, फिर भी ब्रह्मसूत्रोंके दुर्बोध होनेसे उनपर कतिपय आचार्योंने भाष्य किये। आजकल जो भाष्य प्रसिद्ध हैं उनमेंसे प्रथम श्रीशङ्कराचार्यजीका है जिसमें अद्वैत-सिद्धान्तका ही प्रतिपादन किया गया है। उनके पश्चात् श्रीरामानुजाचार्यजीका भाष्य है जिसमें उन्हीं सूत्रोंसे विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। इसी प्रकार श्रीमध्वाचार्यजी, श्रीनिम्बार्काचार्यजी, श्रीवल्लभाचार्यजी, श्रीरामनन्दाचार्यजी आदिने भी अपने-अपने मतानुसार भाष्य किये हैं। सुना जाता है कि श्रीशङ्कराचार्यजीके पूर्व भी ग्यारह-बारह भाष्य हो चुके थे। इन सब ग्रन्थोंमें अथवा इनके आधारपर और भी जो ग्रन्थ लिखे जाते हैं उनमें जो विषय निरूपित है वह सब वेदान्त शब्दसे कहा जाता है और यही सब ब्रह्मनिरूपणसे लक्षित है। वेदोंके कर्म स्वरूपसे परे उसकी गति है। अतः **'ब्रह्मनिरूपण'** से ब्रह्मविचारात्मक वेदान्तदर्शन ही गृहीत है।

(ग) प० प० प्र० का मत है कि 'यहाँ 'ब्रह्म' शब्दसे 'वेद' अभिप्रेत हैं, क्योंकि 'ज्ञान' शब्दमें **'ब्रह्म-परब्रह्मनिरूपण'** का अन्तर्भाव होता है। ब्रह्म-निरूपण=वेदप्रवचनादि।'

धर्मेति। (क)—मीमांसादर्शनके दो भाग हैं—एक पूर्वमीमांसा, दूसरा उत्तरमीमांसा। पूर्वमीमांसा विधिनिषेधात्मक कर्मका निरूपण करता है और यही धर्मशास्त्रका विषय है। उसका प्रथम सूत्र है—**'अथातो धर्मजिज्ञासा'**। धर्म क्या वस्तु है? उसके क्या लक्षण हैं? पात्र आदि-भेदसे उसका कैसा-कैसा स्वरूप होता है? यही सब उसके वर्ण्य विषय हैं। अतः धर्मविधिसे धर्मशास्त्र अथवा पूर्वमीमांसा ही अभिप्रेत है। पूर्वमीमांसाके कर्त्ता व्यासजीके शिष्य जैमिनिजी हैं।

(ख) *'धर्म बिधि'* इति। धर्म **'धरति विश्वं वा ध्रियते जनैः स धर्मः'**=अर्थात् जो विश्वको धारण करता है अथवा जो लोगोंसे धारण किया जाता है वह धर्म है। पुनः धर्म=वेदविहित कर्म। यथा **अमरकोशे—'धर्मस्तु तद्विधिः। तेन (वेदेन) विधीयते यज्ञादिः धर्म उच्यते।'** अर्थात् वेदके द्वारा जिसका विधान किया गया है वह यज्ञादि कर्म 'धर्म' कहा जाता है। **'धर्मविधिः=धर्मस्य विधिः कथनं यस्मिन् (ग्रन्थे) स धर्मविधिः।'** अर्थात् **'धर्मविधि'** शब्दसे वेद, स्मृति, पुराण, पूर्वमीमांसा आदि तथा इन सबोंके आधारपर आधुनिक निर्णयसिंधु-धर्मसिंधु आदि ग्रन्थ और उनमें प्रतिपादित धार्मिक विषय कहे जा सकते हैं, जिसको संक्षेपमें कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र कह सकते हैं।

कर्मके दो भेद हैं—एक विधि, दूसरा निषेध। '**सत्यं वद**' यह विधि है। '**दिवा निद्रां मा कुरु**' यह निषेध है। इनके भी नित्य, नैमित्तिक और काम्य ऐसे तीन भेद हैं। जो कर्म नित्य आचरण करनेको कहा गया है, जिसका कोई निमित्त नहीं है वह 'नित्य कर्म' है। जैसे कि संध्योपासना, एकादशीव्रत आदि। ये सब 'नित्य विधि' हैं। झूठ न बोलो, चोरी न करो आदि 'नित्य निषेध' हैं। जो किसी निमित्तसे विधि-निषेध कहे जाते हैं वे नैमित्तिक हैं। जैसे कि ग्रहणमें स्नान 'नैमित्तिक विधि' है और ग्रहणमें भोजन न करो यह 'नैमित्तिक निषेध' है। जो किसी कामनासे किया जाय वह 'काम्य' है। जैसे कि पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुत्रकामेष्टि यज्ञ करे, यह 'काम्य विधि' है। संततिका कल्याण चाहनेवाला सोमवारको मुण्डन न करे (बाल न बनवाये) यह 'काम्य निषेध' है। इनमेंसे नित्य और नैमित्तिक आचरण न करनेसे दोष लगता है और काम्य कर्म तो अपनी इच्छापर है।

इन सब कर्मोंके 'सामान्य और विशेष' ये दो भेद हैं। जो मनुष्यमात्रके लिये कहे गये हैं वे 'सामान्य' हैं। जो किसी वर्ण या आश्रम आदिके लिये कहे गये हैं वे 'विशेष' हैं।

इस प्रकार इस विषय (धर्मविधि) का यथार्थ ज्ञान तो उपर्युक्त ग्रन्थोंके पढ़नेसे ही हो सकता है, यहाँ दिग्दर्शनमात्र किया गया है।

☞ उपर्युक्त ग्रन्थोंमें कर्मकाण्ड या धार्मिक विषय प्रतिपादनके समय मोक्ष या भगवत्प्राप्तिकी विशेष चर्चा नहीं है, तथापि इसके सुननेसे मनुष्य नरकादिजन्य दुःखके डरसे पापोंसे निवृत्त हो सकता है, तथा सुखके लिये पुण्यमें प्रवृत्त हो सकता है। वे सब कर्मफलकी आशा न रखकर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ वा अपना कर्त्तव्य समझकर करे तो इनके द्वारा चित्तकी शुद्धि होती है जो मोक्ष या भगवत्प्राप्तिके लिये अत्यन्त आवश्यक है। जबतक चित्तमें अनेक विषय-वासनाएँ हैं तबतक उसे अशुद्ध कहते हैं। विषयवासनाओंके नष्ट होनेपर वह शुद्ध कहा जाता है। यथा—'**अशुद्धं कामसम्पर्काच्छुद्धं कामविवर्जितम्।**' श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है—'**एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥**' (१८।६) '**कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।**'(३।२०) अतः महात्मालोग प्रसङ्गानुसार इस विषयकी भी चर्चा करते हैं।

(ग) वि० टी०—'**धर्मविधि**' इति। 'राजशिक्षासोपान' नामकी पुस्तकसे—शास्त्रोंके अनुसार धर्मकी अनेक परिभाषाएँ हैं सो यों कि—(अ) '**वेदप्रणिहितं कर्म धर्मस्तन्मङ्गलं परम्। प्रतिषिद्धक्रियासाध्यः सगुणोऽधर्म उच्यते॥**' अर्थात् जो परममङ्गलकारी कर्म वेदविहित है वह 'धर्म' और वेदमें जिसका निषेध किया है वह 'अधर्म' कहलाता है। (आ) '**प्राप्नुवन्ति यतः स्वर्गमोक्षौ धर्मपरायणे। मानवा मुनिभिर्नूनं स धर्म इति कथ्यते॥**' अर्थात् जिस कर्मके द्वारा मनुष्य स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त होते हैं पूज्यपाद महर्षियोंने उसे धर्म कहा है। (इ) '**सत्त्ववृद्धिकरो योऽत्र पुरुषार्थोऽस्ति केवलः। धर्मशीले तमेवाहुर्धर्मं केचिन्महर्षयः॥**' अर्थात् जो पुरुषार्थ सत्त्वगुणको बढ़ानेवाला हो कोई-कोई महर्षि उसको धर्म कहते हैं। (ई) '**यो बिभर्ति जगत्सर्वमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी। सैव धर्मो हि शुभगे नेह कश्चन संशयः॥**' अर्थात् जो अलौकिकी ईश्वरेच्छा इस जगत्को धारण करती है वही धर्म है—इन सब वचनोंका तात्पर्य यह है कि जिन शारीरिक, वाचिक और मानसिक कर्मोंके द्वारा सत्त्वगुणकी वृद्धि हो उनको 'धर्म' कहते हैं और जिनके द्वारा तमोगुणकी वृद्धि हो उन्हें 'अधर्म' कहते हैं। यथा—'**अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतत्सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥**' अर्थात् प्राणिमात्रपर दया करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, शुद्धता और इन्द्रियोंको वशमें रखना—ये संक्षेपसे चारों वर्णोंके धर्म मनुजीने कहे हैं।

(घ) महाभारत कर्णपर्वमें भगवान्‌ने अर्जुनजीसे कहा है कि—प्राणियोंके अभ्युदय और कल्याणके लिये ही 'धर्म' की व्याख्या की गयी है। जिससे इस उद्देश्यकी सिद्धि हो वही 'धर्म' है। धर्मका नाम धर्म इसलिये पड़ा कि वह सबको धारण करता है, अधोगतिमें जानेसे बचाता है और जीवनकी रक्षा करता है। जिस कर्मसे प्राणियोंके जीवनकी रक्षा हो वही 'धर्म' है। जो कर्म अहिंसासे युक्त हो वह

'धर्म' है। वनपर्वमें धर्म व्याधाने धर्मकी व्याख्या इस प्रकार की है—'धर्म-न्याययुक्त कर्मोंका आरम्भ। धर्म तीन प्रकारके हैं। वेदप्रतिपादित, धर्मशास्त्रवर्णित और सत्पुरुषोंके आचरण। वेद, स्मृति और सदाचार—ये तीन धर्मका ज्ञान करानेवाले हैं।' शान्तिपर्वमें भीष्मपितामहजीका वचन है कि धर्मके अनेक विधान हैं, पर उन सबोंका आधार '*दम*' है। महर्षि देवस्थानने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि खूब विचार करके बुद्धिमानोंने यही निश्चय किया है कि किसीसे द्रोह न करना, सत्य-भाषण करना, दान देना, सबपर दया रखना, इन्द्रियोंका दमन करना, अपनी ही स्त्रीसे पुत्रोत्पन्न करना तथा मृदुता, लज्जा और अचञ्चलता धारण करना यही 'प्रधान धर्म' है और स्वायम्भुवमनुने कहा है। हंसभगवान्ने साध्यगणोंसे कहा है कि अपने उपस्थ, उदर, हाथ और वाणीको पापसे बचाये रखना 'धर्म' है। ☞एक ही क्रिया देश और कालके भेदसे 'धर्म' या 'अधर्म' हो जाती है। लोक और वेदमें धर्मके दो भेद हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। निवृत्तिका फल मोक्ष है और प्रवृत्तिका बारम्बार जन्म-मरण। विशेष विनय-पीयूष पद १० में देखिये। धर्मके आठ अंग कहे गये हैं, यथा—'**इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा। अक्षोभ इति मार्गोऽयं धर्मश्चाष्टविधः स्मृतः॥**'

टिप्पणी—३ '*तत्त्वविभाग*' इति। (क) तत्त्वविभागसे प्रकृतिके तत्त्वोंका विचार जिस दर्शनमें किया गया है (अर्थात् सांख्यदर्शन) उसका ग्रहण है। इस दर्शनमें पृथ्वी, जल, पवन, तेज, आकाश, मन, बुद्धि, प्रकृति, प्रधान प्रकृति और उसके लक्षण, उनकी विकृति आदिका विचार किया गया है। गोस्वामीजीने अन्यत्र भी इस दर्शन, इसके विषय और कर्ताकी चर्चा की है। यथा—'*सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुन भगवाना॥*' (१।१४२)

(ख) प्रत्येक मनुष्यका परब्रह्म परमात्माको जानना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उनके जाने बिना न तो वह उनकी भक्ति कर सकता है, न उनकी प्राप्ति और न मोक्ष ही पा सकेगा। जिस प्रकार तिलमें तैल अथवा दूधमें घृत व्याप्त है, उसी प्रकार इस चराचर जगत्में परमात्मा भी व्याप्त है। अतः चराचर जगत्के मूल तत्त्वोंका जानना भी परमावश्यक है। इस विषयका विचार सांख्यशास्त्रमें किया गया है। इस शास्त्रके आद्य आचार्य भगवदवतार 'कपिलदेव' महामुनि हैं। उन्होंने 'सांख्य-सूत्र' बनाया है जिसपर पण्डितोंने भाष्य आदि भी लिखे हैं तथा इनके आधारपर और ग्रन्थ बनाये हैं जिनमेंसे 'सांख्यकारिका' और उसकी टीका 'सांख्य-तत्त्व-कौमुदी' आजकल प्रसिद्ध है और प्रामाणिक मानी जाती हैं। इस ग्रन्थमें एक कारिकामें तत्त्व गिनाये हैं। यथा—'**मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकाराः।**' अर्थात् मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध—ये पाँच तन्मात्राएँ, पञ्च महाभूत (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी), दस इन्द्रियाँ और मन प्रकृतिके चौबीस तत्त्व हैं। पुरुष (जीवात्मा) को मिलाकर कुल पचीस तत्त्व हैं। इनमेंसे 'मूल-प्रकृति' तो सबकी प्रकृति ही है, यह किसीकी विकृति नहीं है। आगेवाले सात तो पूर्वकी अपेक्षा विकृति और आगेवालोंकी अपेक्षा प्रकृति हो सकते हैं। अतः उनको प्रकृति और विकृति दोनों कहा जा सकता है। इनके बादवाले सोलह (महाभूतादि) तो विकृति ही हैं। पुरुष न किसीकी प्रकृति है और न विकृति ही। तत्त्वोंके विभागके विषयमें बहुत मतभेद है। कोई तत्त्वोंकी संख्या २६ बताते हैं तो कोई २५ और कोई २४ ही कहते हैं। इसी तरह कोई ७, कोई ९ तो कोई ६, ११, १३, १६ वा १७ स्वीकार करते हैं। भा० ११। २२ में भगवान्ने उद्धवसे इसका कारण बताते हुए अपने वक्तव्यमें सबका समन्वय किया है और सभीके विचारोंको सुसंगत बताया है। पाठक विस्तारपूर्वक इसका ज्ञान उसे पढ़कर प्राप्त कर सकते हैं। गीता १३।५ में भी यह स्थूल शरीर २४ तत्त्वोंका समूह कहा गया है। यथा—'**महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥**' अर्थात् पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और मन तथा पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) चौबीस तत्त्व हैं।

यद्यपि सांख्यशास्त्रमें ईश्वरकी चर्चा नहीं किन्तु खण्डन ही है तथापि वेदान्तका निरूपण तत्त्वविभाग किये बिना ठीक नहीं हो सकता। अतः हमारे आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें समय-समयपर आवश्यक विषयका सम्पादन किया है। इसीसे महात्मा लोग भी उसकी चर्चा करते हैं, जैसे कि उपर्युक्त दोहेसे स्पष्ट है।

टिप्पणी—४ '*भगति*' इति। भक्तिसे भगवत्-भक्तिका उद्बोधन है। जीवोंके एकमात्र ध्येय, ज्ञेय और उपास्य भगवान् हैं। वे अनन्त कल्याणगुणोंकी राशि हैं। उनके कारुण्य, औदार्य और सौलभ्यादि दिव्य गुण भक्तों-आर्तजनोंके लिये अत्यन्त हितकर और उनके उत्साहके बढ़ानेवाले हैं, उन्हें गङ्गाके मूलोद्गम भगवच्चरणारविन्दोंकी ओर खींचनेवाले हैं। इस संसाररूप महासागरके लिये उससे जीवोंका उद्धार करनेके लिये वे वोहित (जहाज) के सदृश हैं, यथा—'**यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥**' (मं० श्लो०) भगवत्-सम्बन्धके अतिरिक्त जितने सम्बन्ध हैं, वे सब मिथ्या, तुच्छ और अनित्य हैं। जीव उसीके अंशभूत हैं, अतः उसीके हैं और उनकी सभी वस्तुएँ उसीकी हैं। उन्हें व्यर्थके अहंकार और ममकारसे छूटकर अपनेको सर्वतोभावसे उसीके चरणोंपर अर्पण कर देना चाहिये। यही जीवोंका परमधर्म और एकान्त पुरुषार्थ है।

पद्मपुराण-पातालखण्डमें श्रीअम्बरीषजीके पूछनेपर कि 'किस मनुष्यको कब, कहाँ, कैसी और किस प्रकार भक्ति करनी चाहिये' श्रीनारदजीने भक्तिका वर्णन इस प्रकार किया है कि—भक्ति मानसी, वाचिकी, कायिकी, लौकिकी, वैदिकी तथा आध्यात्मिकी अनेकों प्रकारकी है। ध्यान, धारणा, बुद्धि तथा वेदार्थके चिन्तनद्वारा जो भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाली भक्ति की जाती है, उसे 'मानसी' भक्ति कहते हैं। दिन-रात अविश्रान्तभावसे वेदमन्त्रोंके उच्चारण, जप तथा आरण्यक आदिके पाठद्वारा जो भगवान्‌की प्रसन्नताका सम्पादन किया जाता है, उसका नाम 'वाचिकी' भक्ति है। व्रत, उपवास और नियमोंके पालन तथा पाँचों कर्मेन्द्रियोंके संयमद्वारा की जानेवाली आराधना 'कायिकी' भक्ति है। पाद्य, अर्घ्य आदि उपचार, नृत्य, वाद्य, गीत, जागरण तथा पूजन आदिके द्वारा जो भगवान्‌की सेवा की जाती है उसे 'लौकिकी' भक्ति कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जप, संहिताओंके अध्ययन आदि तथा हविष्यकी आहुति, यज्ञ-यागादिके द्वारा की जानेवाली उपासनाका नाम 'वैदिकी' भक्ति है। 'आध्यात्मिकी' भक्ति योगजन्य है। इसका साधक सदा अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर प्राणायामपूर्वक ध्यान किया करता है। वह ध्यानमें देखता है कि भगवान्‌का मुखारविन्द अनन्त तेजसे प्रदीप्त हो रहा है, यज्ञोपवीत शरीरपर शोभा पा रहा है। वे पीताम्बर धारण किये हैं। उनके नेत्र जीकी जलनको हर रहे हैं, इत्यादि।

पद्मपुराण-उत्तरखण्डमें श्रीशिवजीने श्रीपार्वतीजीसे भक्तिका स्वरूप इस प्रकार बताया है कि—'भक्ति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। सात्त्विकी उत्तम है, राजसी मध्यम और तामसी कनिष्ठ है। मोक्षफलके इच्छुकोंको श्रीहरिकी उत्तम भक्ति करनी चाहिये। अहंकारको लेकर या दूसरोंको दिखानेके लिये अथवा ईर्ष्यावश या दूसरोंका संहार करनेकी इच्छासे जो किसी देवताकी भक्ति की जाती है वह 'तामसी' है। विषयोंकी इच्छा रखकर अथवा यश और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌की जो पूजा की जाती है वह राजसी है। कर्मबन्धनका नाश करनेके लिये भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पणकी बुद्धि करनी सात्त्विकी भक्ति है। जैसी भक्ति की जाती है वैसी ही गति प्राप्त होती है।'

टिप्पणी—५ '*ग्यान*' इति। ज्ञानसे मतलब भगवत्स्वरूपके परिज्ञानसे है। आत्म और अनात्म पदार्थोंके विवेकको ज्ञान कहते हैं। भगवान् सत्य हैं और दिव्य सच्चिदानन्दविग्रह हैं। यह संसार अनित्य है और मन-बुद्धिसहित यह शरीर नश्वर है।—यही ज्ञान है।

टिप्पणी—६ '*बिराग*' इति। यह संसार असत्य है। इसके समस्त पदार्थ अनित्य हैं। पुत्र-कलत्रादि समस्त सम्बन्ध मिथ्या हैं, ये सभी भगवान्‌से विमुख करनेवाले हैं। यह यौवन अस्थिर है और यह जीवन चञ्चल है, अन्तमें एक दिन मरना है। अतः इनमें नहीं फँसना चाहिये और भगवच्चरणोंका चिन्तन करना चाहिये। शब्द-स्पर्शादि पञ्चविषयोंसे मनको हटाकर और इस संसारको मायाजाल एवं दुःखस्वरूप जानकर तथा इस शरीरको बन्धन परन्तु साथ ही साधनस्वरूप मानकर आत्मस्वरूपमें वृत्तिको स्थिर करना परम कर्तव्य है।

टिप्पणी—७ '*भगति...... संजुत ग्यान बिराग*' इति। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी व्याख्या मानसमें स्थल-

स्थलपर आयी है। विनय-पत्रिका पद २०५ में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य क्या है यह थोड़ेमें इस प्रकार बतलाया गया है—

'सम संतोष बिचार बिमल अति सतसंगति ए चारि दृढ़ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निस्सेष करि परिहरु॥ २॥
श्रवन कथा मुख नाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु।
नयनन्हि निरखि कृपासमुद्र हरि अग जग रूप भूप सीताबरु॥ ३॥
इहै भगति वैराग्य ज्ञान यह हरितोषन यह सुभ ब्रत आचरु।'

नारदपाञ्चरात्रमें भी यही कहा है, यथा—'**हृषीकैश्च हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।**'

☞अन्तमें ***'संजुत ग्यान बिराग भक्ति'*** को कहकर सूचित किया है कि सन्तसमाज-प्रयागके सत्सङ्गका निष्कर्ष ज्ञान-वैराग-संयुक्त भक्ति है। ज्ञान और वैराग्य बिना भक्तिके शोभित नहीं होते और भक्ति भी दृढ़ तभी होती है जब वह ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हो—यह सिद्धान्त दृष्टिगोचर रखकर ही गोस्वामीजीने अन्यत्र भी कहा है कि—***'सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू।', 'बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू।'*** (अ०), ***'श्रुति संमत हरिभगति पथ संजुत बिरति बिबेक।'*** (उ०), तथा—***'जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥'*** (बा० ४०) ज्ञान और वैराग्य साथमें होनेसे भक्तिकी शोभा विशेष हो जाती है इसीसे ज्ञानी भक्त ***'प्रभुहिं बिसेष पियारा'*** कहा गया है।

अस्तु! प्रयागमें मुनियोंका मकरके अवसरपर जब समागम होता था तब उनमें ब्रह्ममीमांसा, धर्ममीमांसा, सृष्टितत्त्व, भगवद्भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी चर्चा होती थी—इस प्रकार सत्सङ्ग होता था। इनका वर्णन स्थल-स्थलपर प्रसंगानुसार रामचरितमानसमें भी है और होना ही चाहिये, क्योंकि जब उसमें उस अवसरके मुनियोंका (भरद्वाज-याज्ञवल्क्यका) संवाद है तब वे विविध विषय भी आने ही चाहिये, उनका आना स्वाभाविक ही है।

नोट—३ करुणासिन्धुजीने ब्रह्मनिरूपण आदिपर विस्तारसे लिखा है। पाठक यदि चाहें तो वहाँ देख लें। धर्म और भक्ति आदिके विषयमें पूर्व भी लिखा जा चुका है।

नोट—४ चिदचित् (जीव और प्रकृति) और ब्रह्मका शरीर-शरीरी सम्बन्ध है, यथा श्रुति—'**यस्यात्मा शरीरम्**', '**यस्य पृथिवी शरीरम्**', '**यस्य सर्वं शरीरम्**' इत्यादि। शरीर-शरीरीसे अभेद माना जाता है। शास्त्रोंका यह निश्चित सिद्धान्त है कि ब्रह्म सदैव चिदचिद्विशिष्ट ही रहता है, निर्विशेष चिन्मात्र नहीं। इसीसे ब्रह्मके निरूपणमें ब्रह्मके शरीरभूत जीव और कारण प्रकृतिका निरूपण भी आ गया। अतएव इनका पृथक् निरूपण नहीं कहा गया। प्रकृतिके कार्यभूत तत्त्वोंका विभागशः वर्णन होता है, अतः उसका वर्णन कहा गया। (वें० भू०)

प० प० प्र०—ब्रह्म-निरूपण, धर्मविधि और तत्त्व-विभागके सम्बन्धमें ***'बरनहिं'*** अर्थात् वर्णन करना कहा और भक्तिको ***'कहहिं'*** ऐसा कहा। यह भेद मानसमें ध्यानमें रखनेयोग्य है। भक्ति रस है, यथा—***'राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेस।', 'हरिपद रति रस''''''।'*** इसका आस्वादन करनेसे तोष-प्राप्तिकी अनुभूति होती है यथा—***'स्वाद तोष सम सुगति सुधा के।'*** रस कहनेका विषय नहीं है, अतः यहाँ ***'कहहिं भगति'*** से ***'कहहिं भगति कथा'*** ही समझना चाहिये।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥ १॥
प्रति संबत अति[1] होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनि बृंदा॥ २॥

अर्थ—इस प्रकार (अर्थात् जैसा ऊपर कह आये हैं कि ***'मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर***

१, अति—१६६१, रा० प्र०, गौड़जी, ना० प्र०। अस—दीनजी।

हरिगुन गाहा॥') सब पूरे माघभर स्नान करते हैं फिर सब अपने-अपने आश्रमोंको लौट जाते हैं॥ १॥ हर साल अत्यन्त आनन्द होता है। मकरस्नान करके मुनिवृन्द चले जाते हैं॥ २॥

टिप्पणी—१ *'भरि माघ नहाहीं'* इति। *'भरि माघ'* नहानेका भाव कि एक दिन भी कम नहीं होने पाता, क्योंकि यदि एक दिन भी कम हो जाय तो कल्पवास खण्डित हो जाता है, इसीसे चान्द्रमास और सौरमास दोनोंके साथ *'भरि'* पद दिया गया है। यथा—*'भरि माघ नहाहीं'* और *'एक बार भरि मकर नहाए।'*

टिप्पणी—२ *'एहि प्रकार'* से 'कथामें अन्तर न पड़ना' जनाया; यथा—*'मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरि गुन गाहा॥ एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं।'* *'भरि माघ'* से दिनका अन्तर न पड़ना और *'प्रति संबत'* से वर्षका भी अन्तर न पड़ना जनाया। अर्थात् प्रत्येक वर्ष, प्रत्येक माघ और मकरमासमें प्रत्येक दिन स्नान और कथा इसी प्रकार होती है।

टिप्पणी—३ *'प्रति संबत अति होइ अनंदा'* इति। *'प्रति संबत'* का भाव कि वे मुनि कल्पवासमें संवत्का भी अन्तर नहीं पड़ने देते। पुन: भाव कि सत्सङ्गसे अत्यन्त आनन्द मिलता है अत: वे प्रति संवत् आते हैं। इससे सदाकी यही रीति सूचित की। (किसी निश्चित समयतक अनवरत तीर्थसेवनका नाम कल्पवास है।)

टिप्पणी—४ यहाँ जाना दो बार कहा गया; यथा—*'पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं'* और *'मकर मज्जि गवनहिं मुनि बृन्दा।'* दो बार लिखनेका कारण यह है कि—(क) कुछ लोग चान्द्रमासभर ही स्नान करते हैं और कुछ माघ (चान्द्र) और सौर (मकर) मास दोनों। जो चान्द्रमासभर नहाते हैं वे उसकी पूर्तिपर चले जाते हैं, दूसरे मासके पूरा होनेकी राह नहीं देखते। इनका जाना *'एहि प्रकार'''''आश्रम जाहीं'* में कहा। मुनिवृन्द मकरस्नानके पूरे होनेके पहले नहीं जाते, ये चान्द्र और सौर दोनों मास पूरा करते हैं। इसीसे इनका जाना पीछे कहा। पुन:, (ख) (४४। ३-४) में प्रथम कहा था कि *'तीरथ पतिहि आव सब कोई॥'''''सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी।'* फिर इनसे पृथक् मुनियों-ऋषियोंको कहा गया था, यथा—*'तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा॥'* इनका स्नान भी देव-दनुजादिसे पृथक् कहा गया है, यथा—*'मज्जहिं प्रात समेत उछाहा।'*—उसी प्रकार यहाँ अब पहले *'आव सब कोई'* वालोंका जाना *'पुनि सब निज'''''* से कहा और फिर मुनिवृन्दोंका जाना कहा। (ग) मकरके सूर्यका निश्चय नहीं कि माघहीमें रहें। कभी तो सूर्य पौषहीमें मकर राशिपर आ जाते हैं और कभी माघमें तथा कभी माघभर मकरके सूर्य रहते हैं। जिनका माघ-स्नानका नियम है वे माघकी समाप्तिपर चले जाते हैं।

नोट—१ मुं० रोशनलालने *'माघ'* की जगह *'मकर'* पाठ दिया है। प्रकाशक (खड्गविलास प्रेस) लिखते हैं कि कोई हठ करते हैं कि *'मकर'* ही शुद्ध पाठ है, क्योंकि सब ठौर मकरका ही स्नान लिखा हुआ है। यथा—*'एहि प्रकार भरि मकर नहाहीं।'*, *'मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा।'*, *'एक बार भरि मकर नहाए'* तथा *'माघ मकर गत रबि जब होई।'*—इसका उत्तर (४४। ३) और उपर्युक्त टिप्पणीमें भी है।

पंजाबीजी लिखते हैं कि *'माघ मकर गत रबि जब होई'* में *'माघ'* कहनेसे ही मकरगत रविका बोध हो जाता था। परंतु मास दो प्रकारका होता है। अत: दो पद देकर दो मास सूचित किये हैं।

पं० रामवल्लभाशरणजी कहते हैं कि—'परंतु ज्योतिषमें प्रत्येक मास चार प्रकारका कहा गया है—चान्द्र, सौर, सावन और नाक्षत्र। शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर अमावस्यातकका काल मुख्य वा अमान्त चान्द्रमास कहलाता है। (चान्द्रमास गौण भी होता है जो कृष्णप्रतिपदासे पूर्णिमान्ततक माना जाता है।) (श० सा०) एक संक्रान्तिसे दूसरे संक्रान्तितकके मासको 'सौरमास' कहते हैं। जिसमें पूरे तीस दिन हों वह 'सावन' मास है। जितने कालमें चन्द्रमा अश्विनी नक्षत्रसे चलकर सत्ताईस नक्षत्रोंपर एक बार घूमकर फिर अश्विनीपर आता है उसे 'नाक्षत्र' मास कहते हैं। प्रमाण यथा—'**दशावधिं चान्द्रमुशन्ति मासं सौरं तथा भास्करभानुभोगात्। त्रिंशद्दिनं सावनसंज्ञमाहुर्नाक्षत्रमिन्दोर्भगुभ्रमाच्च॥**' आपके मतानुसार उपर्युक्त टि० ४ में जहाँ-जहाँ *'चान्द्र'* शब्द आया है वहाँ-वहाँ 'सावन' शब्द होना चाहिये। श० सा० में लिखा है कि 'सावन' मासका व्यवहार

व्यापारादि व्यावहारिक कामोंमें होता है; यह किसी दिनसे प्रारम्भ होकर तीसवें दिन समाप्त होता है।

नोट—२ माघ चान्द्रमासका ग्यारहवाँ महीना है। मानसभावप्रकाशमें लिखा है कि *'माघ'*=मा (निषेध)+ अघ=मत पापकर। मघा नक्षत्र पूर्णमासीको होता है अतः माघ नाम पड़ा। कोई कहते हैं कि 'माघ-पुष्प (कुन्द) इस मासमें फूलता है अतः इसका नाम माघ पड़ा।' राशि बारह हैं। उनके नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन। मकर दसवीं राशि है। उत्तराषाढ़ नक्षत्रके तीन पाद, पूरा श्रवण नक्षत्र और धनिष्ठाके आरम्भके दो पाद हैं। इसे षष्ठोदय, दक्षिण दिशाका स्वामी, रूक्ष, भूमिचारी, शीतलस्वभाव और पिंगल वर्णका, वैश्य, वातप्रकृति और शिथिल अंगोंवाला मानते हैं। ज्योतिषके अनुसार इस राशिमें जन्म लेनेवाला पुरुष परस्त्रीका अभिलाषी, धन उड़ानेवाला, प्रतापशाली, बातचीतमें बहुत होशियार, बुद्धिमान् और वीर होता है। इसका स्वरूप मगर वा घड़ियालका-सा होता है।

प० प० प्र०—यहाँ *'अनंदा'* और *'बृंदा'* से यमकको विषमताद्वारा प्रदर्शित किया है कि मुनिगणके गमनसे आनन्द घट जाता है। *'संत मिलन सम सुख कछु नाहीं'* और *'बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं'* कहा ही है।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥ ३॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥ ४॥

अर्थ—एक बार (की बात है कि) सब मुनीश्वर मकरभर स्नान करके अपने-अपने आश्रमोंको चले॥ ३॥ (तब) भरद्वाज मुनिने परमविवेकी याज्ञवल्क्य मुनिके चरणोंपर माथा रखकर उनको रोक रखा॥ ४॥

नोट—१ *'भरि मकर'*—(४५। १-२) देखिये। *'भरि मकर नहाए'* इति। मकरभर स्नान करके सब मुनीश्वरोंका जाना कहनेसे सूचित हुआ कि श्रीरामचरितमानसकथा फाल्गुनमें हुई। मकरमास फाल्गुनमें समाप्त हुआ।

नोट—२ *'जागबलिक मुनि परम बिबेकी'* इति। श्रीमद्भागवत (१२। ६। ५५—७४) में इनकी कथा इस प्रकार है—याज्ञवल्क्यजीने ऋग्वेदसंहिता वाष्कलसे और वाष्कलने पैलसे सुनी। पैलने व्यासजीसे पढ़ी थी। इसी प्रकार यजुर्वेदसंहिता व्यासजीने अपने शिष्य वैशम्पायनजीसे कही। यह संहिता याज्ञवल्क्यजीने वैशम्पायनसे पढ़ी थी। वैशम्पायनको ब्रह्महत्या लगी तब उनके शिष्य चरकाध्वर्यने हत्या दूर करनेवाले व्रतका आचरण किया। तब याज्ञवल्क्यजीने कहा—'हे भगवन्! इन अल्पवीर्य ब्राह्मणोंके किये हुए व्रतसे ऐसा क्या लाभ है? मैं अकेला ही दुश्चरव्रतका आचरण करूँगा'—**'याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत्। चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम्॥'** (भा० १२। ६। ६२) यह सुन वैशम्पायनजी रुष्ट होकर बोले—'मुझे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले तुझ-ऐसे शिष्यसे कोई प्रयोजन नहीं है, तू तुरंत ही मुझसे पढ़ी हुई विद्या त्याग दे और यहाँसे चला जा'—**इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया। विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति॥**' (६३) तब याज्ञवल्क्यजीने यजुः (श्रुतियों) को वमन कर दिया और वहाँसे चल दिये। उन वमनरूपसे पड़े हुए यजुर्वेदके मन्त्रों (श्रुतियों) को (जो अत्यन्त सुरम्य थे) देखकर अन्यान्य मुनियोंने लोलुपतावश तीतररूप रखकर ग्रहण कर लिया। (तीतररूपसे निगला, क्योंकि ब्राह्मणरूपसे वमनको कैसे निगलते ?)। इससे वह अत्यन्त मनोहर यजुःशाखा तैत्तिरीय शाखा कहलायी। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्यजीने, वैशम्पायन भी जिनको न जानते हों ऐसी यजुःश्रुतियोंकी प्राप्तिके लिये सूर्यभगवान्की आराधना की। स्तुति श्लोक ६७ से ७२ तक है। अन्तमें अपनी अभिलाषा कही—'**अहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति।**' (७२) अर्थात् मैं यजुर्वेदके ऐसे मन्त्रोंके पानेकी प्रार्थना करता हूँ जो अन्य ऋषियोंको अविदित अथवा यथावत् न ज्ञात हों। स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यने अश्वरूप धारणकर उनकी कामनाके अनुसार उन्हें वैसा ही (अयातयाम) यजुःश्रुतियाँ प्रदान कीं, जिनसे याज्ञवल्क्यजीने पन्द्रह शाखाओंकी रचना की। अश्वरूप सूर्यके वाजम (गर्दनके बाल वा वेग) से उत्पन्न होनेसे यजुर्वेदकी वह शाखा वाजसनेयी शाखाके नामसे प्रसिद्ध हुई।

नारायणविट्ठलवैद्य पुरन्दरे पुणताम्बेकरजी वैशम्पायनके ब्रह्महत्या आदिके सम्बन्धमें लिखते हैं कि—एक

बार समस्त ऋषियोंने किसी विषयके सम्बन्धमें विचार करनेके लिये सुमेरु पर्वतपर एक सभा करनेका निश्चय किया और यह नियम किया कि जो ऋषि उस सभामें सम्मिलित न होगा उसको सात दिनके लिये ब्रह्महत्या लगेगी। उस दिन वैशम्पायनजीके पिताका श्राद्ध था, इसलिये वे अपनी नित्य-क्रियाके लिये अँधेरेहीमें उठकर स्नानको जाने लगे तो एक बालकपर उनका पैर पड़ा और वह मर गया। इस बालहत्याके शोकसे वे सभामें न जा सके। इस प्रकार एक तो उन्हें बालहत्या लगी, दूसरे ब्रह्महत्या। इन्हीं दोनों हत्याओंके निवारणार्थ वैशम्पायनजीने अपने सब शिष्योंसे प्रायश्चित्त करनेको कहा और सबोंने करना स्वीकार किया। उसपर याज्ञवल्क्यजीने अन्य शिष्योंका तिरस्कार किया। (आगेकी कथा भागवतसे मिलती है)—(शुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिन वाजसनेयी आह्निक सूत्रावली।)

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३१८ में कथा है कि मोक्षवित् जनकके पिता देवरातजीने एक बार यज्ञ किया। अध्वर्यु-कर्ममें जो प्रायश्चित्त आदि रहता है उसे वैशम्पायनजी करा रहे थे। उसके करनेमें कुछ त्रुटि हो जानेसे यज्ञमें कुछ न्यूनता मालूम पड़ी। उस समय याज्ञवल्क्यजीने वैशम्पायनजीका तिरस्कार किया। तब जनक तथा वैशम्पायन दोनोंने इनसे प्रार्थना की कि उसकी पूर्ति करा दें। याज्ञवल्क्यजीने अपने वेदोंसे उस त्रुटिकी पूर्ति करायी। यज्ञ समाप्त होनेपर देवरातजीने वैशम्पायनको जब दक्षिणा दी तब याज्ञवल्क्यजीने उसका विरोध किया और कहा कि यह सब दक्षिणा हमको मिलना चाहिये न कि वैशम्पायनको, क्योंकि यज्ञकी पूर्ति तो हमने अपने वेदोंसे करायी है। अन्तमें महर्षि देवलने वह दक्षिणा दोनोंमें आधी-आधी बँटवा दी। याज्ञवल्क्यने उनके कहनेसे उसे स्वीकार कर ली।—(यह कथा वैशम्पायनकी शिष्यता छोड़नेके बादकी जान पड़ती है। भगवान् सूर्यसे सरस्वतीकी कृपासे जो वेदोंकी शाखाएँ उन्होंने पढ़ी थीं उसीसे यज्ञकी पूर्ति उन्होंने करायी थी। इससे स्पष्ट है कि वे वैशम्पायनसे कहीं अधिक विद्वान् थे।)

विनायकी टीकाकार लिखते हैं कि ये ऋषि वसिष्ठजीके कुलमें उत्पन्न याज्ञवल्क्य ऋषिके पुत्र थे और वैशम्पायनके भानजे भी थे। परंतु श्रीमद्भागवतमें इनको देवरातका पुत्र कहा है—'**देवरातसुतः सोऽपिच्छर्दित्वा यजुषां गणम्।**' (१२। ६। ६४)

श्रीजानकीशरणजी वैशम्पायनजीकी अप्रसन्नताका कारण यह लिखते हैं कि—'एक बार उन्होंने किसी राजाको पुत्रहेतु यज्ञीयाक्षत याज्ञवल्क्यजीके हाथ भेजा और आज्ञा दी कि यह अक्षत राजाके हाथमें देना। इन्होंने जाकर द्वारपालद्वारा राजाको कहला भेजा कि आशीर्वादी अक्षत राजा स्वयं आकर ले जायँ। राजाने ठहरनेको कहा। जब बहुत समय बीत गया और वह नहीं आया तब वे लौट आये। मुनिने इनको फिर भेजा। इस बार भी राजा सायंकालतक बाहर न आया। तब इन्होंने वह अक्षत राजद्वारपर पटक दिया और लौट आये। गुरुके पूछनेपर आपने कहा कि आप मेरे विद्यागुरु हैं, आपकी आज्ञासे मैं कई बार गया परन्तु अभिमानी राजा न आया तब मैं अक्षतको द्वारपर रखकर और प्रतिहारसे कहकर चला आया। मुनिने फिर जानेको कहा। इन्होंने जानेसे इनकार किया और गुरुके अप्रसन्न होनेपर उनसे पढ़ी हुई विद्या उगल दी।' उपनिषद्-ब्राह्मण-भागमें भी यह कथा कही जाती है। भागवतमें अप्रसन्नताका कारण भिन्न है जो ऊपर लिखा गया है। श० सा० में लिखा है कि याज्ञवल्क्यजीने जो श्रुतियाँ उगलीं वे कीड़ारूपसे रेंगने लगीं तब वैशम्पायनके अन्य शिष्योंने उन्हें तीतररूपसे चुग लिया और जानकीशरणजी लिखते हैं कि सरषप (सरसों) रूपमें वे श्रुतियाँ उगली गयी थीं। उनका मत है कि सूर्यभगवान्ने उनको सामवेद पढ़ाया। (पर इसका प्रमाण भागवत द्वादशमें नहीं है जिसके आधारपर वे कथा दे रहे हैं।)

भगवान् सूर्यके प्रसादसे ये शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयीसंहिताके आचार्य हुए। वि० टीकाकार लिखते हैं कि 'इनका मत यह था कि धर्मानुसार एकान्तवासमें परब्रह्मका ध्यान करना अवश्य है। इसी हेतु ये योगविद्याके आदिकारण समझे जाते हैं। कात्यायनी और मैत्रेयी इनकी दो स्त्रियाँ थीं। इनमेंसे मैत्रेयीको इन्होंने ब्रह्मविद्या आपसकी बातचीतकी रीतिपर पढ़ायी थी।' 'ये शुक्लयजुर्वेद, शतपथब्राह्मण और बृहदारण्यक-उपनिषद्के द्रष्टा समझे जाते हैं।' वाजसनेयीसंहिताके आचार्य होनेसे इनका नाम वाजसनेय भी हुआ। [विशेष ४५ (७-८)

'कहत सो मोहि लागत भय लाजा' में देखो] श० सा० में तीन याज्ञवल्क्योंकी चर्चा है। एक तो वे जो राजा जनकके दरबारमें रहते थे। योगीश्वर याज्ञवल्क्यके नामसे प्रसिद्ध थे और गार्गी तथा मैत्रेयी जिनकी पत्नियाँ थीं। दूसरे, इन्हींके एक वंशधर स्मृतिकारका भी यही नाम था। मनुस्मृतिके उपरान्त इन्हींकी स्मृतिका महत्त्व है और उसका दायभाग आज भी कानून माना जाता है।—ये श्रीजनकमहाराजके गुरु हैं, यथा—***'जोगी जागबलिक प्रसाद सिद्धि लही है'*** (गी० १।८५)। इनको रामचरितमानस भुशुण्डिजीसे प्राप्त हुआ, यथा—***'तेहि सन जागबलिक पुनि पावा।'*** (१।३०) और इन्होंने भरद्वाजजीसे कहा।

नोट—३ ***'परम बिबेकी'*** इति। ये कैसे विवेकी थे यह इस कथासे विदित हो जायगा जो आगे दी जाती है। एक बार जनकमहाराजने ब्रह्मनिष्ठ ऋषियोंका समाज एकत्र किया और एक सहस्र सवत्सा गौओंको अलंकृतकर यह प्रतिज्ञा की कि जो ऋषि ब्रह्मनिष्ठ हो वह हमारे प्रश्नोंका उत्तर दे और इन गौओंको ले जाय। सब ऋषि सोचने लगे कि ब्रह्मनिष्ठ तो हम सभी हैं तब दूसरोंका अपमान करके हममेंसे कोई एक इन गायोंको कैसे ले जाय। (कोई-कोई कहते हैं कि सब ऋषि असमंजसमें पड़े कि भला इनके प्रश्नोंका उत्तर किससे बन पड़ेगा। पर इस कथनका प्रमाण कोई नहीं मिला।) इतनेमें याज्ञवल्क्यजी आये और उन्होंने यह कहते हुए कि मैं ब्रह्मनिष्ठ हूँ। अपने शिष्योंको आज्ञा दी कि इन गौओंको आश्रमपर ले जाओ, मैं इनके प्रश्नोंका उत्तर दूँगा। इसपर अन्य सब ब्रह्मनिष्ठ ऋषि बिगड़ गये। तब इन्होंने सबको परास्त किया। देवरातजीके पुत्र मोक्षवित् जनकके यहाँ यह समाज हुआ। वे याज्ञवल्क्यजीके शिष्य हो गये और वनमें जाकर अभ्यासक ब्रह्मनिष्ठ हो गये। तभीसे उनका नाम 'विदेह' हुआ और जितने भी राजा उस कुलमें हुए वे भी 'विदेह' ही कहलाये। याज्ञवल्क्यजी कुलके गुरु हो गये। यथा—***'जोगी जागबलिक प्रसाद सिद्धि लही है'*** (गी० १। ८५), ***'यह सब जागबलिक कहि राखा।'*** (२। २८५)।

नोट—४ ***'भरद्वाज राखे पद टेकी'*** इति। (क) ***'टेकना'*** पंजाबी मुहावरा है। उदासियोंसे अभी ***'मत्था टेकूँ'*** कहा जाता है। इसका अर्थ है 'चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम करना'। 'सामने साष्टाङ्ग पड़ जाना, कहना कि मेरी तो बिदा करनेकी इच्छा नहीं है, आप मेरे ऊपर पैर धरकर अर्थात् बलात् भले ही चले जायँ'—यह भी पद टेकनेकी एक रीति है, परन्तु यहाँ यह भाव नहीं है। बुन्देलखण्डमें 'टेकना' और 'धरना' पर्यायी शब्द हैं। ***टेकी***=धरकर। यथा—***'जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥'*** (लं० ८३) ***पद टेकी***=चरण पकड़कर, पैरों पड़कर, प्रार्थना करके। (ख) ***'पद टेकी'*** पद देकर दरसाया कि भरद्वाजजीने उनको बराबरीके भावसे नहीं रोका किन्तु गुरुभावसे रोका। दीनजी रोक रखनेका कारण यह कहते हैं कि तिरहुत बड़ा विज्ञानी देश है। याज्ञवल्क्यजीको वहाँका समझकर रोक रखा।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥५॥
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥६॥

शब्दार्थ—***पखारना*** (प्रा० पक्खाड़न। सं० प्रक्षालन)=धोना; यथा—***'जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥'*** (अयो०)। **चरन सरोज**=कमल समान चरण।

अर्थ—आदरपूर्वक उनके चरणकमल धोये और अत्यन्त पवित्र आसनपर बैठाया॥ ५॥ मुनिकी पूजा करके और उनका सुन्दर यश बखानकर (भरद्वाजजी) अत्यन्त पवित्र मीठी कोमल वाणी बोले॥ ६॥

नोट—१ ***'करि पूजा'*** इति। पूजाके प्रायः तीन भेद हैं। कोई-कोई १८, ३६ और ६४ उपचार मानते हैं। श्रीदुर्गाकल्पद्रुमके शास्त्रार्थपरिच्छेदान्तर्गत 'उपचारविषयक विचार' में पूजाके तीन भेद—पञ्चोपचार, दशोपचार और षोडशोपचार माने गये हैं। यथा-'**गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यमिति पञ्चकम्। पञ्चोपचारमाख्यातं पूजने तत्त्वविद्बुधैः॥ पाद्यमर्घं चाचमनं स्नानं वस्त्रनिवेदनम्। गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दशक्रमात्॥ आवाहनासनं पाद्यमर्घमाचमनीयकम्। स्नानं वस्त्रोपवीतं च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात्॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा। पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारस्तु षोडश॥**' अर्थात् गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे जो पूजा होती है उसे पञ्चोपचार, जिसमें इनके अतिरिक्त पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान (श० सा० के मतसे आचमनीय और

मधुपर्क) और वस्त्रनिवेदन भी हों उसे दशोपचार और जिसमें इन सबोंके अतिरिक्त आवाहन, आसन, उपवीत, ताम्बूल, प्रदक्षिणा और पुष्पाञ्जलि (श० सा० के अनुसार आसन, स्वागत, स्नान, वस्त्र, आभरण और वन्दना) भी हो उसे षोडशोपचार कहते हैं। षोडशोपचारका एक श्लोक यह है—'**आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमनं स्नानं वस्त्रं चाभरणानि च॥ सुगन्धं सुमनो धूपं दीपं नैवेद्यवन्दनम्॥**' और इनके अतिरिक्त जिसमें माल्य और स्तवपाठ हो वह अष्टादशोपचार है। यहाँ '*सादर चरन सरोज पखारे*' अर्थात् चरणप्रक्षालनसे पाद्य, '*आसन बैठारे*' से आसन और '*मुनि सुजस बखानी*' से वन्दना—ये तीन उपचार प्रत्यक्ष कहे गये। '*करि पूजा*' पद देकर पूजाके शेष उपचार भी सूचित कर दिये गये।*

नोट—२ कुछ लोगोंका मत है कि षोडशोपचारपूजन किया गया। षोडशोपचारमें अन्तमें वन्दन है वही यहाँ '*सुजस बखानी*' से सूचित किया है। परन्तु श० सा० में लिखा है कि षोडशोपचारपूजनमें आसन और स्वागतके पश्चात् और दशोपचारमें सर्वप्रथम पाद्यहीकी विधि है। (श० सा० २०७४)

टिप्पणी—१ '*मुनि सुजस बखानी*' इति। यह कि आपने अमुक-अमुक महात्माओंके भ्रम, संशय और अज्ञान दूर किये, अमुक-अमुकको आपके द्वारा भक्ति और ज्ञानकी प्राप्ति हुई, अनेक पापियोंको आपने भगवत्सम्मुख कर उनको पवित्र यश प्रदान किया, आपकी महिमा जगन्मात्रमें विख्यात है, महाराज जनक-ऐसे योगी भी आपको गुरु पाकर कृतार्थ हुए हैं, आपहीके प्रसादसे सिद्धिको प्राप्त हुए। योग-ज्ञान-विज्ञान और भक्तिके आप समुद्र हैं, सर्वज्ञ हैं इत्यादि।

टिप्पणी—२ '*बोले अति पुनीत मृदु बानी*' इति। निश्छल सरल वाणी '*पुनीत*' कही जाती है, यथा—'*प्रस्न उमाके सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥*', '*एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥*', '*सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥*' (उ० ६४) इत्यादि। जो प्रश्न या बातें दूसरेकी परीक्षा लेने या अपनी चतुराई, बुद्धि इत्यादिके प्रदर्शनके विचारसे की जाती हैं वे पुनीत नहीं हैं। भरद्वाजजीके वचन '*अति पुनीत*' हैं अर्थात् उनके पवित्र, सरल और निश्छल हृदयसे निकले हुए हैं। पुनीत वचन कभी-कभी सुननेमें कठोर होते हैं, अतः कहा कि इनके वचन कोमल हैं।

नोट—३ कुछ लोगोंका मत है कि साधारण धर्मसम्बन्धी बातें जैसे—जप, तप, तीर्थ, व्रत आदि पुनीत हैं और भगवत्सम्बन्धी वाणी '*अति पुनीत*' है। '*पुनीत*' और '*मृदु*' दो विशेषण देकर भीतर और बाहर दोनोंसे पवित्र दिखाया—हृदयसे पुनीत और बाहर सुननेमें मृदु। (पं०)

नाथ एक संसउ† बड़ मोरें। करगत बेदतत्व‡ सब तोरें॥ ७॥
कहत सो मोहि लागत§ भय लाजा। जौ न कहौं बड़ होइ अकाजा॥ ८॥

शब्दार्थ—**संसउ** (संशय=दो या कई बातोंमेंसे किसी एकका भी मनमें न बैठना।=अनिश्चयात्मक ज्ञान, संदेह, शंका।=वस्तुका ज्ञान न होना—(पां०) **करगत**=हाथोंमें प्राप्त, मुट्ठीमें। ☞ समस्त पदके आदिमें '*गत*'

* पूर्वाचार्योंने पूजाके पाँच प्रकार बतलाये हैं, जो उपर्युक्त उपचारोंके अन्तर्गत आ जाते हैं। जिनका विभाग इस प्रकार है—

१ २ ३ ४ ५

'अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्यायमेव च। इज्येति पञ्चमश्चैवमर्चाभेदं निगद्यते॥' पूज्यके स्थानपर जाकर प्रणाम करना, वहाँका निर्माल्य हटाना, झाड़ू लगाना आदि कर्म 'अभिगमन' है। दल, फूल, फल, चन्दन, पार्षदादि पूजोपकरणका संग्रह 'उपादान' है। 'आत्मवत्सेवनं कुर्यात्' के अनुसार भावना करना' 'योग' कहलाता है। 'अर्थानुसंधानैः' पूर्वमन्त्रानुसंधानं वरम्' के अनुसार मन्त्रार्थानुसंधानपूर्वक मन्त्रजाप, सूक्तस्तोत्रादिका पाठ, गुण नामादिका कीर्तन और वेदान्तादि शास्त्रोंका अध्ययन 'स्वाध्याय' है। ५, १०, १६, १८ एवं ६४ उपचारोंसे शक्ति-अनुसार पूजा करना 'इज्या' है। उपर्युक्त सब प्रकारके पूजन मुक्तिदायक हैं। ६४ उपचारोंसे केवल भगवान्‌का पूजन होता है, अन्यका नहीं। (वेदान्तभूषणजी)

† संसैउ—१६६१। संसउ—ना० प्रा०। ‡ तत्त्वबेद—भा० दा०। § लाग—ना० प्र०, लागति—१७२१, १७६२, छ०। लागत—१६६१। १७०४, को० रा०।

शब्द 'गया हुआ', 'रहित' वा 'शून्य' का अर्थ देता है। और अन्तमें 'प्राप्त'; 'आया हुआ', 'पहुँचा हुआ' का अर्थ देता है।—गत प्राण, *अंजलि गत सुभ सुमन जिमि। तत्त्व*=सिद्धान्त, वास्तविक सार वस्तु। *अकाज*=अनर्थ, हानि, कार्यका बिगड़ जाना। यथा—*'पर अकाज भट सहसबाहु से', होइ अकाजु आजु निसि बीते।'* (अ०)

अर्थ—हे नाथ! मेरे मनमें एक बड़ा भारी संदेह है और सम्पूर्ण वेदतत्त्व आपकी मुट्ठीमें है। (अर्थात् आप समस्त वेदोंके समस्त तत्त्वके पूर्ण ज्ञाता हैं, अतएव आप मेरा संदेह निवारण करनेको समर्थ हैं)॥ ७॥ उसे कहते मुझे भय और लज्जा लगती है और यदि न कहूँ तो बड़ी हानि है॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'नाथ एक संसउ बड़ मोरें'* इति। *'बड़'* का भाव कि यह संशय सामान्य नहीं है क्योंकि यह अपने-आप समझने-समझानेसे नहीं जाता। यथा—*'नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदय भ्रम छावा॥'* (उ० ५८) और न आपको छोड़ किसी दूसरेके समझानेसे जानेका है। सामान्य होता तो एक अपने ही समझने-समझानेसे चला जाता, नहीं तो अन्य ऋषियोंके समझानेसे तो अवश्य ही निवृत्त हो सकता था। ☞ऊपर याज्ञवल्क्यजीको 'परम विवेकी' विशेषण दे आये हैं। उसका तात्पर्य यहाँ खोला है कि यह संशय सामान्य विवेकीसे निवृत्त नहीं हो सकता। अन्य ऋषि-मुनि वेदज्ञ हैं, अतः विवेकी हैं और आपको तो सम्पूर्ण वेदतत्त्वका हस्तामलकवत् साक्षात्कार हो रहा है, अतः आप 'परम विवेकी' हैं। परमविवेकीसे ही इस संशयकी निवृत्ति हो सकती है।

टिप्पणी—२ *'करगत बेदतत्व सब तोरें'* इति। (क) भरद्वाजजी श्रीरामयश पूछना चाहते हैं, यथा—*'चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहु अति मूढ़ा॥'* (बा० ४७) और, रामयश वेदोंका सार है; यथा—*'बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि।'* (बा० १०९)। इसीसे यहाँ कहा कि सब वेदतत्त्व आपके करगत हैं, मुट्ठीमें हैं। तात्पर्य कि जो सम्पूर्ण वेदतत्त्वका ज्ञाता नहीं है, उसे वेदोंमें रामयश सूझता ही नहीं, इसीसे वह रामविषयक शङ्काओंका समाधान नहीं कर सकता। कथनका अभिप्राय यह है कि रामयश कहकर मेरा संशय दूर कीजिये। अथवा यों कहिये कि—(ख) भरद्वाजजीने कहा कि वेदतत्त्व आपके करतलगत है, अतः आप हमारे संशयको दूर करें। इसपर याज्ञवल्क्यजीने श्रीरामचरित कहकर उनका संदेह दूर किया। इससे यह निष्कर्ष निकला कि श्रीरामचरित ही वेदका तत्त्व है। अथवा, (ग) भरद्वाजजीके *'करगत बेदतत्व सब तोरें'* से पाया गया कि हमें उस 'तत्त्व' में संदेह है। श्रीरामरूपमें संदेह होना ही वेदतत्त्वमें संशय होना है, क्योंकि वसिष्ठजीका वाक्य है कि *'बेदतत्व नृप तव सुत चारी'* और याज्ञवल्क्यजी वसिष्ठजीके तुल्य ही वेदज्ञ हैं। ['करगत' एवं 'करतलगत' मुहावरा है। अर्थात् जैसे हथेलीपर रखी हुई वस्तु मनुष्य निरावरण सर्वांग भलीभाँति देखता है वैसे ही आपको समस्त वेदतत्त्वका साक्षात्कार है, सब तत्त्व प्रत्यक्ष देख पड़ता है।]

नोट—१ *'कहत सो मोहि लागत भय लाजा'* इति। यहाँ भय और लाज दो बातें कहीं। भयके कारण ये हैं कि—(क) कहीं आप यह न समझें कि हमारी परीक्षा ले रहे हैं और ऐसा समझकर कहीं शाप न दे दें। (ख) *'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ'* यह मेरा प्रश्न सुनकर कहीं आप अप्रसन्न न हो जायँ, यह भी भय हो सकता है, क्योंकि यही बात कहनेपर श्रीशिवजी पार्वतीजीपर अप्रसन्न हो गये थे। यथा—*'राम सो अवध नृपतिसुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥ जौं नृपतनय त ब्रह्म किमि'''''॥'* (बा० १०८)। (यह पार्वतीजीका प्रश्न था, इसपर शिवजीने कहा है कि) *'एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोहबस कहेहु भवानी॥ तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥ कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। पाखण्डी हरिपद बिमुख जानहिं झूठ न साँच॥'* (११४)। और आगे भरद्वाजजीके प्रश्न करनेपर याज्ञवल्क्यजीने भी कह ही डाला है, यथा—*'कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा।'* (४७)। *'अति मूढ़ा'* शब्दोंमें उपर्युक्त शिवजीकी डाँट-फटकारका समावेश हो जाता है। श्रीयाज्ञवल्क्यजीकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। (सूर्यभगवान्से सब विद्या प्राप्त होनेके बाद) और लोग आपसे बड़े उत्कट प्रश्न किया करते

थे। आपने सूर्यभगवान्‌से शिकायत की तब उन्होंने वर दिया कि जो कोई तुमसे वैसा प्रश्न करेगा अर्थात् जो कोई तुमसे वाद-विवाद करके तुम्हारे निश्चित किये हुये यथार्थ सिद्धान्तपर भी वितण्डावाद करेगा, उसका सिर फट जायगा। कोई-कोई कहते हैं कि जनकमहाराजके समाजमें पञ्चशिख मुनिने वितण्डावाद किया जिससे उनका सिर फट गया। स्नेहलताजी लिखते हैं कि परमहंसिनी ब्रह्मवादिनी गार्गीका सिर फट गया। परंतु हमें इन दोनोंका प्रमाण कहीं मिला नहीं। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३१० में देवरातके पुत्र मोक्षवित् राजा जनकके यहाँ याज्ञवल्क्य-ब्रह्मनिष्ठ-संवाद हुआ था; यथा—'**याज्ञवल्क्यं ऋषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशाः। पपृच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदां वरः॥**'(४) बृहदारण्यक मधुकाण्ड तृतीयाध्यायमें ब्रह्मवादिनी गार्गी और अन्य ब्रह्मनिष्ठ ऋषियोंके साथ याज्ञवल्क्यजीका संवाद है जिसमें राजा मोक्षवित् भी थे। उस ब्रह्मनिष्ठ-संवादमें भरद्वाज, गार्गी, शाकल्य और जनकमहाराज ये ही प्रधान थे। याज्ञवल्क्यजीने सबको परास्त किया। उनका यह प्रभाव देख गार्गी उनकी शरण हो उनकी स्तुति कर घरको चली गयी। शाकल्यको परास्त होनेसे दुःख हुआ और उन्होंने याज्ञवल्क्यजीका उपहास किया। तब उनका मस्तक फट गया। तत्पश्चात् राजा जनकने याज्ञवल्क्यजीसे अनुग्रह ब्रह्मोपदेश ले विरक्त हो वनमें जाकर देहातीत ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर विदेह नामको प्राप्त किया (आह्निक-सूत्रावली)। भरद्वाजजी उस ब्रह्मनिष्ठोंकी सभामें स्वयं भी उपस्थित ही थे और उन्होंने शाकल्य ऋषिकी जो दशा हुई थी वह स्वयं आँखोंसे देखी ही थी, अतएव वे (भरद्वाजजी) उसी प्रसंगकी ओर संकेत करते हुए जनाते हैं कि हमारा प्रश्न सुनकर आप उसे वितण्डावाद या छलवाद समझकर रुष्ट न हो जायँ जो हमारी भी वही दशा हो।

नोट—२ '***लाजा***' इति। लाजके कारण यह हैं कि—(१) जो विशेषण शिवजीने श्रीपार्वतीजीको दिये हैं वही अधम, पाखण्डी, हरिपद-विमुख आदि सब अपनेमें लग जाते हैं (पं० रा० कु०)। (२) आप सोचेंगे कि वेदतत्त्ववेत्ता महर्षि वाल्मीकिजीके शिष्य, और स्वयं ग्यारह हजार वर्षोंतक सूर्यभगवान्‌से वेदोंका अध्ययन करनेवाले होकर तथा सहस्रों वर्षोंसे तीर्थराजमें निवास और अनेक तत्त्ववेत्ता ऋषियों-मुनियोंका सत्संग करते हुए इतनी दीर्घायु बितानेपर भी इन्हें वेदतत्त्वका बोध न हुआ, झूठे ही प्रयागराजमें पूज्य बने बैठे हैं। (३) इस बातसे अपनी ही नहीं किंतु अपने गुरुकी भी निंदा होती है कि उन्होंने इनको श्रीरामतत्त्व भी नहीं बताया (दीनजी)।

टिप्पणी—३ '***जौं न कहौं बड़ होइ अकाजा***' इति। (क) क्या हानि होगी यह आगे दोहेमें वे स्वयं कहते हैं। संशय दूर न होगा, संशय दूर हुए बिना विमल विवेक न होगा, जैसे-के-तैसे अज्ञानी बने रहेंगे, जिससे भवसागरमें ही पड़े रहना होगा—यही बड़ी भारी हानि है। (ख) संशयको बड़ा कहा था, यथा—'***नाथ एक संसउ बड़ मोरे***' इसीसे '***अकाज***' को भी बड़ा कहा। भरद्वाजजीके '***बड़ अकाज***' कहनेका तात्पर्य यह है कि श्रीरामस्वरूपकी प्राप्ति बड़ा काज है, उसमें हानि पहुँचती है।

टिप्पणी—४ जैसे भय और लाज लगती है वैसे ही गोस्वामीजी अपने अक्षरोंसे दिखाते हैं। मुनि लाजकी बात जल्दी नहीं कह सकते, वैसे ही गुसाईंजीने जल्दी प्रकट करना न लिखा। '***नाथ एक संसउ बड़ मोरें***' कहकर तब विवेककी बात कही, फिर संशय हरनेकी प्रार्थना की; तब संशय प्रकट किया। लाजकी बात न कहनी चाहिये, इसीपर कहते हैं कि '***जौं न कहौं बड़ होइ अकाजा।***'

नोट—३ लाला भगवानदीनजी कहते हैं कि 'श्रीभरद्वाजजीको संदेह न था। जबतक अपना अज्ञान, दीनता, भय, संशय प्रकट न करो तबतक कोई ऋषि पूरा तत्त्वका मर्म नहीं बतलाता, इस विचारसे केवल सत्संगके लिये भरद्वाजजीने ऐसा कहा। भक्तिका तत्त्व इतना सूक्ष्म है कि इन सिद्धान्तोंको बराबर पूछते-कहते-सुनते रहना चाहिये, नहीं तो विस्मरण हो जाता है, यथा—'***सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय***'। श्रीभरद्वाजजी यहाँ कोई छल-कपट नहीं कर रहे हैं, इसीको आगे कहते हैं कि यदि एक ही बार वेदशास्त्र पढ़कर समझ लेनेसे काम चल जाता तो शिवजी आदि संत क्यों उनकी चर्चा करते और क्यों उनके सत्संगके लिये ऋषियोंके यहाँ जाया करते? फिर हमारी क्या?' भरद्वाजजी अपने आचरणद्वारा हमलोगोंको

उपदेश दे रहे हैं कि श्रीरामतत्त्वका परम ज्ञाता होनेपर भी उसका अभिमान न करके सदा सद्गुरुओंसे जिज्ञासा करता ही रहे।

नोट—४ *'तोरें'* इति। बैजनाथजी लिखते हैं कि 'आचार्यके लिये *'तोरें'* कहना दूषित है। यहाँ छलरहित अज्ञात होकर प्रश्न किया गया है, इससे दूषण भी भूषण हो गया'। *'तोरें'* शब्द एक वचनान्त अवश्य है और पूज्यके लिये प्रयुक्त न करना चाहिये, पर ग्रामीण बोलीमें कहीं-कहीं यह प्यार और आदरमें भी बोला जाता है। श्रीरामजी आदिके लिये भी ऐसा प्रयोग हुआ है। दूसरे, (वेदान्तभूषणजी कहते हैं कि स्तुतिमें गुरुजनोंके लिये भी एक वचनका प्रयोग दूषित नहीं है, यथा—'**बाल्ये सुतानां सुरतेऽङ्गनानां स्तुतौ कवीनां समरे भटानाम्। त्वकारयुक्तादिगिरः प्रशस्ताः**.........'॥ भरद्वाजजी यहाँ याज्ञवल्क्यजीकी स्तुति करते हुए अपनी जिज्ञासा भी प्रकट कर रहे हैं, अतः स्तुतिपक्षमें होनेसे *'तोरें'* दोषावह नहीं है। (☞ कवितामें छन्द, अनुप्रास आदि बहुत विषयोंका अनुसन्धान होनेसे एकवचन-बहुवचन, ह्रस्व-दीर्घ, लिंग आदि विषयोंपर कभी-कभी कवि ध्यान नहीं देते, उनके लिये यह बात क्षम्य है; और संस्कृतमें तो एक व्यक्तिके वास्ते बहुवचन तो खोजनेपर भी शायद ही मिले।)

दो०—संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव॥४५॥

अर्थ—हे प्रभो! सन्त ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण और मुनि लोग (भी यही) कहते हैं कि गुरुसे छिपाव (कपट) करनेसे हृदयमें निर्मल ज्ञान नहीं होता॥४५॥

टिप्पणी—१ *'संत कहहिं ....मुनि गाव'* इति। 'सन्त ऐसा नीतिमें कहते हैं और मुनि श्रुति-पुराणमें ऐसा गाते हैं' इस कथनका तात्पर्य, यह है कि मैं कुछ नहीं जानता, सन्त और मुनि ऐसा कहते हैं। (हमने *'गाव'* को श्रुति, पुराण और मुनि तीनोंकी क्रिया माना है। *'गाव'*—प्राचीन धर्म और साहित्यिक ग्रन्थ अधिकतर छन्दोबद्ध होते थे। इसीसे गोस्वामीजीने सर्वत्र उनका *'गान'* लिखा है। *'गान'* का अर्थ तबला आदिके साथ गाना यहाँ नहीं है किंतु 'आदरपूर्वक वर्णन करना' है। जो छन्दोबद्ध कविताएँ हैं उनको पढ़नेका अलग-अलग ढंग होता है, उस ढंगसे यदि कविता पढ़ी जाय तो सुननेमें चित्ताकर्षक होती है। सम्भवतः इसी अभिप्रायसे मानसमें *'गाई'* आदि शब्दोंका प्रयोग किया गया है। यथा—*'नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान।'* (बा० १२)। *'मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई', 'सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥'* (३३। २) इत्यादि। *'संत कहहिं असि ....'* में 'शब्दप्रमाण अलङ्कार' है।)

टिप्पणी—२ *'होइ न बिमल बिबेक उर.......'* इति। (क) *'गुर सन किएँ दुराव'* कहनेका भाव कि औरोंसे छिपाव करनेसे हानि नहीं है, औरोंसे लाजकी बात भले ही न कहे, पर गुरुसे उसे भी न छिपाना चाहिये, अवश्य कह देना चाहिये, गुरुसे छिपाव करनेसे बड़ी हानि है। (ख) **बिमल बिबेक**=शुद्ध निर्मल ज्ञान। श्रीरामजीका स्वरूप भली प्रकार समझ पड़ना ही निर्मल ज्ञान है और यह सद्गुरुकी कृपा, अनुकम्पा करुणासे ही सम्भव है, अन्यथा, नहीं। यथा—*'सदगुरु बैद बचन बिस्वासा।...... बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह रामभगति उर छाई॥'* (उ० १२२)। *'तुलसिदास हरिगुरु करुना बिनु बिमल बिबेक न होई।'* (वि० ११५)। इससे स्पष्ट है कि भरद्वाजजीके मतसे '**सोऽहं**' और '**अहं ब्रह्मास्मि**' आदि *'बिमल ज्ञान'* नहीं है। *'बिमल ज्ञान'* का लक्षण भुशुण्डिजीने स्पष्ट कहा है कि *'तब रह रामभगति उर छाई।'*—इस विमल ज्ञानकी प्राप्ति सद्गुरु-कृपा-करुणासे ही है तब गुरुसे कपट करनेसे वह कब सम्भव है? कपट करनेसे वे क्यों करुणा-कृपा करने लगे? ☞ गुरुसे दुराव करनेवालेको यदि यत्किञ्चित् विवेक भी हो जाय तो वह कथनमात्रका ही होगा, उससे दुस्तर भवको पार करना असम्भव है; यथा—'**बाक्य-**
ग्यान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई। निसि गृहमध्य दीपकी बातन्ह तम निबृत्त नहिं होई॥'.....'जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु बिषय आस मन माहीं।' (वि० १२३), *'ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं*

न दूसरि बात। कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥' (उ० ९९)।—ऐसा मनमुखी ज्ञान मलिन (समल) ज्ञान होगा। (वै० रा० प्र०)। ज्ञान न होनेसे भवसे छुटकारा न होगा, यथा—*'बिनु बिबेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई।'* (वि० १२३)।

(ग) श्रीरामचरितमानसमें उपर्युक्त कथन चरितार्थ भी है। देखिये सतीजीने जगद्गुरु शंकरजीसे दुराव किया; यथा—*'सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥'* (१। ५६। १)। इसीसे उनके हृदयमें विवेक न हुआ। यथा—*'लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु।'* (५१)। तथा *'होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा।'* (१। ५१। ४)।—(परंतु दुराव पीछे हुआ। छप्पनवें दोहेमें रघुनाथजीकी परीक्षा लेकर लौट आनेपर दुराव किया गया है और उपदेशका न लगना श्रीरामसमीप जानेके पूर्वकी बात है। अतः दुराव करनेसे विवेक न हुआ, यह अनुमान संगत नहीं जान पड़ता।) श्रीपार्वती-तनमें जब उन्होंने अपना मोह श्रीशिवजीसे प्रकट किया तब शंकरजीके वचनोंसे उनका भ्रम मिटा और विमल ज्ञान अर्थात् श्रीरामस्वरूपका बोध हुआ। यथा—*'जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू।'''''*, *'सुनि सिव के भ्रमभंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥ भइ रघुपतिपद प्रीति प्रतीती।'''''तुम्ह कृपाल सब संसउ हरेऊ। रामसरूप जानि मोहिं परेऊ॥'* (बा० ११९-१२०)।—इसीसे सज्जन और महात्मा लोग गुरुसे छिपाव नहीं करते। श्रीरामचन्द्रजी भी अपने आचरणसे यही उपदेश दे रहे हैं। यथा—*'रामु कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥'* (बा० २३७)।

अस बिचारि प्रगटौं निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥ १॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥ २॥

अर्थ—ऐसा सोच-समझकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ! दासपर कृपा करके (उस मेरे अज्ञानको) दूर कीजिये॥ १॥ श्रीराम-नामका असीम प्रभाव है, सन्त, पुराण और उपनिषदोंने उसे गाया है॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) *'अस बिचारि'* इति। *'अस'* अर्थात् जैसा ऊपर कह आये कि गुरुसे दुराव करनेसे विमल विवेक नहीं होता और बिना इसके घोर भवनिधि पार नहीं होता। *'अस बिचारि'* कहकर जनाया कि मुझे विमल विवेककी प्राप्तिकी इच्छा है। (ख) *'हरहु'* इति। ऊपर दोहेमें *'गुर सन किएँ दुराव'* इन वचनोंसे भरद्वाजजीने प्रकट किया है कि उन्होंने याज्ञवल्क्यजीको गुरु मानकर मोह दूर करनेकी प्रार्थना की है। पहले गुरु कहकर अब यहाँ उसका अर्थ (कार्य) कहते हैं। गु=अन्धकार। रु=निवारण, निरोध। गुरु=अन्धकार (मोह) का हरनेवाला। अतएव गुरु कहकर *'मोह हरहु'* कहा। *'हरहु'* शब्दसे जनाया कि मोह अन्धकार है और गुरुवचन रविकर है। यथा—*'महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर।'* (ग) *'करि छोहू'* इति। दया करके हरिये। भाव यह कि मुझसे प्रत्युपकार नहीं हो सकता; यथा—*'मोते होइ न प्रत्युपकारा'* (उ०)। पुनः, *'करि जन पर छोहू'* कहकर जनाया कि मैं उसका अधिकारी न भी होऊँ तब भी अपना *'जन'* (सेवक) जानकर कृपा करके कहिये। अपनी कृपासे मुझे अधिकारी बना लीजिये। यथा— *'जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥'* (बा० ११०)।

☞टिप्पणी—२ *'हरहु नाथ करि जन पर छोहू।'* तक प्रश्नकी भूमिका हुई। आगे *'राम नाम कर अमित प्रभावा'* से कथाका प्रसंग चला है। श्रीरामचरितप्रसंगका उपक्रम यहाँ *'राम'* शब्दसे हुआ है और इस प्रसंगका उपसंहार भी अन्तमें *'प्रिय लागहु मोहि राम॥'* (उ० १३०) में *'राम'*-शब्दपर ही किया गया है। *'मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी'* उस *'राम'*-शब्दसे सम्पुटित होनेसे इसका पाठ अभिमतदाता होगा।

टिप्पणी—३ *'राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान'''''* इति। यहाँ श्रीरामनामके प्रभावके गानेवालोंमें संत, पुराण, उपनिषद् तीन प्रमाण गिनाये। सन्त शास्त्रके वक्ता हैं; वे वेद, पुराण और शास्त्र तीनोंको कहते हैं। रामनामका प्रभाव कथन करनेमें सन्त ही प्रथम हैं, इसलिये इनको प्रथम कहा। श्रीअत्रिजी,

अगस्त्यजी, नारदजी, पुलहजी, पुलस्त्यजी, वसिष्ठजी और सनत्कुमारजी इत्यादिने साक्षात्कार करके अपनी-अपनी संहिताओंमें श्रीरामनामका प्रभाव लिखा भी है। पद्मपुराण, लिंगपुराण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, शिवपुराण, नन्दीपुराण इत्यादि पुराणोंमें शिवजी, नन्दीजी, ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु आदिने विस्तारपूर्वक उदाहरणोंसहित श्रीरामनामके प्रभावका वर्णन किया है। श्रीराममन्त्र और श्रीरामनामका प्रभाव प्रकट करनेमें श्रीरामतापनीयोपनिषद् प्रधान है। 'श्रीसीतारामनामप्रतापप्रकाश' में बहुत उत्तम संग्रह है, उसे पाठक पढ़ें। नामवन्दना-प्रकरणमें बहुत प्रमाण आ चुके हैं। अतः यहाँ नहीं लिखे गये।

नोट—१ *'उपनिषद गावा'* इति। वेदान्तभूषणजी लिखते हैं कि—**'वेदयति'** इस व्युत्पत्तिसे वेद शब्दका अर्थ होता है, ब्रह्मज्ञानसाधनके संस्कारधर्म और उससे भिन्न जो अधर्म है उसका ज्ञापक। वेदके मन्त्रात्मक और ब्राह्मणात्मक दो भेद हैं, मन्त्रभागको संहिता कहते हैं। ऋग्, यजुः, साम और अथर्व—ये चार संहिताओंके नाम हैं। प्रायः इन्हींके व्याख्यास्वरूप ग्रन्थोंको ब्राह्मण कहते हैं। प्रत्येक संहिताके साथ एक-एक ब्राह्मणका सम्बन्ध है और उन्हीं ब्राह्मणभागोंके 'विधि, अर्थवाद तथा आरण्यक' नामसे तीन विभाग हैं। विधिमें कर्तव्य, कर्म और अर्थवादमें कर्मके फलका प्रतिपादन किया गया है। और **'अरण्ये प्रोच्यमानम्'** के अनुसार जिसका कथनोपकथन 'अरण्य' (एकान्त) में हो उसे आरण्यक कहते हैं। वेदविभागात्मक आरण्यकके अन्तिम भागकी ब्रह्मविद्या संज्ञा है। उसी ब्रह्मविद्याको उपनिषद् कहा जाता है। उपनिषद् (उप+नि+सद्+क्विप्, **उपनिषादयति ब्रह्मणः समीपं प्रापयतीत्युपनिषत्**) का अर्थ है जीवको ईश्वरके समीप पहुँचानेवाला। सांसारिक व्यापारमें लगे हुए जीवोंके लिये उपनिषद् भगवत्सन्निधिमें प्राप्त होनेका साधन है। तत्त्वत्रय, योग, संन्यास, वैष्णव, शैव और शाक्त भेदसे उपनिषदोंके छः विभाग हैं। तत्त्वत्रयविभागमें ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ब्रह्मोपनिषत्-नामसे प्रसिद्ध तथा सर्वोपनिषत्सार गारुडादि अन्य भी उपनिषद् हैं। वैष्णव-विभागमें—श्रीरामतापिनी, गोपालतापिनी, नृसिंहतापिनी, महानारायणात्मबोध, रामरहस्योपनिषद् आदि। शैव-विभागमें, अथर्वशिरोऽथर्वशिरस्, नीररुद्र, कालाग्निरुद्र, श्वेताश्वतर और कैवल्य आदि हैं। उपनिषद् असंख्य हैं। इनमेंसे १०८ तक मानी जाती हैं। उपनिषद्के विभिन्न भागोंमें भिन्न-भिन्न बातें होते हुए भी सबमें एक स्वरसे भगवन्नामका अपरिमित महत्त्व कहा गया है।

नोट—२ *'संत पुरान उपनिषद गावा'* में यह भाव भी है कि ये गाते हैं पर पार नहीं पाते, क्योंकि अमित है। दूसरा अर्थ यह भी है कि 'सन्त, पुराण और उपनिषद्ने ऐसा कहा है कि रामनामका प्रभाव अमित है।'

प० प० प्र०—*'संत पुरान उपनिषद गावा'* इस चरणमें १६ मात्राएँ होनेपर भी छन्दोभङ्ग होता है पर यह दूषण सहेतुक होनेसे भूषणरूप है। इस चरणके पढ़नेमें जिस प्रकार वाणी रुक जाती है, छन्दोभङ्ग होता है, उसी प्रकार रामनामका प्रभाव गानेमें सन्त, पुराण और उपनिषदोंकी वाणी भी रुक जाती है, यह भाव इस छन्दोभङ्गद्वारा ध्वनित किया है।

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ज्ञान गुन रासी॥ ३॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥ ४॥
सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥ ५॥

अर्थ—कल्याणस्वरूप, नाशरहित, षडैश्वर्यसम्पन्न, ज्ञान और गुणोंकी राशि श्रीशङ्करजी उसे (श्रीरामनामको) निरन्तर जपते हैं॥ ३॥ संसारमें जीवोंकी चार खानें अर्थात् उत्पत्तिस्थान या जातियाँ हैं। काशीमें मरनेसे वे सभी परमपद पाते हैं॥ ४॥ हे मुनिराज! वह भी श्रीरामनामहीकी महिमा है। श्रीशिवजी (मरते हुए जीवोंपर) दया करके (उनको श्रीरामनामका) उपदेश करते हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'संतत जपत संभु अबिनासी।'* इति। (क) अविनाशी, शिव (कल्याणस्वरूप); भगवान् ज्ञानराशि और गुणराशि शिवजीको ये पाँच विशेषण देकर *'संतत जपत'* कहनेका भाव कि ऐसे विशेषणोंसे

विशिष्ट परम समर्थ भगवान् भी श्रीरामनामका जप करते हैं और वह भी निरन्तर, तब अन्य जीवोंका कहना ही क्या? (ख) ये सब विशेषण ईश्वरके हैं। भगवान् शंकर ईश्वर हैं, यथा—*'मृषा बचन नहिं ईश्वर कहहीं।'* जब ईश्वर इसे जपते हैं तब तो वह निर्विवाद सिद्ध है कि जिसको वे जपते हैं वह निस्सन्देह अतिशय प्रभाववाला होगा। (ग) *'संतत जपत'* अर्थात् दिन-रात, भूत-भविष्य-वर्तमान, सभी कालोंमें जपते रहते हैं, जपमें कभी अन्तर नहीं पड़ता। यथा—*'तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥'* (बा० १०८)। यही नहीं किंतु इसीके जपसे शिवजी अविनाशी और कल्याणस्वरूप हो गये; यथा—*'नामप्रसाद संभु अबिनासी। साज अमंगल मंगलरासी॥'* १९ (३), २६ (१) भी देखिये। पुनः, *'संतत जपना'* कैसे सम्भव है? इसीसे कहा वे अविनाशी हैं। मरनेसे जपमें अन्तर पड़ जाता, क्योंकि *'तन बिनु बेद भजन नहिं बरना।'* पर ये अविनाशी हैं इससे निरन्तर सदा जपते हैं। (घ) ☞यहाँ *'संतत जपत'* कहा और अन्तमें *'उपदेश करत करि दाया'* कहा। इस तरह दो बातें बतायीं। यह कि शिवजी स्वयं रामनाम जपते हैं और दूसरोंको उसका उपदेश भी करते हैं।

☞टिप्पणी—२ *भगवान'* इति। भग=ऐश्वर्य। छः प्रकारकी विभूतियाँ जिन्हें सम्यगैश्वर्य, सम्यग्वीर्य, सम्यग्यश, सम्यक्श्री, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्वैराग्य कहते हैं। **'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥'** जिसमें ये छः विभूतियाँ अथवा जिसे उत्पत्ति, प्रलय, जीवोंकी गति और अगतिका सामर्थ्य और विद्या एवं अविद्याका ज्ञान हो उसे भगवान् कहते हैं; यथा—**'उत्पत्तिं प्रलयं चैव जीवानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥'** शिवजी इन सब ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हैं, अतः भगवान् कहा। ☞स्मरण रहे कि ये छः ऐश्वर्य ब्रह्मसे अतिरिक्त मुक्तकोटिके जीवोंमें भी हो जाते हैं।

टिप्पणी—३ *'आकर चारि जीव जग अहहीं।'* इति। (क) *आकर*—८ (१) *'आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव'* में देखिये। (ख) इससे जनाया कि कोई भी जीव-जन्तु किसी भी योनि और खानिका क्यों न हो सबको एक समान मुक्ति मिलती है। यथा—*'जो गति अगम महामुनि दुरलभ कहत संतश्रुति सकल पुरान। सोइ गति मरनकाल अपने पुर देत सदाशिव सबहिं समान॥'* (वि० ३)। *'जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं। बेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं॥'* (वि० ४)। तथा—*'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥'* (ग) *जग अहहीं'* कहकर जनाया कि काशीवासीकी ही मुक्ति होती है—ऐसा न समझिये। वरंच कोई भी जीव हो, जगत्में कहीं भी रहता हो, यदि वह यहाँ आकर मरे तो वह भी परमपदको प्राप्त होता है। काशीमें मृत्युकी प्राप्तिमात्र मुख्य है।

टिप्पणी—४ *'सोपि राममहिमा'''''''* इति। **सोपि**=सः **अपि**=वह भी। इस कथनका भाव यह है कि मुक्ति देनेमें कुछ काशीकी महिमा नहीं है। रामनामकी महिमा है। रामनाम ही मुक्तिका हेतु वहाँ भी है; यथा—*'कासी मुकुति हेतु उपदेसू।'* १९ (३) और २६' (१) भी देखिये। पुनश्च हारीतस्मृतौ यथा—**'अद्यापि रुद्रः काश्यां वै सर्वेषां त्यक्तजीविनाम्। दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकं ब्रह्मनामकम्॥'**

टिप्पणी—५ *'सिव उपदेसु करत करि दाया'* इति। दयाभावसे उपदेश करनेका तात्पर्य यह है कि शिवजी यह विचार मनमें नहीं लाते कि यह इसका अधिकारी है या नहीं, अपना सेवक है वा नहीं, काशीवासी है या नहीं, और न उसके कर्म या दुष्कर्मकी ओर दृष्टि डालते हैं, सबको परमपद दे देते हैं।

नोट—१ *'दाया'* इति। दया निस्स्वार्थ कृपाका नाम है। भगवान् शंकरकी बद्ध जीवोंपर कैसी असीम दया है, यह इस बातसे स्पष्ट है कि उन्होंने इन्हींके मोक्षके लिये सहस्रों मन्वन्तरतक राममन्त्रानुष्ठानरूपी कठिन तप किया, जिससे भगवान् श्रीरामने प्रसन्न होकर इनका मनोरथ पूर्ण किया। श्रीरामतापिनी उत्तरार्ध-चतुर्थकण्डिका, यथा—**'श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः। मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः॥ ५॥'''''''' अथ स होवाच श्रीरामः—' '''''मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥'**

(१२)।—यहाँ '**उपदेक्ष्यसि**' शब्द है इसीसे भरद्वाजजी भी '*उपदेस करत*' कहते हैं। आजतक यह नहीं सुना गया कि शंकरजीको छोड़ किसी औरने परोपकारके निमित्त ऐसा कष्ट उठाया हो। यह केवल शिवजीकी करुणा है, दया है। (वै० भू०)

टिप्पणी—६ ☞यहाँ रामनामके प्रभावके तीन प्रमाण दिये गये हैं। इनमेंसे प्रथम '*संतपुरान उपनिषद गावा*' है। यह शास्त्र-प्रमाण है। दूसरा '*संतत जपत संभु अबिनासी*' यह ईश्वर-प्रमाण है और तीसरा '*आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत*……' यह लोक-प्रमाण है।

नोट—२ ☞यहाँ यह शङ्का की जाती है कि यहाँ तो कहते हैं कि '*कासीं मरत परमपद लहहीं*' काशीमें मरणमात्रसे मुक्ति होती है। श्रुति भी है—'**काश्यां मरणान्मुक्तिः।**' और उधर श्रुति यह भी कहती है कि '*ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।*' बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती। इन दोनों परस्परविरोधी वाक्योंका एकीकरण कैसे होगा?'' इसका समाधान यह है कि श्रीरामनामके प्रभावसे मरते समय प्राणीमें वह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है जिससे मोक्ष प्राप्त होता है—श्रीरामनामका यह प्रभाव '**सोऽपि राममहिमा**' कहकर जना दिया गया है। श्रुति भी कहती है—'**ज्ञानमार्गं च नामतः।**' (रा० ता० उ० ४)—विशेष ३५ (४) और विनय-पीयूष पद ३ (३), ७ '*तुअ पुर कीट पतंग समाहीं*' और २२ (८) में देखिये।

नोट—३ '*जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥*', '*अवध तजे तन नहिं संसारा*' और '*कासीं मरत परमपद लहहीं*' इत्यादिको पढ़कर भगवद्विमुख कहा करते हैं कि—'चौरासी लक्ष योनियोंमेंका कोई भी जीव हो और कैसा ही अधम क्यों न हो, उसको बिना परिश्रम मुक्ति प्राप्त हो जाती है' तब तो '*कर्म प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥*'—यह विरोधी चौपाई लिखने और कर्मफल-भोगकी प्रधानता दिखानेका परिश्रम व्यर्थ क्यों किया गया?

इस प्रश्नके उत्तरमें प्रथम तो हमें यह कहना है कि—श्रीकाशीवास, श्रीअवधवास, श्रीसरयूस्नान शास्त्रोंमें विश्वास करके क्षेत्रसंन्यास लेकर भगवद्धामों, सप्तपुरियों एवं तीर्थस्थलोंमें शरीर छोड़नेके लिये जाना—ये भी तो कर्म ही हैं या कुछ और? इन स्थानोंमें यह शक्ति, यह सामर्थ्य दे दिया गया है कि वे समस्त अघ-ओघका नाश कर दें। जो शास्त्रोंको मानते हैं, उनको यह अधिकार कहाँ है कि वे उनकी एक बात मानें, दूसरी न मानें? जब हमारे सत्-शास्त्र यह बताते हैं कि अमुक यज्ञ, जप, तप, दान आदि शुभ कर्मोंका अमुक फल है और उसके अनुसार हम कर्मक्षेत्रमें फल-प्राप्तिके लिये प्रविष्ट होते हैं तब इसमें सन्देह ही क्या कि श्रीअवध, काशी, मिथिला, चित्रकूट, ब्रज आदि क्षेत्रोंमें मरणको प्राप्त होनेसे जीव मोक्षको प्राप्त होते आये, होते हैं और होंगे ? जो भगवद्धामोंका आश्रय लेते हैं वे निस्सन्देह मुक्त हो जाते हैं; क्योंकि भगवान्‌के नाम-रूप, लीला और धाम चारों सच्चिदानन्द-विग्रह हैं।

पुनः, दूसरा समाधान यह है कि '*कर्म प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥*' यह उक्ति कर्मकाण्डियोंके लिये है। जिनको अपने कर्तव्यका, अपने पुरुषार्थका अभिमान है। ये अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य भोगेंगे पर '*जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।*', जो एकमात्र भगवच्छरणपर निर्भर है, जो श्रीरामजीके नाम, रूप, लीला अथवा धामका अवलम्बन ले लेता है—वह तो कर्मबन्धनसे छूट ही गया, उसपर ब्रह्मा या यमराजका अधिकार ही नहीं रह जाता। वह तो एकमात्र जगन्नियन्ताके ही अधिकारमें है। धर्मराजने स्वयं अजामिल आदिके प्रसंगोंमें अपने अनुचरोंको यही उपदेश दिया है कि तुम भूलकर भी ऐसे लोगोंके पास न जाना, भगवच्छरण होते ही हमारा अधिकार वहाँसे उठ गया। '*भगतिवंत अति नीचहु प्रानी। मोहिं परमप्रिय अस मम बानी॥*', '*अतिप्रिय मोहिं इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥*' और '*जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥*'—ये सत्यव्रत, सत्यसन्ध, सत्यसंकल्प, सत्यप्रतिज्ञ, महापुरुष, मर्यादापुरुषोत्तम, लोकको आदर्श मानवजीवनके परमपथके प्रदर्शक, साक्षात् परब्रह्म श्रीदाशरथिराजकुमाररूपमें अवतरित रघुकुलमणि श्रीरामजीके श्रीमुखवचन हैं। ये कालत्रयमें कदापि असत्य नहीं हो सकते। फिर, सोचिये तो, कितने ऐसे हैं जो श्रद्धाविश्वासपूर्वक आकर श्रीधाममहाराजकी शरण

लेते हैं ? बत्तीस करोड़में दो-चार, दस-बीस प्रतिवर्ष न ? सभीके ऐसे भाग्य कहाँ? उनको विश्वास ही न होगा।—*'अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाँव देइ एहि मारग सोई॥'* पूर्वके बड़े सुकृतोंसे ऐसी बुद्धि होती है। कितने ही तो जन्मभर धाम-निवास करते हैं; अन्तमें यहाँसे निकाल बाहर किये जाते हैं। तीसरे, यह स्मरण रखनेकी बात है कि महान् पापी, अधर्मी, कुकर्मी अधमोंके ही मोक्षप्राप्तिमें धाम आदिकी विशेष महत्ता है। निष्पाप और सुकृतियोंका मोक्ष तो सर्वत्र हो सकता है—*'कबिरा जौं काशी मरै तो रामहिं कौन निहोर।'* पर बेचारे दीन, सर्वपुरुषार्थहीन, साधनशून्य, पतित हम-सरीखे लोगोंके लिये तो एकमात्र दीनदयाल, अशरणशरण, अनाथनाथ, अधम-उद्धारण, पतितपावन, आदि विश्वविख्यात विरदोंका बाना धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजीके ही चतुष्टयविग्रहका एकमात्र अवलम्ब है। नहीं तो *'कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जनमन मीना॥'* तब हम दीनजन अपने पुरुषार्थसे कब मनको निर्मल बना सकेंगे ? उनका सहारा न हो तो करोड़ों कल्पोंतक हमारा उद्धार हो ही नहीं सकता।—यह उपाय तो प्रभुने हमारे-सरीखे अपाहिजोंके लिये ही रच दिया है।—*'कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥'* उन्हीं करुणावरुणालयने करुणा करके यह सुगम उपाय भी बता दिया है। देखिये, असाध्य वा कष्टसाध्य रोगोंके लिये ओषधि बतायी जाती है कि भुवाली जाओ, मसूरी जाओ इत्यादि। यह क्यों? क्योंकि उस देशमें उस रोगके नाशक तत्त्व विशेष पाये जाते हैं। मुसलमान मक्का, मदीना और अजमेर आदिकी जियारत करते हैं, हाजी और हाफिज़की उनमें प्रतिष्ठा है! इसी तरह अन्य मजहबोंमें कुछ स्थान मुतबर्रक माने जाते हैं—कुछ हमारे ही यहाँ नहीं। हमारे महर्षियोंने, योगेश्वरोंने अनुभव किया है कि भगवद्धामोंके तत्त्व बहुत ही विशुद्ध हैं, उनमें शक्ति जीवको ऊपर ले जानेकी है। देखिये, सिद्धपीठोंमें अनुष्ठान शीघ्र क्यों सिद्ध होते हैं? उनका वातावरण बहुत सिद्ध है, इसीसे न? तब भगवद्धाममें भगवान्ने श्रद्धालुओंके लिये मानसरोगोंके नाशकी शक्ति और जीवको प्रारब्धभोगके अन्तमें प्रभुकी समीपता आदि प्राप्त करनेका सामर्थ्य प्रदान कर दिया है तो आश्चर्य क्या?

रामु कवन प्रभु पूछौं तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही॥ ६॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्हकर चरित बिदित संसारा॥ ७॥
नारि बिरह दुखु लहेउ अपारा। भएउ* रोषु रन रावनु मारा॥ ८॥

अर्थ—हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं। हे दयासागर! मुझे समझाकर कहिये (अर्थात् केवल इङ्गित करनेसे काम न चलेगा)॥ ६॥ एक राम तो अवधनरेश (श्रीदशरथमहाराज) के पुत्र हैं। उनका चरित (तो) संसारभरमें प्रसिद्ध है (कि)॥ ७॥ उन्होंने स्त्रीके विरह-वियोगमें अपार दुःख पाया। उन्हें क्रोध हुआ, (जिससे) उन्होंने युद्धमें रावणको मार डाला॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'रामु कवन प्रभु पूछौं तोही।'* इति। (क) *'रामु कवन'*—भरद्वाजजी पूछते हैं कि जिनके नामका ऐसा प्रभाव है, ऐसी महिमा है, वे राम कौन हैं ? *'कवन'* से दो रामका होना सूचित किया। इसीसे 'एकको ऊपर *'संतत जपत संभु अबिनासी'* में कहकर दूसरेको आगे कहते हैं। अर्थात् एक राम तो शिवजीके इष्ट हैं जिनको वे सदा जपते हैं और दूसरे अवधेशकुमार हैं।—(श्रीकरुणासिन्धुजी *'रामु कवन'* का भाव यह लिखते हैं कि मैं तो एक इन्हीं दशरथनन्दन 'राम' को जानता हूँ कि यही एक, अखण्ड, एकरस, परात्पर ब्रह्म हैं; परन्तु इनके चरित्र ऐसे हैं कि उनसे इनके परात्पर ब्रह्म होनेमें सन्देह हो जाता है। परब्रह्ममें दुःख और क्रोध कैसे सम्भव हो सकते हैं? इसीसे भ्रम हो रहा है कि शिवजीके उपास्य कोई अन्य राम होंगे।)

(ख) **प्रभु**=जो अनुग्रह या निग्रह करनेमें समर्थ हो, जिसके आश्रयमें जीवोंका निर्वाह होता है।

* भए—१७२१, १७६२। भएउ—१६६१, १७०४, छ०, कोदोराम।

यह शब्द प्राय: श्रेष्ठपुरुषोंके सम्बोधनमें प्रयुक्त होता है पर यहाँ यह सम्बोधनमात्र नहीं है, साभिप्राय भी है। यहाँ *'प्रभु'* सम्बोधन देकर जनाते हैं कि आप मेरा सन्देह दूर करनेमें सर्वथा समर्थ हैं।

(ग) *'पूछौं तोही'* इति। बिना पूछे रामतत्त्व न कहना चाहिये इसीसे *'पूछौं'* (अर्थात् मैं पूछता हूँ अत: कहिये) कहा। (पुन: भाव कि मैं इसे दूसरेसे नहीं पूछ सकता था, इसलिये आपसे पूछता हूँ। वि० त्रि०)

(घ) *'कृपानिधि'* इति। ऐसा प्रश्न करनेपर क्रोधकी सम्भावना है, कहीं याज्ञवल्क्यजी रुष्ट न हो जायँ। जैसे शिवजी पार्वतीजीके इसी प्रश्नपर हुए हैं, अत: *'कृपानिधि'* सम्बोधनद्वारा प्रार्थना सूचित की कि आप क्रोध न करें, मुझपर दया करके मुझे समझाकर कहें। पुन: भाव कि गुरुकी कृपाके बिना रामस्वरूपका बोध नहीं हो सकता। गुरु कृपासिन्धु होते हैं, यथा—*'बंदउँ गुरुपदकंज कृपासिंधु नररूप हरि।'* अत: हे कृपानिधि! आप मुझपर कृपा करें जिससे रामस्वरूप समझ पड़े। पुन:, *'प्रभु'* सम्बोधित करके फिर *'कृपानिधि'* सम्बोधनका भाव कि समर्थ होनेपर भी यदि दया हृदयमें न हुई तो उस प्रभुत्वसे कोई लाभ नहीं होता, यथा—*'प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावौं। इहै समुझि सुनि रहौं मौनहीं कहि भ्रमु कहा गवाँवौं॥'* (वि० २३२)। उससे भ्रम कहना भी व्यर्थ है। आप प्रभु भी हैं और कृपाल भी—यह सौलभ्य है। पुन: भाव कि अधिकारी मैं न भी सही तो भी आप कृपासे अधिकारी बना लें।

(ङ) ☞ऊपर ४५ (६) में कविने जो कहा है कि *'बोले अति पुनीत मृदु बानी।'* उसीका निर्वाह *'नाथ, प्रभु, कृपानिधि'* शब्दोंमें है। ये सब शब्द 'अतिमृदु' हैं।

टिप्पणी—२ *'एक राम अवधेसकुमारा।......'* इति। (क) भरद्वाजजीने भगवान् शिवके इष्ट ब्रह्म 'राम' का रूप नहीं कहा, 'नाम' मात्र कहा, क्योंकि उनके (भरद्वाजजीके) मतसे ब्रह्म अवतार नहीं लेता। सतीजीको दो बातोंमें संदेह था, एक तो अवतार लेनेमें, दूसरे चरितमें। यथा—*'ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥'* (५०) तथा *'जौं नृपतनय त ब्रह्म किमि नारि बिरह मति भोरि।'* (१०८)। संदेहका वही स्वरूप भरद्वाजजीके प्रश्नमें दिखाया है अर्थात् इनको भी वे ही दोनों संदेह हैं—यही आगे याज्ञवल्क्यजी कहेंगे, यथा—*'ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी।'* *'राम नाम कर अमित प्रभावा।'......'सोपि राम महिमा'* में ब्रह्मरामकी महिमा नाममहिमाद्वारा कहनेसे ही 'ब्रह्म-रामके अवतार लेनेमें संदेह है' यह स्पष्ट जनाया है। दूसरा संदेह इस चौपाईसे स्पष्ट है। अवधेशकुमार हैं तब ब्रह्म कैसे हो सकते हैं? *'नारि बिरह दुखु लहेउ अपारा'* तब ब्रह्म कैसे हो सकते हैं ?

—*'अवधेसकुमारा, दुख लहेउ, भएउ रोष रन रावनु मारा'*—

(क) श्रीभरद्वाजजीका कहना है कि शिवजी तो शायद किसी अन्य निर्गुण ब्रह्म रामकी उपासना करते हैं, उनका नाम जपते हैं और मैं जिनको जानता हूँ वे तो अवधेशके बालक हैं। ये तो ब्रह्म हो नहीं सकते; क्योंकि इनमें दो अवगुण प्रत्यक्ष हैं—एक तो यह कि ब्रह्म अजन्मा है और इनका तो जन्म चक्रवर्ती महाराज दशरथजीके यहाँ हुआ। दूसरे, ब्रह्मको योग-वियोग नहीं होता। वह सम है, शुद्ध-बोध-विज्ञान-स्वरूप है, उसमें काम-क्रोधादि विकार कहाँ? और, ये तो कामी और क्रोधी दोनों हैं जो अज्ञानियोंके लक्षण हैं। *'दुख लहेउ'* से राग और *'भएउ रोषु'* से द्वेष पाया गया। राग-द्वेष, काम-क्रोध, दु:ख-सुख, शत्रु-मित्र—ये सब अज्ञानसे होते हैं, जीवके धर्म हैं न कि ईश्वरके; यथा—*'क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अज्ञान।'*, *'हरष बिषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धरम अहमिति अभिमाना॥'*—(पं० रा० कु०)

(ख) पुन:, *'अवधेस कुमार'* का भाव यह है कि यदि आप कहें कि ये वही परात्पर ब्रह्म राम हैं तो ये तो त्रेतामें हुए, वैवस्वतमनुकी चौबीसवीं चतुर्युगीमें हुए, हरिवंश तथा मत्स्यपुराणोंमें इसका प्रमाण है, यथा—**'चतुर्विंशयुगे चापि विश्वामित्रपुर: सर:। राज्ञो दशरथस्याथ पुत्र: पद्मायतेक्षण:॥'** (हरिवंश १।४१।१२१)। इनका नाम तो शिवजी पहलेसे जपते चले आते हैं और ये तो हालमें हुए (लाला भगवानदीनजी)। *'नारि बिरह'* से जनाया कि इन्द्रियविषयमें रत थे; इसीसे कामासक्त थे और कामासक्त होनेसे ही विरह न सह सके।

काममें हानि पहुँचनेसे क्रोध उत्पन्न होता ही है, यथा—'**संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।**' (गीता)। अतः 'रोष' हुआ। (वै०)

(ग) *'रनु रावनु मारा'* इति। अर्थात् सम्मुख बराबर युद्ध हुआ, आप भी मारे और बाँधे गये, मेघनाद एक तुच्छ निशाचरने इनको नागपाशसे बाँधा तब इनका ईश्वर होना कैसे सम्भव है? यथा—*'मोहि भएउ अति मोह प्रभुबंधन रन महुँ निरखि। चिदानंदसंदोह राम बिकल कारन कवन॥'* (उ० ६८)। *'भवबंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम। खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥'* (उ० ५८) तथा *'भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहै ऐसि लराई॥'* (लं० ६५)। पुनः भाव कि ब्रह्म तो लवनिमेषमें जगत्का प्रलय कर सकता है। जिसकी इच्छामात्रसे, भृकुटिविलासमात्रसे संसारका प्रलय तथा कालकी भी मृत्यु हो जाती है; यथा—*'उमा कालु मरु जाकी ईछा।'* (लं० १०१)।*'उतपति पालन प्रलय समीहा।'* (लं० १५)। भला वह ब्रह्म इतना श्रम क्यों उठावेगा? वह तो घर बैठे इच्छामात्रसे रावणको मार डालता।

टिप्पणी—३*'तिन्ह कर चरित बिदित संसारा।'* इति। भाव कि ब्रह्ममें अज्ञान होना न किसीने सुना, न देखा और इनका अज्ञान तो संसारभरमें विख्यात है। पुनः भाव कि किसी गरीबके पुत्र होते तो इनका चरित्र चाहे कोई न भी जानता पर ये तो चक्रवर्तीकुमार हुए इससे सभी इनके (काम-क्रोध-सम्बन्धी) चरित जानते हैं। सम्राट्-पुत्र होनेसे संसारभर जानता है।

टिप्पणी—४ ☞प्रथम जो ऊपर कहा था कि *'राम नाम कर अमित प्रभावा।'* उसका तात्पर्य यहाँ स्पष्ट किया कि वह (शिवजीके उपास्य) राम ये ही हैं तो इनमें तो कुछ भी प्रभाव नहीं दीखता। गरुड़जीने भी ऐसा ही कहा है, यथा—*'सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखउँ सो प्रभाउ कछु नाहीं॥'* (उ० ५८)।

नोट—श्रीराजबहादुर लमगोड़ाजी लिखते हैं कि साहित्यके संसारमें तुलसीदासजीने एक अनोखा काम यही किया है कि महाकाव्यकला और नाटकीयकलाका एकीकरण कर दिया है जो मिल्टन और स्पेन्सर (Milton & Spencer) इत्यादिसे नहीं बन पड़ा बल्कि जो उनको असम्भव-सा प्रतीत होता था। तुलसीदासजीकी युक्ति ही यह है कि श्रीरामचन्द्रजी आदिके मानवीजीवनको नाटकीय रंगमञ्चपर दर्शावें, पर स्वयं उपस्थित होकर टिप्पणी करते चलें। मानो कवि रंगमञ्च और द्रष्टाओंके बीचमें इस प्रकार उपस्थित रहता है कि नाटकीय चरित्र उसे देख न पावें। परन्तु वह द्रष्टाओंको रहस्य बताता चले। बड़े बाहन आधिदैविक तथा आध्यात्मिक रहस्योंके प्रकटीकरणके लिये श्रीशिव-पार्वती, श्रीभुशुण्डि-गरुड़ और श्रीयाज्ञवल्क्य-भरद्वाजके जोड़ ठीक उसी तरह दूरसे दिखायी देते हैं, जैसे आजकल नाटकों या सिनेमा (Cinema) के पर्दोंपर धार्मिक नाटकोंमें प्रकाशके गोलेमें भगवान् कृष्ण द्रौपदी-चीर-हरण इत्यादिके समय दिखायी देते हैं, जिससे दृश्यका आधिदैविक रहस्य खुल जाता है। इसीसे कविने रामावतारकी कथा ले ली है जो (अवतार) मानवीमर्यादाको स्थापित करता है। यहाँके सारे प्रश्न ही ऐसे हैं कि जिनके उत्तरमें आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रहस्योंका एकीकरण हो। बीच-बीचमें आधिदैविक सीन (Scene) बड़ी सुन्दरतासे लाये गये हैं और *'निसिचरहीन करौं महि'* वाली प्रतिज्ञाके उपरान्त, जो ऋषियोंकी हड्डियोंके ढेरके समीप की गयी है, कलाको पूर्णरूपसे महाकाव्यकी ऊँचाईपर पहुँचा दिया है। इस कला-परिवर्तनको न विचारकर ग्राउसजी (Mr. Growse) ने लिखा है कि काव्यकला अयोध्याकाण्डके उपरान्त शिथिल हो गयी है। वास्तवमें वहाँसे कला नाटकीय होनेके स्थानमें अधिकतर महाकाव्यकी है और तुलनामें (Shakespeare) शैक्सपियर इत्यादिके स्थानमें (Milton) मिल्टन और (Homer) होमर इत्यादिको लेना चाहिये।—विशेष व्याख्या 'चाँद' में प्रकाशित लेखमालामें है।

दो०—प्रभु सोइ रामु कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बज्ञ तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥ ४६॥

अर्थ— हे प्रभो! ये वही राम हैं या कोई और दूसरे हैं जिनको त्रिपुरासुरके शत्रु श्रीमहादेवजी जपते हैं। आप सत्यके धाम और सब कुछ जाननेवाले हैं (अत: आप) ज्ञानसे विचारकर कहिये॥ ४६॥

टिप्पणी —१ *'जाहि जपत त्रिपुरारि'* इति। (क) समर्थ सेवकके द्वारा स्वामीका ईश्वरत्व प्रकट होता है; यथा—*'हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमानसे पायक॥'* (लं० ६२)। इसीसे यहाँ *'त्रिपुरारि'* विशेषण दिया। अर्थात् त्रिपुरासुरको मारनेमें जो समर्थ थे ऐसे शिवजी जिनको जपते हैं, वे मनुष्य कैसे हो सकते हैं?

भावार्थान्तर—त्रिपुरारिका भाव कि (ख) शिवजीने त्रिपुर-ऐसे बली शत्रुके मारनेमें जिन प्रभुकी सहायता ली क्या वे यही अवधेशकुमार राम हैं या कोई और हैं? इस भावमें इशारा उस कथाकी ओर है जिसमें कहा जाता है कि शिवजी त्रिपुरासुरको न मार सके तब उन्होंने श्रीरामजीका ध्यान किया। श्रीरामजीने वत्सरूपसे अमृत पी लिया तब शिवजीने उसका संहार किया।—विस्तृत कथा ४८ (६) *'मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी।'* में दी गयी है। (पं०) (ग) जो त्रिपुरके जीतनेवाले हैं और काम-क्रोध जिनके वशवर्त्ती हैं वह शङ्करजी भला कामी-क्रोधीको क्यों भजने लगे? (भावप्रकाश)

टिप्पणी—२ *'कि अपर कोउ'* इति। भाव कि शिवजीके इष्टके चरित्र अज्ञानताके नहीं हो सकते। (अत: उनके इष्ट मेरी समझमें तो कोई और ही हैं।)☞ उत्तरकाण्डमें जो कहा है कि *'निरगुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ। सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥'* (७३) वह यहाँ चरितार्थ है। भरद्वाज-ऐसे मुनियोंको भी सगुणचरित्र देखकर ही मोह हुआ है।

टिप्पणी—३ *'सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह'* इति। अर्थात् आप जो कुछ कहते हैं सत्य ही कहते हैं, वह सत्य ही होता है, सभी उसको प्रमाण मानते हैं। वक्ताको सत्यवादी होना चाहिये, यह गुण आपमें इस विशेषणसे जना दिया। सत्य क्या है यह आप जानते हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। [पंजाबीजी लिखते हैं कि—'सत्य (धाम) अर्थात् जिसमें सत्यका निर्णय है, उत्तरमीमांसा जिसका मूल **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** यह सूत्र है, उसके आप पूर्ण ज्ञाता हैं।']

नोट—१ श्रीभरद्वाजजीने *'रामनाम कर अमित प्रभावा।'* से लेकर *'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि'* तक अपना मोह प्रकट किया है। महानुभावोंका कहना है कि इसमें उन्होंने भगवान्‌के नाम, रूप, लीला और धाम चारोंका प्रश्न किया है, क्योंकि वे चारों सच्चिदानन्दविग्रह माने गये हैं, यथा—**'रामस्य नामरूपं च लीलाधामपरात्परम्। एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥'** (वसिष्ठसंहिता) इसी तरह इन चारोंकी चर्चा श्रीपार्वतीजी और श्रीगरुड़जीके प्रश्नोंमें भी पायी जाती है।

	नाम	रूप	लीला	धाम
श्रीभरद्वाजजी	**रामनाम कर अमित प्रभावा।''''सोइ राम०**	**राम कवन प्रभु पूछौं तोही।''''एक राम अवधेस कुमारा**	**तिन्हकर चरित बिदित संसारा।''''रावनु मारा**	**आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परमपद लहहीं॥**
श्रीपार्वतीजी	**प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी॥ तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु०॥**	**प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥**	**बालचरित पुनि कहहु उदारा।''''राज बैठि कीन्ही बहु लीला।**	**'प्रजासहित रघुबंसमनि किमि गवने निजधाम।'**
श्रीगरुड़जी	**भवबंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।**	**ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा।''सो अवतार सुनेउँ जग माहीं।**	**खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥**	**'भवबंधन तें छूटहिं'** अर्थात् धामको प्राप्त होते हैं।

नोट—२ गरुड़जीको भगवान्‌की रणक्रीड़ामें मोह हुआ था। इसलिये उनके प्रश्नमें लीलाहीकी प्रधानता है। ये संदेह प्रथम इनके मनमें थे। इन्हींको इन्होंने नारदजी, ब्रह्माजी, शङ्करजी और भुशुण्डिजीसे प्रकट किये थे। यथा—*'कहेसि जो संसय निज मनमाहीं।', 'निज संदेह सुनावत भएऊ।', 'पुनि आपन संदेह सुनावा।'* और *'मोहिं भएउ अतिमोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि। चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥'*

नोट—३ नाम, रूप, लीला और धाम ये चारों श्रीरामविग्रह हैं, नित्य हैं—यह बात इससे भी निर्विवाद सिद्ध है कि अविनाशी श्रीशिवजी इन चारोंको अपने हृदयमें बसाये हुए हैं; यथा—*'संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुनरासी॥'* (नाम), *'अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर॥'* (रूप), *'रचि महेस निज मानस राखा।'* (लीला) और *'द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।'* (यह धाम है। क्योंकि दशरथ-अजिर और रामनृप धाममें ही हैं।)

जैसें मिटै मोह* भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥ १॥

अर्थ—हे नाथ! जैसे मेरा भारी मोह और भ्रम दूर हो, वह कथा विस्तारसे कहिये॥ १॥

नोट—१ *'जैसें'* शब्दका अर्थ प्रायः सभी टीकाकारोंने 'जिससे' किया है। पर दासकी समझमें तो इसका अर्थ 'जिस प्रकार' ही सर्वत्र देखनेमें आता है। अतएव मेरी समझमें इस अर्धालीका अर्थ होगा कि—'वह कथा उस प्रकारसे कहिये जिस प्रकारसे मेरा भारी भ्रम और मोह मिटे।' कथा तो वही है पर कहने-कहनेका ढंग है; सम्भवतः यही आशय भरद्वाजजीका है।

टिप्पणी—१ *'जैसें मिटै मोह भ्रम भारी'* इति। ☞*'अस बिचारि प्रगटौं निज मोहू।'* (४६। १)। मोहकथनका उपक्रम है और *'जैसें मिटै मोह भ्रम भारी'* उपसंहार है। इनके बीचमें भरद्वाजजीने अपना मोह प्रकट किया है।

टिप्पणी—२ ☞श्रीभरद्वाजजीने अपनेमें मोह, भ्रम और संशय तीनों कहे हैं; यथा—*'नाथ एक संसउ बड़ मोरें'* ४५ (७) और *'जैसें मिटै मोह भ्रम भारी।'* (यहाँ)। 'इसी प्रकार श्रीपार्वतीजी, श्रीगरुड़जी और श्रीगोस्वामीजी इन तीनोंने अपने-अपनेमें इन तीनोंका होना बताया है—

श्रीपार्वतीजी— **'ससिभूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥ १०८॥'**
'अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥ १०९॥'
'अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवौं कर जोरें॥ १०९॥'
श्रीगरुड़जी— **'जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवनि बिधि तोही॥ उ० ६९॥'**
'सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना।', 'मोहि भयउ अति मोह प्रभुबंधन रन महुँ निरखि॥ उ० ६८॥'
'देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदय मम संसय भारी॥ उ० ६९॥'
श्रीतुलसीदासजी—**'निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भवसरिता तरनी॥ बा० ३१॥'**

(यहाँ श्रीगरुड़जी, श्रीपार्वतीजी और श्रीभरद्वाजजी ये तीनों श्रोता हैं और इन तीनोंने अपनी-अपनी शंकाएँ अपने-अपने वक्ताओंसे कही हैं। वक्ताओंने इनके संशयोंकी निवृत्ति कथा कहकर की है। परंतु यहाँ गोस्वामीजी वक्ता हैं, श्रोता नहीं और न उन्होंने ग्रन्थमें कहीं इसका उल्लेख ही किया है कि उन्हें भ्रम हुआ था और वह भ्रम अमुक वक्ताद्वारा कथा-श्रवणसे निवृत्त हुआ। तथापि यह कहा जा सकता है कि गोस्वामीजीको अपने गुरु महाराजसे इस कथाको बारंबार सुननेसे ही संशय-मोह-भ्रमरहित ज्ञान हुआ। इससे उनको यह भी विश्वास हो गया कि जो भी इस कथाको सुनेगा उसके संदेह, मोह और भ्रम दूर हो जायँगे। इसी आशयसे कथाका माहात्म्य कहते समय उन्होंने प्रारम्भमें *'निज संदेह मोह भ्रम*

* मोर—१६६१, १७०४, कोदवराम। मोह—१७२१, १७६२, छ० ना० प्र०, भा० दा०। रा० प्र० में लिखा है कि दोनों पाठ मिलते हैं। श्रीपार्वतीजीके—'तौं प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥ १०८॥' की जोड़में 'मोर' भी ठीक है, पर हमने पं० रामकुमारजीके भावोंको देखकर 'मोह' पाठ उत्तम समझकर रखा है। पं० रामवल्लभाशरणजी और रामायणी श्रीरामबालकदासजी आदिका भी पाठ 'मोह' है।

हरनी' ऐसा उल्लेख किया है। यहाँका *'निज'* शब्द बड़े महत्त्वका है। *'निज'* का अर्थ है 'अपना', जो गोस्वामीजीमें भी लग सकता है एवं अन्य लोगोंमें भी, जो भी इसे सुनें। 'मेरे अपने' तथा 'उनके अपने।' इसी भावसे 'मम' शब्द न देकर *'निज'* शब्दका प्रयोग किया है। सम्भवत: यही आशय पं० रामकुमारजीका है।

टिप्पणी—३ *'भारी'* इति। प्रथम संशयको बड़ा कह चुके हैं, यथा—*'नाथ एक संसउ बड़ मोरें।'* इसीसे *'मोह* और *'भ्रम'* को भी भारी कहा। वहाँ *'बड़'* और यहाँ *'भारी'* कहनेसे तीनों एक समान बराबर पाये गये, नहीं तो समझा जाता कि मोह और भ्रम सामान्य हैं। पुन: भाव कि परब्रह्ममें संदेह हुआ है इसीसे उस संशय, मोह और भ्रमको भारी कहा; यथा—*'महा मोह उपजा उर तोरें।'* (उ० ५९)। यदि अन्यमें सन्देह होता तो *'भारी'* विशेषण न देते। (श्रीत्रिपाठीजी लिखते हैं कि माघ-मकर-स्नानमें एक मास ब्रह्मनिरूपण आदि मेरे आश्रमपर महात्माओंद्वारा हुआ पर मेरा भ्रम नहीं गया, इससे सिद्ध हुआ कि मेरा भ्रम भारी है।)

टिप्पणी—४ ☞संदेह, मोह और भ्रमके भेद *'निज संदेह मोह भ्रम हरनी'* बा० ३१ (४) में लिखे जा चुके हैं। पाठक वहीं देख लें।

नोट—२ श्रीकान्तशरणजी लिखते हैं कि—'संशय, मोह और भ्रमका अभिप्राय क्रमश: ईश्वर, जीव और माया (=तत्त्वत्रय) के अज्ञानमें है'। उनका मत है कि 'अपने (जीव) स्वरूपमें अज्ञान होना' मोह, 'जिससे अपनेको देह ही मानना और इन्द्रियाभिमानी होकर दसों इन्द्रियोंके भोक्ता होनेमें दशमुखरूप होना है……भ्रमका अर्थ अचित् (माया) तत्त्वमें अनिश्चय होना अर्थात् ब्रह्मके शरीररूप जगत्‌में नानात्व सत्ताका भ्रम होना है।' किसी वस्तुके ज्ञानमें द्विविधा होना संदेह है।'

हमारी समझमें *'निज संदेह मोह भ्रम हरनी'* बा० ३१ में ये अर्थ लागू हो सकें तो हो सकें, क्योंकि वहाँ एक साधारण बात कही गयी है। परंतु प्रस्तुत प्रसंगमें तो 'ब्रह्म राम' वा 'अवधेशकुमार राम' के स्वरूपके सम्बन्धहीमें संशय, मोह और भ्रम कहे गये हैं न कि जीव और मायाके सम्बन्धमें।

नोट—३ *'मोह'* के स्थानपर *'मोर'* पाठ यदि सही मान लें तब तो संशय, मोह और भ्रमकी उलझन ही नहीं रह जाती। हमने *'मोह'* पाठ क्यों पसंद किया यह पाठकोंको उपर्युक्त टिप्पणी—२ से समझमें आ गया होगा।

टिप्पणी—५ *'कहहु सो कथा'* इति। भाव कि श्रीरामकथा कहकर ही संशय, मोह और भ्रम दूर कीजिये, अन्य उपायोंसे नहीं। *'सो कथा'*=उन्हीं रामकी वह कथा। अथवा भरद्वाजजी कहते हैं कि *'सो'* (वह) कथा कहिये और याज्ञवल्क्यजीने श्रीरामचरित कहा, इससे निश्चय हुआ कि *'सो कथा'* से श्रीरामकथा ही अभिप्रेत थी। ☞श्रीपार्वतीजीने भी ऐसा ही कहा है। यथा—*'तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥'* (१०८)। …… *'बिधि नाना'* का भाव श्रीभरद्वाजजीके *'जैसें'* और *'बिस्तारी'* शब्दोंमें आ जाता है।

नोट—४ पंजाबीजी लिखते हैं कि पूर्व भरद्वाजजीने उनको 'सत्यधाम' विशेषण देकर पूर्वोत्तरमीमांसाका ज्ञाता जनाया है; यथा—*'सत्यधाम सर्बज्ञ तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि।'* ऐसा समझकर वे यह न कहें कि यज्ञ करो, शम-दम आदि करो, इनके करनेसे तुम्हारा मन निर्मल हो जायगा, भ्रम मिट जायगा। अत: कहते हैं कि कथाहीसे संदेह मिटाइये।

टिप्पणी—६ *'बिस्तारी'* इति? भाव कि संशय, मोह और भ्रम भारी हैं; अतएव विस्तारसे अच्छी तरह बढ़ाकर कहिये जिसमें तीनोंकी निवृत्ति हो जाय। पुन: भाव कि संक्षेपसे कहनेसे समझमें न आवेगा। सूक्ष्म कथा तो बुद्धिमान्, ज्ञानवान् लोग ही समझ सकते हैं और मैं तो मूढ़ हूँ, मूढ़को संक्षेपसे समझमें नहीं आता। ☞स्मरण रहे कि भरद्वाजजीने मूढ़ बनकर प्रश्न किया है, यह बात याज्ञवल्क्यजीने स्वयं कही है; यथा—*'कीन्हिहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा।'* ☞शिवजीने सतीजीसे प्रथम दण्डकारण्यमें रास्ता चलतेमें श्रीरामकथा संक्षेपसे कही थी, इससे उनकी समझमें न आयी थी; इसीसे उन्होंने भ्रमसे सीता-वेष धारण किया था।

ग्रन्थका प्रयोजन

श्रीरामचरितमानसका आविर्भाव क्यों हुआ? उसका क्या उद्देश्य है?—यह बात ग्रन्थकार यहाँ मानसकथाके उपक्रममें बता रहे हैं। भरद्वाजजीके प्रश्नोंसे ही मानसके तात्पर्य (प्रयोजन) का उपक्रम हुआ है। *'नाथ एक संसउ बड़ मोरे।'''''राम कवन प्रभु पूछौं तोहीं।'''''प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।'''''जैसें मिटै मोह भ्रम भारी।', 'कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥'*—से स्पष्ट है कि मानसकी रचना और मानसकथाके प्राकट्यका अभिप्राय श्रीरामतत्त्वका यथार्थ बोध कराना और श्रीरामजीके नाम, रूप, लीला, धाम आदि विषयक संशय, मोह और भ्रमकी निवृत्ति करना है। और इससे तीनों श्रोताओंके मोह, भ्रम और संशय दूर भी हुए।

इन प्रश्नोंके उत्तरमें याज्ञवल्क्यमुनिद्वारा उमा-महेश्वर-संवादकी प्रवृत्ति हुई। वे कहते हैं कि—*'ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥'* (४७। ८) आगे चलकर पार्वतीजीका संशय कहते हैं। वे पूछती हैं—*'प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥''''' तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥ राम सो अवध नृपतिसुत सोई॥ की अज अगुन अलखगति कोई॥'* (१०८) इत्यादि। इन प्रश्नोंसे भी यही सिद्ध होता है कि श्रीशंकररचित रामचरितमानसका जगत्‌में प्राकट्य श्रीरामविषयक संशय-मोह-भ्रमादिके निवारणार्थ हुआ। इसी प्रकार श्रीगरुड़-भुशुण्डि-संवादका उद्देश्य भी श्रीरामविषयक संदेहोंकी निवृत्ति ही है। अतएव जिन लोगोंको श्रीरामजीके नाम, रूप, लीला और धाम आदिके विषयमें भ्रम हो, उनसे दासकी विनीत प्रार्थना है कि वे श्रीरामचरितमानसका अध्ययन किसी गुरुद्वारा एवं मानसविज्ञोंद्वारा कुछ काल उनके साथ रहकर करें। इससे उनका मोह अवश्य दूर हो जायगा। सच्ची जिज्ञासा चाहिये।

यह तो हुआ संवादोंका हेतु। अब श्रीमद्गोस्वामीजीद्वारा यह मानसकथा क्यों प्रकट की गयी? इसका हेतु सुनिये।

उनके समकालीन श्रीनाभास्वामीजी लिखते हैं कि—*'कलि कुटिल जीव निस्तारहित बाल्मीकि तुलसी भएउ।'* और गोस्वामीजीने स्वयं भी इस ग्रन्थके लिखनेका तात्पर्य बताया है, वह उन्हींके वचनोंमें सुनिये—**'स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।'**

उनके—*'जे एहि कथहिं सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता। होइहहिं रामचरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥ सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ। तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥'* (१५)। इन वाक्योंमें ग्रन्थका प्रयोजन भी है और आशीर्वाद भी। और फिर दोहा ३० के आगे *'निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भवसरिता तरनी॥'* से लेकर *'रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु।'''''*(३२)। तक उन्होंने श्रीरामचरितमानस-कथाका माहात्म्यविशेष तथा ग्रन्थका प्रयोजन वा उद्देश्य विस्तारसे कहा है।

☞कथासे मोहादिकी निवृत्ति होकर श्रीरामजीके चरणोंमें अनुराग होना आज-दिन भी प्रत्यक्ष देखा जा रहा है।

उपक्रममें तो मानसकथाके प्रकट होनेका तात्पर्य लिखा गया, अब उपसंहारमें देखिये। ग्रन्थकारका उपसंहार *'एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥'* (उ० १३०। ५)। से प्रारम्भ होता है। अन्तके उसके शब्दोंका उल्लेख हम यहाँ करते हैं—'''''''**स्वान्तस्तमःशान्तये। भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥ पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदम्। मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्। श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये। ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥'** तथा—*'रघुबंसभूषनचरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥ सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै। दारुन अबिद्या पंचजनित बिकार श्रीरघुबर हरै॥'*

अतएव मुख्य तात्पर्य तुलसीदासजीद्वारा प्रादुर्भूत श्रीरामचरितमानसका यही है कि हम-सरीखे कुटिल जीवोंका सहज ही उद्धार हो जाय।

ध्वनित-प्रयोजन

कवि स्वभावत: अपने कालका Historian इतिहासपरिचयदाता भी होता है। उसने जो भरद्वाज-याज्ञवल्क्य, उमा-महेश्वर और गरुड़-भुशुण्डि—तीन प्रसङ्ग वा कर्म, ज्ञान और उपासना तीन घाट रचे हैं उनका प्रारम्भ, उनका उपक्रम—*'रामु कवन'''''*, *'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।'* *'राम सो अवध नृपतिसुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥'* इत्यादि—स्पष्ट बता रहा है कि उसके समयमें श्रीनानकजी और श्रीकबीरजीका तथा अद्वैतवादियोंका निर्गुण-सगुणवाद बहुत जोर पकड़ता जा रहा था, अर्थात् दशरथनन्दन राम और हैं, योगिजन जिनमें रमण करते हैं वे राम और हैं, सगुण राम और हैं और अज, अगुण, अलखगति राम और हैं इत्यादि। इस भ्रमको मिटानेके लिये, जो निर्गुण हैं वही सगुण हैं, श्रीराम ही निर्गुण और सगुण दोनों हैं, इत्यादिका निश्चय करानेके लिये ही इस ग्रन्थका निर्माण हुआ। इसका निर्णय महर्षि याज्ञवल्क्य, भगवान् शंकर और श्रीभुशुण्डिजीद्वारा कराया गया।

जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥ २॥
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥ ३॥
चाहहु सुनै* राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥ ४॥

अर्थ—श्रीयाज्ञवल्क्यजी मुस्कराकर बोले—'तुमको श्रीरघुनाथजीकी प्रभुता विदित है॥ २॥ तुम मन, कर्म और वचनसे श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो। मैं तुम्हारी चतुरता (होशियारी) समझ गया (कि इस बहाने तुम) श्रीरामजीके गूढ़ गुणों, गुप्त रहस्योंको सुनना चाहते हो। इसीसे ऐसे प्रश्न किये हैं मानो अत्यन्त मूर्ख हो। ३,४।'

टिप्पणी—१ *'जागबलिक बोले मुसुकाई।'''''* इति। (क) *'मुसुकाई'*। मुसकुरानेका कारण 'चतुराई' है; यथा *'देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिये संग बिहँसे दोउ भाई॥'* (अ० १२)। यही बात वे आगे कहते भी हैं; यथा—*'चतुराई तुम्हारि मैं जानी।'* क्या *'चतुराई'* जानी, सो आगे कहते हैं कि *'कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा।'* अर्थात् अत्यन्त मूढ़ बनकर प्रश्न किया है जिसमें याज्ञवल्क्यजी कुछ कहें, यद्यपि स्वयं उसके ज्ञाता हैं। (ख) ☞यहाँ ग्रन्थकार जनाते हैं कि मूढ़ बनकर प्रश्न करना चतुरता है और चतुर बनकर प्रश्न करना मूढ़ता है। (ग) *'तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई।'* इति। भरद्वाजजीने जो कहा था कि हमको भारी मोह है, उसपर याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि तुम्हें मोह नहीं है (क्योंकि) तुम रघुपतिप्रभुता जानते हो। प्रभुता जाननेसे मोह नहीं रह जाता; यथा—*'नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना॥ पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥'* (उ० ९३)। *'रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी।'* यह जो आगे कहा है उससे भी मोहका निराकरण किया है। क्योंकि मोहके रहते हुए, मोहके गये बिना, श्रीरामजीमें अनुराग नहीं होता, यथा—*'मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।'* (उ० ६१)। और तुम तो मन-कर्म-वचनसे रघुनाथजीके भक्त हो तब तुममें मोह कहाँ सम्भव है?

(घ) *'रघुपति प्रभुताई'* इति। *'रघुपति'* अर्थात् अवधेशकुमार राम जिनके विषयमें तुम संदेह प्रकट कर रहे हो, उनकी प्रभुता तुमको मालूम है कि '**रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।**' (रा० ता० उ० ४)। [पुन: विदित होनेका प्रमाण यह है कि तुम वाल्मीकिजीके शिष्य हो। रामायणमें दाशरथि रामका प्रभुत्व वर्णित है ही।]

वि० त्रि०—जो रोगी रोगका निदान भी जानता हो तथा उसकी अचूक औषध भी जानता हो, उसे वैद्यकी क्या आवश्यकता है? और उसे रोगी भी कैसे कहें? भरद्वाजजीने अपने कथनको स्वयं मोह-

* सुनें—१६६१। सुनै—औरोंमें।

मूलक और भ्रान्त बतलाया और उसके मिटनेका उपाय विस्तारयुक्त रामकथा भी बतला दी। इसपर याज्ञवल्क्यजी हँस पड़े।

टिप्पणी—२ *'रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी।'* इति। (क) यहाँ *'रामभगत'* और फिर आगे *'राम गुन गूढ़ा'* कहकर जनाया कि तुम जानते हो कि रघुपति 'राम' और श्रुतिप्रतिपादित 'राम' एक ही हैं। (ख) ☞भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवादमें ऊपरसे बराबर दिखाते आ रहे हैं कि भरद्वाजजी, पार्वतीजी और गरुड़जी तीनोंके संदेह, मोह और भ्रम तथा प्रश्न एक-से ही हैं। तीनों संवादोंके मिलानसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तीनों वक्ताओंका व्यवहार-बर्ताव अपने-अपने श्रोताओंके साथ एक-सा है। तीनोंने अपने जिज्ञासु श्रोताकी पहले बड़ी 'खातिरी' (प्रशंसा, आदर-सत्कार) की है। इससे सूचित किया है कि विद्वानों-शिष्टपुरुषोंकी जिज्ञासुकी 'खातिरी' करनेकी रीति है, प्रथम 'खातिरी' करते हैं जिसमें जिज्ञासु घबड़ा न जाय, फिर पीछे और तरहसे उसके प्रश्नोंका अनुचित होना भी कह डाला है। यथा—

श्रीशिवजी—*'तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगतहित लागी॥ राम कृपा तें पारबति सपनेहु तव मन माहिं। सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥'* (११२)

श्रीभुशुण्डिजी—*'सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपा पात्र रघुनायक केरे॥ तुम्हहिं न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया॥'* (७।७०)

तथा यहाँ (श्रीयाज्ञवल्क्यजी)—*'तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई। रामभगत······'* इत्यादि।

नोट—१ बैजनाथजी लिखते हैं कि—'श्रीरामरूपमें मन लगाये रखते हैं, हाथोंसे श्रीरामपरिचर्या (कैंकर्य) करते हैं और वाणीसे नाम-स्मरण, यश-कीर्तन इत्यादि करते हैं, अतः मन-कर्म-वाणीसे रामभक्त होना कहा।' इसी प्रसंगसे 'मन, कर्म, वचन' से रामभक्त होना भी सिद्ध हो सकता है। इस तरह कि—*'चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा'* यह मनकी भक्ति है, *'रामनाम कर अमित प्रभावा'* से *'सिव उपदेसु करत करि दाया'* तक वाणीकी भक्ति है और मूढ़ बनकर *'चतुराई'* से प्रश्न किया जिसमें वे कुछ कहें यह कर्म है।

टिप्पणी—३ *'चतुराई तुम्हारि मैं जानी'* इति। (क) क्या चतुराई जानी? यह ऊपर टिप्पणी—१ में लिखा जा चुका है। चतुराई कैसे जानी? इस तरह जान ली कि कोई मूढ़ इस प्रकार प्रश्न नहीं कर सकता; जैसे इन्होंने उठाया है कि प्रथम *'रामनाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥ सिव उपदेसु करत करि दाया।'* कहकर विषय कहा कि शिवजी महामहिमावाले रामनामके जापक, उपासक और उपदेशक हैं, फिर पूर्वपक्ष *'राम कवन'* इस प्रश्नसे उठाया। जिन रामको जानते हैं उनकी चर्चा कर संदेह किया और उसपर सिद्धान्त जाननेकी जिज्ञासा की।

नोट—२ इस ग्रन्थमें *'चतुर'* और *'चतुराई'* शब्दोंका प्रयोग जहाँ-तहाँ रामभजन, सत्संग और श्रीराम-भक्तिके सम्बन्धमें ही प्रायः किया गया है। यथा—*'रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहिं अति भाई॥'* (उ० ८५)। *'परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर।'* (आ० ६)। इसीसे यहाँ प्रथम *'रामभगत तुम्ह'* कहकर तब *'चतुराई'* और तब *'चाहहु सुनै······'* कहा। भाव यह कि 'तुम रामभक्त हो इसलिये रामचर्चा-सत्संग करना चाहते हो। तुमने प्रश्न किया है जिसमें रामचर्चा-सत्संग हो। यही चतुरता है।'—(दीनजी)

नोट—३ श्रीराजबहादुर लमगोड़ाजीने बहुत ठीक लिखा है कि यहाँ (*'जागबलिक बोले मुसुकाई। ······चतुराई तुम्हारि मैं जानी।'* के) *'मुसुकाई'* में हास्यकलाका बड़ा सुन्दर प्रयोग है। हम जब अपने मित्रकी 'चतुराई' पकड़ लेते हैं, जिसके द्वारा वह हमें भ्रममें डालना चाहता है, तो हमें हँसी आ जाती है। तुलसीदासजीकी हास्यकलामें बहुधा हास्यपात्रके प्रति प्रेम बना रहता है। ऐसी कलाको कार्लाइल (Carlyle) बहुत ही आदरणीय बताते हैं।

नोट—४ *'चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा।'* इति। (क) लाला भगवानदीनजी कहते हैं कि गूढ़ गुण वे हैं जो श्रीरघुनाथजीने अपने श्रीमुखसे वर्णन किये हैं; क्योंकि गुप्त दूसरा जान ही नहीं सकता तब कहेगा कैसे

जबतक उन्हींसे न सुना हो। गूढ़ गुण, यथा—'*कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू॥ सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥*' (सुं० ४४), '*सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥ जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥*' इत्यादि। (सुं० ४८), '*सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥ करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥*' (अ० ४३) तथा '*अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥ निज सिद्धान्त सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥*' (उ० ८६) (१) से '*प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ।*' (८८)। तक इत्यादि। (ख) पाँड़ेजीके मतानुसार 'शंकररचित मानस' ही 'गूढ़ गुण' है। श्रीरामचरितमानसको गुप्त और सुहावा कहा भी है, यथा—'*रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥*' (उ० ११३)। बैजनाथजीका मत है कि वेद-पुराणमें गुप्त होनेसे '*गूढ़*' कहा। (ग) प्रथम कहा था कि '*तुम्हहिं बिदित रघुपति प्रभुताई*' (अर्थात् तुम श्रीरामजीका प्रभुत्व, जो उनके अवतारवाले लीलाचरितमें गुप्तरूपसे भरा हुआ है और साधारण लोगोंको नहीं देख पड़ता, जानते हो, उसके बताने वा पूछनेकी आवश्यकता नहीं है) और यहाँ कहते हैं कि '*चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा।*'—इस तरह जनाया कि '*रघुपति प्रभुता*' और '*राम गुन गूढ़*' दोनों बातें एक ही हैं। *रघुपति प्रभुताई='राम गुन गूढ़'।* (पं० रा० कु०)

(घ) '*गूढ़*' का अर्थ है गुप्त, कठिन, जो शीघ्र समझमें न आ सके; यथा—'*उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्मरति॥*' (अ० मं०)। यहाँ चरितकी गूढ़ता यह है कि उसीसे दो विरोधी फल प्राप्त होते हैं। एक ही माधुर्य-प्रसंगसे एकको तो संसारसे वैराग्य हो जाता है और दूसरेको मोह प्राप्त होता है। श्रीसतीजी और गरुड़जीको भी मोह हो गया तब अस्मदादिका कहना ही क्या?

टिप्पणी—४ '*कीन्हिहु प्रस्न मनहु अति मूढ़ा।*' इति। यहाँ '*मनहु*' कहकर जना दिया कि हम जानते हैं कि 'तुम्हें मोह नहीं है। तुम पण्डित हो, मूढ़ नहीं हो। तुमने मूढ़ बनकर प्रश्न किया है। मोह मूढ़को होता है इसीसे मूढ़ बनकर तुम अपनेमें मोहका होना कह रहे हो।' तुम्हें मोह नहीं है और न तुम मूढ़ ही हो, इसके कारण टिप्पणी—१ (ग) में कह आये हैं।

वि० त्रि०—भगवान्‌ने गीतामें कहा है, कि '**अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्**'; मुझ मनुष्य-शरीर धारण करनेवालेकी मूढ़ लोग अवज्ञा करते हैं। और भरद्वाजजीने अत्यन्त अवज्ञा करके पूछा है, इसलिये याज्ञवल्क्यजीने '*मनहु अति मूढ़ा*' कहा।

नोट—५ याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि 'तुम्हें मोह नहीं है। तुम रामगुण सुनना चाहते हो। इसीसे मूढ़ बनकर तुमने प्रश्न किया है। ऐसा ही अन्य वक्ताओंने भी अपने-अपने श्रोताओंसे कहा है, जैसा टिप्पणी—२ (ख) में दिखा आये हैं।—इसका एक आशय तो ऊपर लिखा ही गया कि पहलेहीसे फटकार सुनकर वह घबड़ा न जाय, दूसरा भाव यह कहा जाता है कि तुम जो '*संदेह मोह भ्रम*' अपनेमें बतलाते हो वह अविद्याकृत नहीं है, किन्तु विद्याकृत है; इसीसे उसकी गणना मोह आदिमें नहीं है। जो '*मोह*' अविद्याकृत होता है वही 'मोह' कहलाता है। विद्याकृत मोह मोह नहीं है, क्योंकि यह तो प्रभुकी प्रेरणासे होता है, इससे भक्तिकी वृद्धि होती है। यथा—'*हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापहि तेहि बिद्या॥ ताते नास न होइ दास कर। भेदभगति बाढ़इ बिहंगबर॥*' (उ० ७९)।

☞ तीसरी बात यहाँ जो उपदेश की गयी है वह यह है कि यदि कदाचित् कभी कोई शंका हृदयमें उत्पन्न हो और उसके निवारण करनेवाले कोई विशेष विज्ञ मिलें तो मूढ़ बनकर ही प्रश्न करना चाहिये तभी वक्ता गूढ़ रहस्यका प्रकाश करेंगे। उसे भली प्रकार समझानेका प्रयत्न करेंगे; नहीं तो गोप्य वस्तु हर एकको तुरत नहीं पकड़ा दी जाती। यथा—'*गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥ अति आरति पूछौं सुरराया।*' (बा० ११०) प्रश्नके साथ अपना भी जानना यदि प्रकट किया गया तो उत्तर देनेवालेके मनमें यह अवश्य खयाल उत्पन्न होगा कि ये हमारी परीक्षा ले रहे हैं। ऐसी हालतमें या तो वह बात टाल देगा अथवा यदि कुछ कहेगा भी तो बहुत सूक्ष्म।

नोट—६ अलङ्कार—जहाँ किसी वस्तुके अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाता है, वहाँ 'वस्तूत्प्रेक्षा' होती है। जब उत्प्रेक्षाका विषय पहले कहा जाय और तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय तब 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षालङ्कार' कहा जाता है। (अ० मं०) यहाँ उत्प्रेक्षाका विषय, *'राम नाम कर अमित प्रभावा।'* से *'जैसें मिटै मोह भ्रम भारी।'''''''* तक तो प्रथम कहा गया और उसपर उत्प्रेक्षा यहाँ हुई *'कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा।'* अतः यहाँ उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा है।

तात सुनहु सादर मन लाई। कहहुँ* राम कै कथा सुहाई॥५॥

अर्थ—हे तात! मैं श्रीरामजीकी सुन्दर कथा कहता हूँ। तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो॥५॥

नोट—१ *'तात'* सम्बोधन है। यह शब्द यहाँ दुलार, प्यार और अत्यन्त घनिष्ठ प्रेमका द्योतक है। इसका प्रयोग पुत्र, भाई, पिता, गुरुजन, सखा इत्यादि छोटे, बड़े और बराबरवाले सभीके सम्बन्धमें हुआ है; यथा—*'तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपा सँभारी॥'* (अ० ३०५) में पहला *'तात'* भाई भरतके लिये और दूसरा पिता दशरथके लिये आया है; *'सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। राम चराचर नायक अहहीं॥'* (अ० ७७) में पुत्र श्रीरामके लिये आया; *'माँगहु बर प्रसन्न मैं ताता।'* (बा० १७७) में ब्रह्माजीने अपने उपासक रावण आदिके लिये प्रयुक्त किया और *'तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ', 'तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा।'* (अ० ९५) में श्रीरामजीने सुमन्त्रजीके लिये तथा *'तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥'* (अ० ९५) में सुमन्त्रने श्रीरामजीके लिये प्रयुक्त किया है। परन्तु *'तात'* शब्द संस्कृत भाषाका है। उसका अर्थ है—'पिता', यथा—'**तातस्तु जनकः पिता**' (**इत्यमरकोशे**) और गुरुजनोंको पितृतुल्य समझकर उनके वास्ते भी इसका प्रयोग हुआ है। यथा—*'छमब तात लखि बाम बिधाता।'* (२।२९३) (यहाँ भरतजीने जनकमहाराजके लिये इसका प्रयोग किया है); *'तासों तात बयरु नहिं कीजै।'* (३।२५) एवं *'अकसर आयहु तात।'* (३।२४) (मारीचने रावणको *'तात'* का सम्बोधन किया); *'तात चरन गहि माँगउँ''''''।'* (५।४०) (विभीषणजीने रावणके लिये *'तात'* का प्रयोग किया,) इत्यादि। इसका प्रयोग गुरुजनोंके सम्बन्धमें दुलार वा प्यारके सम्बन्धसे कहना उचित न होगा। छोटे या बराबरवालोंके सम्बन्धमें जब इसका प्रयोग होता है तब प्रायः दुलार-प्यारके सम्बन्धसे ही होता है। इसके उदाहरण ऊपर आ गये हैं।

टिप्पणी—१ *'तात सुनहु सादर मन लाई।'''''''* इति। (क) ऊपर जो कहा था कि *'चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा'* उसके सम्बन्धसे यहाँ *'तात सुनहु सादर मन लाई'* यह कहा। क्योंकि गूढ़ विषयोंके समझनेकी यही रीति है और *'कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी'* के सम्बन्धसे *'कहहुँ राम कै कथा सुहाई'*—यह कहा।

(ख) *'सादर मन लाई'* अर्थात् मन, बुद्धि और चित्तको एकाग्र करके सुनो; क्योंकि यह गूढ़ रहस्य है। चित्त जरा हटा कि प्रसंग समझमें न आयेगा, प्रेमसे मनको एकाग्र करके सुनो जिसमें एक भी शब्द व्यर्थ न जाय।

नोट—२ ☞यहाँ गूढ़ विषय समझनेकी रीति बतायी है। इसके लिये दो बातें आवश्यक हैं—एक तो 'सादर सुनना', दूसरे 'मन लगाकर सुनना'। इनमेंसे एककी भी कमी होगी तो विषय समझमें न आवेगा।—(दीनजी) बैजनाथजीका मत है कि बाह्येन्द्रियोंका व्यापार-कथाके अनुकूल सुनना 'सादर' सुनना है।

टिप्पणी—२ *'कहहुँ राम कै कथा सुहाई।'* इति। भाव कि तुमने जो कहा कि वह कथा कहो जिससे मोह मिटै, सो वह कथा तो श्रीरामकथा ही है; इसीसे मोह मिटेगा। यह कहकर याज्ञवल्क्यजी कथाका माहात्म्य कहने लगे अथवा भरद्वाजजीके वचन हैं कि *'जैसें मिटै मोह भ्रम भारी।'* अर्थात् जिस प्रकार मिटै; अतः यहाँ प्रथम प्रकार दिखाते हैं। वह यह कि प्रथम कथाका माहात्म्य कहा।

नोट—३ *'सुहाई'* का भाव कि ऐसी सुन्दर है कि मन लगाकर सुननेयोग्य है।

* कहहुँ—१६६१। प्रायः अन्यत्र कहीं पोथीमें अर्धचन्द्रविन्दु देखनेमें नहीं आता। पर यहाँ है। पाठान्तर—'कहउँ'।

महामोह महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥ ६॥
रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥ ७॥

अर्थ—महामोहरूपी बड़े भारी महिषासुरके लिये श्रीरामकथा बड़ी भयंकर कालिकादेवी है॥ ६॥ श्रीरामकथा चन्द्रकिरणोंके समान है जिसे संतरूपी चकोर पिया करते हैं॥ ७॥

टिप्पणी—१ '*महामोह महिषेसु बिसाला।*......' इति। (क) ☞ इसमें और आगेकी अर्धालीमें श्रीरामकथाका माहात्म्य कहते हैं। भरद्वाजजीके '*जैसें मिटै मोह भ्रम भारी। कहहु सो कथा*.....।' की जोड़में उसीके उत्तरमें यहाँ '*महामोह महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥*' कहा। सांसारिक पदार्थमें भ्रम होना अर्थात् असत्यमें सत्यका भ्रम, स्वस्वरूपकी विस्मृति इत्यादि मोह है और ईश्वरके स्वरूपमें भ्रम होना महामोह है। यथा—'*महामोह उपजा उर तोरें।*' (उ० ५९) (बैजनाथजीका मत है कि गुरुशास्त्रोपदेशमें जो आवरण डाले वह मोह है)।

(ख) महामोहको 'विशाल महिषासुर' कहनेका भाव कि महिषासुर सामान्य था। उसे कालिकादेवीने मार डाला; परंतु 'महामोह' रूपी महिषासुर साधारण नहीं है जो मार लिया जावे। इसने तो भगवती सती (जो दुर्गा और कालिकारूप धारण करती हैं) को ही जीत लिया। यथा '*भएउ मोह सिव कहा न कीन्हा*'। (बा० ९८) [मोहने उन्हें ऐसा दबाया कि तन त्याग करना पड़ा।—यही मोहका उनको ग्रास कर लेना है, लील लेना है। इतना ही नहीं किन्तु देखिये तो कि पुन: जन्म लेनेपर भी वह (महामोह) इनके दूसरे तनमें भी व्याप्त रहा। यथा—'*अजहूँ कछु संसउ मन मोरें।*...... *तब कर अस बिमोह अब नाहीं॥*' (बा० १०९)—यह स्वयं एकबाल है। तथा—'*एक बात नहिं मोहि सुहानी। जदपि मोहबस कहेहु भवानी॥*' (११४) उस महिषासुरने तो एक ही स्थूल शरीरमें दु:ख दिया और महामोह महिषासुरने दूसरे जन्मतककी खबर ली। जीवोंके संसारचक्रमें रमते रहनेका कारण महामोह ही तो है।] अत: महामोहको विशाल महिषासुरकी उपमा दी।

नोट—१ महिषेसु=महिषासुर। (क) मार्कण्डेयपुराणमें इसकी कथा विस्तारसे है। यह रंभ नामक दैत्यका पुत्र था। इसकी आकृति भैंसेकी-सी थी। इसने हेमगिरिपर कठिन तप करके ब्रह्माजीसे यह वर पाया था कि स्त्री छोड़ किसी पुरुषसे उसका वध न हो सके। वर पाकर इसने इन्द्रादि सभी देवताओंको जीत लिया और सबको सताने लगा था। कालिकादेवीने इसका वध किया। इसको अपने बलका बड़ा गर्व था, यह बात सप्तशतीके दूसरे चरितसे स्पष्ट है—'*महिषमद भंग करि अंग तोरे*' (वि० १५)

(ख) स्कन्दपुराणनागरखण्डमें लिखा है कि चित्रसम नामका एक दैत्य था। यह बड़ा सुन्दर तथा तेज और वीर्यसे सम्पन्न था। इसे भैंसेकी सवारी रुचिकर थी। एक बार यह भैंसेपर चढ़कर गङ्गातटपर जलपक्षियोंका शिकार करने लगा। महर्षि दुर्वासा वहीं समाधि लगाये बैठे थे। चित्रसम अपने व्यसनमें भैंसा बढ़ाये चला गया जिससे मुनि कुचल गये। नेत्र खोलकर उन्होंने उस दानवको देख कुपित हो शाप दिया कि तू भैंसा हो जा और आजीवन भैंसा बना रह। यह हिरण्याक्षका पुत्र था। शुक्राचार्यजीके कहनेसे उसने शिवजीकी आराधना की जिससे शिवजीने वरदान दिया कि (दुर्वासाशाप व्यर्थ नहीं हो सकता पर तुम जिस इच्छासे पूर्वरूप चाहते हो उसका उपाय मैं किये देता हूँ) जितने भी देव, मानव तथा आसुर भोग हैं वे सब तुम्हें इसी शरीरमें प्राप्त होंगे। उसने यह भी वर माँग लिया कि स्त्री छोड़ वह सबसे अवध्य रहे। वर पानेपर वह इन्द्रको जीतकर इन्द्र बन बैठा। उसके अत्याचारसे कार्तिकेय आदि देवताओंको बड़ा क्रोध हुआ और उस आवेशमें सबके मुखसे तेज प्रकट हुआ जो मिलकर एक कुमारी कन्याके रूपमें परिणत हो गया। स्कन्द, विष्णु, इन्द्र, शंकर आदिने अपने-अपने भयंकर आयुध उसको दिये। सिंहपर सवार हो विन्ध्याचलपर जाकर ये तपमें संलग्न हुईं। इनका परम सौन्दर्य सुनकर उसने इनको भार्या बननेको कहा। देवीने फटकारा। महिषासुरकी सेना मारी गयी तब वह सींगोंके प्रहारसे देवीपर शिलाखण्ड फेंकने लगा। देवी बड़ी फुर्तीसे उसकी पीठपर चढ़ गयीं और

उसे लातोंसे मार-मारकर लहूलुहान कर दिया। वह आकाशमें उछलने लगा तब देवीकी ज्योतिसे एक सिंहने प्रकट होकर उसके पिछले पैर पकड़ लिये। इन्द्र आदिने प्रकट होकर देवीको तलवार दी कि उसका सिर काट लें। गर्दनके दो टुकड़े होते ही वह ढाल-तलवार लिये हुए तेजस्वी पुरुषके रूपमें प्रकट हुआ। देवीने उसकी चोटी पकड़ ली और उसका नाश करनेके लिये तलवार उठायी। यह देख वह स्तुति करने लगा। देवी तब असमंजसमें पड़ गयीं। देवताओंने वधकी प्रार्थना की। तब देवीने कहा कि मैं न तो इसे मारूँगी और न छोड़ूँगी, सदा इसकी चोटी पकड़कर इसे अपने हाथमें ही लटकाये रखूँगी।

टिप्पणी—२ *'रामकथा कालिका कराला'* इति। श्रीरामकथाको करालकालिका कहनेका भाव यह है कि महिषासुरको तो कालिकाने मारा, पर विशाल महिषासुर (महामोह) उनसे नहीं मर सका। उसके मारनेके लिये करालकालिकाका अवतार होना चाहिये। अतएव महामोहरूपी विशाल महिषासुरके नाशके लिये श्रीरामकथारूपी 'करालकालिका' का अवतार हुआ। श्रीरामकथाने महामोहको जीतकर कालिका (सती) की रक्षा की। अर्थात् कथा-श्रवण करनेसे सतीजीका प्रबल मोह निवृत्त हुआ, यथा—*'ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥'* (बा० १२०)—(बाबा हरीदासजी। शीला)

नोट—२ पंजाबीजी एक भाव यह लिखते हैं कि महिषासुरको मारकर जिनका दुःख कालिकाने दूर किया, उनकी जन्म-मरणसे निवृत्ति नहीं हुई। और रामकथा महामोहका तो नाश ही कर डालती है, साथ-ही-साथ मोहग्रस्त प्राणीको जन्म-मरणसे भी छुड़ा देती है।

नोट—३ यहाँ 'रामकथा' पर 'कालिका' होनेका आरोप किया गया, क्योंकि पहले *'महामोह'* पर *'महिषेश'* होनेका आरोप कर चुके हैं। अतः यहाँ परम्परितरूपक है।

टिप्पणी—३ 'भगवतीको मोह होना असम्भव है। तब उनमें मोह कैसे कहा?'—इस शंकाका समाधान यह है कि मायिक पदार्थमें उनको संदेह होना असम्भव है, परन्तु ईश्वरकी लीलामें संदेह हो जाना असम्भव नहीं है। ब्रह्माको मोह हुआ तब उन्होंने वत्स-हरण किया, शिवजीको मोह हुआ तो वे मोहिनीके पीछे दौड़े, इन्द्रको मोह हुआ तो उन्होंने महावृष्टि की, नारदको मोह हुआ तो उन्होंने ब्याह करनेकी इच्छा की और सनकादिको मोह हुआ तो उन्होंने जय-विजयको शाप दिया इत्यादि। कौन ऐसा है जिसको ईश्वरके अत्यन्त माधुर्य चरितोंमें मोह न हुआ हो? यथा—*'नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतमबादी॥ मोह न अंध कीन्ह केहि केही।'* (उ० ७०)।

—कालिका—

(क) 'देवीभागवतमें देवीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कथा इस प्रकार है—महिषासुरसे परास्त होकर सब देवता ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजी, शिवजी तथा देवताओंके साथ विष्णुके पास गये। विष्णुजीने कहा कि महिषासुरके मारनेका उपाय यह है कि सब देवता अपनी स्त्रियोंसे मिलकर अपना थोड़ा-थोड़ा तेज निकालें। सबके तेजसमूहसे एक स्त्री उत्पन्न होगी जो उस असुरका वध करेगी। महिषासुरको वर था कि वह किसी पुरुषके हाथसे न मरेगा। भगवान् विष्णुके आज्ञानुसार ब्रह्माने अपने मुँहसे रक्त वर्णका, शिवने रौप्य वर्णका, विष्णुने नील वर्णका, इन्द्रने विचित्र वर्णका, इसी प्रकार सब देवताओंने अपना-अपना तेज निकाला। उससे एक तेजस्वी देवी प्रकट हुई, जिसने महिषासुरका संहार किया।' (श० सा०)

(ख) दूसरी कथा यह है कि 'शुम्भ और निशुम्भके अत्याचारोंसे पीड़ित इन्द्रादि देवताओंकी प्रार्थनापर एक मातङ्गी प्रकट हुई, जिसके शरीरसे इस देवीका आविर्भाव हुआ। पहले इनका वर्ण काला था, इसीसे इनका नाम कालिका पड़ा। ये उग्र भयोंसे रक्षा करती हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है—कृष्णवर्णा चतुर्भुजा, दाहिने दोनों हाथोंमेंसे ऊपरके हाथमें कटारी और नीचेके हाथमें खप्पर, बड़ी ऊँची एक जटा, गलेमें मुण्डमाला और सर्प, लाल नेत्र, काले वस्त्र, कटिमें बाघम्बर, बायाँ पैर शवकी छातीपर और दाहिना सिंहकी पीठपर, भयंकर अट्टहास करती हुई।'—(श० सा०)

(ग) बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि 'कराला देवीका नाम है। कराला करारा देवीका दक्षिणमें स्थान है, जहाँके करारे ब्रह्माण्ड उन्हींके नाम और उपासनासे हैं।' इसके अनुसार अर्धालीका अर्थ होगा—'रामकथा इस कलिकालमें महामोहरूपी महिषासुरके नाश करनेको करालादेवी-रूप है।'

(घ) विनयपत्रिकामें इनको षट्भुजा वा अष्टभुजा कहा गया है। यथा—*'बर्म चर्म कर कृपान सूल सेल धनुषबान धरनि दलनि दानवदल रन करालिका।'* (पद १६)

(ङ) पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी काव्यसांख्यस्मृतितीर्थ लिखते हैं कि 'इन्द्रादि देवताओंके अधिकार छिन जानेपर वे सब हिमालयपर जाकर देवीकी स्तुति करने लगे। उस समय भगवती पार्वती आयीं और उनके शरीरसे शिवा प्रकट हुईं। सरस्वतीदेवी पार्वतीके कोख शरीरसे निकली थीं, इसलिये उनका कौशिकी नाम प्रसिद्ध हुआ। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका शरीर काला पड़ गया, इसलिये कालिका कहते हैं।' विशेष 'विनयपीयूष' १५, १६, १७ में देखिये।

टिप्पणी—४ *'रामकथा ससि किरन समाना।'''''* इति। श्रीरामजीकी कथा चन्द्रकिरण है। श्रीरामचन्द्रजी चन्द्रमा हैं। सन्त चकोर हैं। सन्तको चकोरकी उपमा देनेका भाव कि जैसे चकोर चन्द्रमाको छोड़ और किसीकी तरफ नहीं देखता, इसी तरह सन्त ही इस शान्तिदायक कथाके परम अधिकारी हैं, वे रामकथा छोड़ अन्य कथा नहीं देखते। मिलान कीजिये—*'रघुबरकीरति सज्जनहि सीतल खलहि सुताति। ज्यों चकोर चक चक्कवनि तुलसी चाँदिनि राति॥'* (दोहावली) पुनः, भाव कि जैसे चकोर किरणको पान करता है वैसे ही सन्त श्रीरामकथाको श्रवणपुटद्वारा पान करते हैं। यथा—*'नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर॥'* (उ० ५२)

टिप्पणी—५ यहाँ रामकथाके लिये दो दृष्टान्त दिये गये—एक तो *'कालिका कराला'* का, दूसरा शशि-किरणका। दो दृष्टान्त देनेका भाव यह है कि—(क) महामोह आदिके नाशके लिये रामकथा कराल है और सन्तोंको सुख देनेके लिये चन्द्रकिरण-समान शीतल है। पुनः, (ख)—जैसे देवीने प्रथम महिषासुरको मारकर देवताओंको सुखी किया फिर उनको अपने दर्शनका सुख दिया। इसी प्रकार रामकथा महामोहका नाश करके सन्तोंको सुख देती है, फिर अपने स्वरूपका सुख देती है। पुनः, (ग)—जैसे मोहनाशनार्थ कथाको 'कालिका' कहा वैसे ही मोहनाशनार्थ ही उसे शशि-किरण कहा, यथा—*'ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥'* (१। १२०) श्रीरामकथाको शशि-किरण कहकर मोहको शरदातप जनाया। यथा—*'सरदातप निसि ससि अपहरई।'* मिलान कीजिये—*'रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु। सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु॥'* (बा० ३२) पुनः, (घ) इससे कथाकी गूढ़ता दरसायी। वह दो रूप धारण किये हैं—एक तो कराल और दूसरा सुन्दर शान्तिदायक। [यह दुष्टोंके लिये कराल है और सज्जनोंके लिये सौम्य है(वि० त्रि०)] जिनको महामोह है, उनके उस मोहका नाशक है और जिनको मोह नहीं है उनको विशेष सुखद है। दो बातें दिखानेके लिये दो दृष्टान्त दिये—(जब प्रभु स्वयं ही कठोर और कोमल दोनों हैं, सम भी हैं और विषम भी, तब उनकी कथा वैसी क्यों न हो? हुआ ही चाहे—*'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।'* (७। १९)*'जद्यपि सम नहिं राग न रोषू।''''''* *तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥'* (२। २१९)]

नोट—४ 'सारांश यह है कि श्रीरामकथा रामभक्तोंके लिये सुखद है और रामभक्तके द्रोहियों (मोह, मद, काम, क्रोधादि) के लिये कालरूप है और रामकथामें अभेद होनेसे *'प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई'* के अनुसार श्रीरामजीकी तरह श्रीरामकथामें भी कालिकाके दृष्टान्तसे संहार-शक्ति और शशि-किरणके दृष्टान्तसे पालनशक्तिका होना वर्णन किया'—(वे० भू०)

नोट—५ *'रामकथा ससि किरन समाना'* में धर्मलुप्तोपमालङ्कार है। *'संत चकोर करहिं जेहि पाना'* में 'सम अभेद रूपक' है। चकोर—दो० ३२ (ख) में देखिये। चकोर कहकर जनाया कि सन्त श्रीरामकथाके अनन्य प्रेमी हैं, उसे छोड़ दूसरी कथा नहीं सुनते।

प० प० प्र०—(क) श्रीरामकथाका माहात्म्य कहनेमें प्रथम महामोहका विनाश कहा, क्योंकि *'बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गए बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥'* इस तरह सन्तसंगमें सन्त-मुखसे श्रीरामकथा-श्रवण सूचित किया है। (ख) *'रामकथा ससि किरन'*······ 'इति। रामकथा सुखदायक है, यथा—*'रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।', 'रघुपति भगति बिना सुख नाहीं'* यह मानसका अकाट्य श्रुतिसिद्धान्त है। शशि-किरणमें अमृत रहता है पर उसका पान केवल चकोर ही कर सकता है। अतः सन्तोंको चकोर कहा। श्रीरामप्रेमभक्ति ही सुधा है—*'प्रेम अमिय मंदर बिरह।'* अतः सूचित किया कि रामकथासे रामभक्तिमें दृढ़ अनुरागका सहज ही लाभ होता है। (ग) *'रामचरित राकेस कर' 'रामकथा ससि किरन'* से रामकथाको चन्द्र-किरण कहा और रामनामको चन्द्रमा कहा है, यथा—*'राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम।'* (३।४२) इससे ध्वनित किया कि नाम और कथामें चन्द्र-चन्द्रिका-सम्बन्ध है, नाम कारण है, कथा कार्य। कार्यमें कारणकी पूर्ण व्याप्ति रहती है; अतः कहा गया कि *'एहि महँ रघुपति नाम उदारा।'*······'

नोट—६ श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कलिमें महामोहने सब साधनोंको परास्त कर दिया; इससे शंकरजीने गोस्वामीजीको आज्ञा दी कि वे वेद-पुराणादि समस्त 'सद्ग्रन्थोंकी शक्ति निकालकर श्रीरामकथा स्त्री कालिकाको प्रकट करो। तब उन्होंने सब सद्ग्रन्थोंका सार निकालकर श्रीरामकथा निर्माण की।' (परंतु इसमें पूर्वापरसे विरोध होता है। *'भाषा बद्ध करबि मैं सोई।'* (३१।२) *'कहौं कथा सोइ सुखद सुहाई।'* (३५।१३) **'यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं······तद्रघुनाथनामनिरतं······भाषाबद्धमिदं······।'** (उ०) देखिये। इसे स्वयं शंकरजीने रचा जो समस्त श्रुतिसिद्धान्तका निचोड़ है।) यहाँ श्रीरामजी चन्द्र हैं, कथा किरण है; अन्य देवादिकी कथाएँ तारागणके प्रकाश हैं। तारागणके प्रकाशसे चकोरका हृदय शीतल नहीं हो सकता। (मा० मा०)

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥ ८॥

अर्थ—पार्वतीजीने इसी प्रकार सन्देह किया था, तब महादेवजीने विस्तारपूर्वक कहा था॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'ऐसेइ'* पद देकर भरद्वाज और पार्वतीजी दोनोंके संशयोंको एकही-सा बताया। ऐसेइ=ऐसे ही=इसी प्रकारके। [*'ऐसेइ'* का दूसरा अर्थ है—'इसी प्रकार।' अर्थात् जिस प्रकार तुमने प्रश्न किया उसी प्रकार उन्होंने भी सन्देह प्रकट किया।] दोनोंके संदेह तथा प्रकारकी समानता नीचे दिये हुए मिलानसे स्पष्ट हो जायगी।

दोनोंके प्रसंगोंका मिलान—

श्रीभरद्वाजजी	श्रीपार्वतीजी
करि पूजा मुनि सुजस बखानी।	१ *'बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी'* से *'जोग ग्यान बैराग्यनिधि प्रनत कलपतरु नाम॥'* (बा० १०७) तक
बोले अति पुनीत मृदु बानी।	२ *बिहँसि उमा बोलीं प्रिय बानी*
नाथ एक संसउ बड़ मोरें	३ *अजहूँ कछु संसउ मन मोरें*
करगत बेदतत्व सब तोरें	४ *बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धान्त निचोरि*
हरहु नाथ करि जनपर छोहू	५ *जानिय सत्य मोहि निज दासी*
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥	६ *सेष सारदा बेद पुराना। करहिं सकल रघुपतिगुन गाना॥*
संतत जपत संभु अबिनासी।	७ *तुम्ह पुनि राम राम दिन राती।*

सिव भगवान ज्ञान गुनरासी॥	*सादर जपहु अनँग-आराती॥*
राम कवन प्रभु पूछौं तोही।	८ *अति आरति पूछौं सुरराया।*
कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही॥	९ *कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ*
एक रामु अवधेस कुमारा।''''	१० *तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु'''' ।*
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।	*राम सो अवध नृपतिसुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥*
नारि बिरह दुख लहेउ अपारा	११ *नारि बिरह मति भोरि*
सत्यधाम सर्बज्ञ तुम्ह	१२ *प्रभु समर्थ सर्बज्ञ सिव सकल कलागुन धाम*
जैसें मिटै मोह भ्रम भारी	१३ *जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू*
कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी	१४ *कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना।*

☞ प्रसंग-मिलानके १०, ११ में दोनोंके संशयका एक-सा होना प्रकट है। शेषमें प्रश्न करनेका प्रकार एक-सा दिखाया गया है।

वि० त्रि०—यह भारतवर्षकी प्राचीन प्रणाली है कि प्रश्नकर्ताके उत्तरमें किसी दूसरे बड़ेके संवादको दिखलाते हुए उत्तर देते हैं, वैसे ही याज्ञवल्क्यजी उमा-महेश्वर-संवाद कहेंगे। साथ ही भरद्वाजजीको उत्साहित करते हैं कि शंकाको सामने लाते हुए लज्जा और भयको चित्तमें स्थान न दो, स्वयं भवानीने ऐसी ही शंका की थी।

नोट—१ भवानी=भवपत्नी=शिवजीकी भार्या। कालिकापुराणमें लिखा है कि परब्रह्मके अंशस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए। ब्रह्मा और विष्णुने तो सृष्टि और स्थितिके लिये अपनी शक्तिको ग्रहण किया पर शिवने शक्तिसे संयोग न किया। वे योगमें मग्न हो गये। ब्रह्मा आदि देवता इस बातके पीछे पड़े कि शिव भी किसी स्त्रीका पाणिग्रहण करें पर उनके योग्य कोई स्त्री मिलती न थी। बहुत सोच-विचारके पीछे ब्रह्माने दक्षसे कहा—'विष्णुमायाके अतिरिक्त और कोई स्त्री ऐसी नहीं है जो शिवको लुभा सके, अत: मैं उसकी स्तुति करता हूँ। तुम भी उसकी स्तुति करो कि वह तुम्हारी कन्याके रूपमें तुम्हारे यहाँ जन्म ले और शिवकी पत्नी हो।' वही विष्णुमाया दक्षकी कन्या 'सती' हुईं जिनने अपने रूप और तपके द्वारा शिवको मोहित और प्रसन्न किया।

पंजाबीजी लिखते हैं कि—'यहाँ 'भवानी' पद इसलिये दिया कि 'भव' संसारको कहते हैं और संसारकी जो रक्षा करे सो 'भवानी' हुई। संसार संशयस्वरूप है, इस सम्बन्धसे भवानीमें भी संशय घटित होता है। 'महादेव' पद इसलिये दिया कि 'देव' प्रकाशको भी कहते हैं। जो प्रकाशरूप हैं, संशयरूपी तमके हरनेको समर्थ है, वही 'महादेव' है।

☞ भवानी शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है। **भवत्यस्मात् (सत्तार्थक भू धातु) भव: शिव:। भवस्य पत्नी भवानी**=सती, पार्वती, भगवान् शंकर भवरूपसे सृष्टिका उत्पादन करते हैं। अकेले नहीं, आदिशक्तिको साथ लेकर, उसकी सहायता प्राप्त कर। जब वह शक्ति सृष्टि-सृजनमें सहायता पहुँचाती है तब उसका नाम 'भवानी' व्यवहृत होता है। यहाँ ***'ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी'*** में भाव यह है कि ***'भव भव बिभव पराभव कारिनि'*** शक्ति जो भवानी उनको श्रीरामचरितमें संदेह हो गया, तब तुमको सन्देह हो गया तो क्या आश्चर्य ?

बैजनाथजी लिखते हैं कि—***'ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी'*** में ***'भवानी'*** सती और पार्वती दोनों रूपोंका बोधक है। 'यहाँ मोहनाश-हेतु कथाकी करालता दिखाते हैं। सतीरूपमें उन्होंने हृदयसे सच्चा संशय किया तब उनको महादु:ख हुआ—इति भयंकरता है। और पार्वतीरूपमें उन्होंने वचनमात्र संशय किया तब महादेवजीने बखानकर कहा जिससे संशयका नाश हुआ और वे सुखी हुईं।'

श्रीभरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद-प्रकरण समाप्त

उमा-महेश्वर-संवाद-प्रकरण

दो०—कहौं सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भएउ समय जेहि हेतु जेहि* सुनु मुनि मिटहि† बिषाद॥ ४७॥

शब्दार्थ—**अनुहारि** (सं० अनुहार)=अनुसार, अनुकूल। यथा—*'कहि नृप बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥'* (बा० २४०), *'सुकबि कुकबि निजमति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥'* (१।२८)। ☞इस विशेषणका लिङ्ग भी 'नाईं' के समान है। अर्थात् यह शब्द संज्ञा पुँल्लिङ्ग और संज्ञा स्त्रीलिङ्ग दोनोंका विशेषण होता है। **संबाद**—श्रोता-वक्ताकी प्रश्नोत्तरके ढंगपर बातचीत, कथोपकथन। बा० ३६ देखिये। **बिषाद**=खेद, दुःख।

अर्थ—अब अपनी बुद्धिके अनुसार वह उमा-शम्भु-संवाद कहता हूँ। जिस समय और जिस कारण वह संवाद हुआ (वह भी) कहता हूँ। हे मुनि! उसे सुनो, उससे तुम्हारा विषाद मिट जायगा॥ ४७॥

नोट—१ यहाँसे उमा-महेश्वर-संवादका प्रकरण चला। *'कहौं सो'* ये वचन याज्ञवल्क्यजीके हैं। *'सो'* का सम्बन्ध ऊपर कहे हुए याज्ञवल्क्यजीके *'ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥'* इन वाक्योंसे है। इस तरह कविने भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवादको उमा-महेश्वर-संवादमें मिला दिया। अब जो कथा शिवजीने कही वही याज्ञवल्क्यका कहना हुआ।

टिप्पणी—१ *'कहौं सो मति अनुहारि अब'''''* इति। ☞जैसे याज्ञवल्क्यजी यहाँ उमा-महेश्वर-संवाद (पार्वतीजीका संशय और महादेवजीका विस्तारसे रामचरित-कथन और संवादका हेतु) कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं, ऐसी ही प्रतिज्ञा ग्रन्थकारने भी आरम्भमें की है—*'कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी॥ सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥'* (बा० ३३) कविकी भी उस प्रतिज्ञाकी पूर्तिका प्रारम्भ यहींसे है। कवि वह सब हेतु (श्रीयाज्ञवल्क्यजीके द्वारा) अब गान करता है। *'कहौं सो'''''* यहाँसे लेकर आगे *'हिय हरषे कामारि''''' कृपानिधान।'* (१२०) तक याज्ञवल्क्यजी और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनोंके वचन हैं। (याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजीसे जो कह रहे हैं, वही श्रीगोस्वामीजी अपने श्रोताओंसे कह रहे हैं। बीच-बीचमें कहीं-कहीं केवल गोस्वामीजीका ही कथन पाया जाता है। यथा—*'चरित सिंधु गिरिजारमन'''''। बरनइ तुलसीदास किमि अति मतिमंद गँवार॥'* (१०३) इत्यादि। *'सो'* अर्थात् जिसकी प्रतिज्ञा पूर्व कर चुके हैं। [उमा-शम्भु-संवाद है, इसीसे यथाबुद्धि कहनेको कहा। (वि० त्रि०)]

टिप्पणी—२ *'मति अनुहारि'* इति। कथा-प्रसंगमें बड़ोंकी यह परम्परा है कि वे निजी नहीं कहते, दूसरेसे सुनी कहते हैं, क्योंकि सम्भव है कि अपने विचार गलत हों। (दीनजी) यथा—*'गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा॥'* (उ० ५२) **'नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।'** (उ० १२३) तथा *'संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहिं सुनाएउँ सोइ।'* (उ० ९२)

टिप्पणी—३ *'उमा संभु संबाद'* इति। याज्ञवल्क्यजीका उमा-शम्भु-संवाद कहनेमें भाव यह है कि भरद्वाजजीका विश्वास श्रीमहादेवजीके इष्टपर है जैसा उनके प्रभु *'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।'* इन वाक्योंसे प्रकट है। इसीसे वे (याज्ञवल्क्यजी) शिवजीका ही कहा हुआ कहकर उनका बोध कराते हैं। जो बात भरद्वाजजीने कही है—*'आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परमपद लहहीं॥ सोपि राममहिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥'* (४६। ४-५) वही बात शिवजीने अपने मुखसे कही है, यथा—*'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करौं बिसोकी॥ सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी।*

* पाठान्तर—अब—भा० दा०, रा० गु० द्वि०। † मिटिहिं—रा० प्र०, भा० दा०।

रघुबर सब उर अंतरजामी॥' (बा० ११९), *'सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा।'* (बा० ५१।८) उमा-शम्भु-संवाद तथा शिवजीके वाक्य सुनकर भरद्वाजजीको विश्वास एवं अधिक आनन्द प्राप्त होगा—और ऐसा हुआ भी, यथा—*'भरद्वाज मुनि अति सुख पावा॥ बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥ प्रेम बिबस मुख आव न बानी।'* (बा० १०४)

☞ जिसका जिसमें विश्वास हो उसीकी बात कहकर जिज्ञासुका सन्देह दूर करना वक्ताकी चतुरताका द्योतक है।

टिप्पणी—४ *'भएउ समय जेहि हेतु जेहि'* इति। ☞ यहाँ संवादका समय, संवादका कारण और संवाद तीनोंके कहनेकी प्रतिज्ञा है। *'एक बार त्रेता जुग माहीं'*—यह समय है और सारा प्रसङ्ग-का-प्रसङ्ग संवाद और संवादका हेतु है। [उमा-महेश्वर अर्थात् 'उमा-शम्भु-संवाद' का प्रधान हेतु तो श्रीपार्वतीजीके प्रश्न हैं, जिनकी चर्चा *'कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥'* (१।१०७।६) से प्रारम्भ होकर *'तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।'*......'(१११।५) तक है। और इन प्रश्नोंका कारण श्रीरामस्वरूपमें मोह है जो श्रीपार्वतीजीको सती-तनमें हुआ था और जिसकी चर्चा उन्होंने प्रश्नोंके साथ की भी है। इस तरह सतीमोह-प्रसङ्ग अर्थात् ४८ (१) से १११ (५) तक संवादका हेतु है! उसके पश्चात् संवाद कहेंगे।

नोट—२ इस प्रसङ्गमें भरद्वाजजीने तीन बार कहनेको कहा, यथा—*'कहिय बुझाइ दयानिधि मोही।'* (४६।६), *'सत्यधाम सर्बज्ञ तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि।'* (४६), *'कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी।'* (४७।१) अत: याज्ञवल्क्यजीने भी तीन ही बार उनसे सुननेको कहा, यथा—*'तात सुनहु सादर मन लाई।* (४७।५)*'सुनु मुनि मिटिहि बिषाद।'*, (४७),*'कहौं सुनहु अब रघुपति लीला।'* (१०५।१) और तीनों बार *'कहौं'* भी कहा है।

(उमा-शम्भु-संवाद-प्रकरणान्तर्गत)

सती-मोह-प्रसंग

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥ १॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥ २॥

अर्थ—एक बार त्रेतायुगमें शिवजी अगस्त्य ऋषिके पास गये॥ १॥ साथमें जगदम्बा भवानी सतीजी (भी) थीं। समस्त जगत्‌का ईश्वर अर्थात् सर्वेश्वर जानकर ऋषिने उनका पूजन किया॥ २॥

टिप्पणी—१ *'एक बार त्रेता जुग माहीं'* इति। त्रेतायुगमें एक बार शिवजी अगस्त्यमुनिके पास गये—इस कथनसे उमा-शम्भु-संवादका समय बताया कि यह संवाद त्रेतायुगमें हुआ। *'एक बार...... गए'* कहनेका भाव कि जाया-आया तो अनेक बार किये पर यह प्रसङ्ग एक बार किसी उस त्रेतायुगका है जिसमें परब्रह्म रामका अवतार हुआ था।

नोट—१ *'त्रेता जुग'* इति। किस कल्पके किस त्रेतायुगमें यह संवाद हुआ इसमें बहुत मतभेद है। सभी अपनी-अपनी गाते हैं और अपने मतको पुष्ट करते हैं। पं० शुकदेवलालजी 'किसी कल्पके किसी त्रेतायुगमें'—ऐसा अर्थ करके झगड़ेसे निकल जाते हैं। बैजनाथजी प्रथम कल्पका त्रेतायुग कहते हैं जिसमें मनुजी दशरथ हुए। कोई चौबीसवाँ कल्प कहते हैं तो कोई सत्ताईसवाँ और कोई अट्ठाईसवाँ। अस्तु, जो भी हो, परन्तु यह निश्चय है कि यह किसी उस कल्पके त्रेतायुगकी बात है, जिसमें परात्पर परब्रह्मका प्रादुर्भाव हुआ कि जो मनुजीके सामने प्रकट हुए थे और जिनके स्वरूपका वर्णन उस प्रसङ्गमें स्वयं मानसकारने किया है। यथा—*'अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहौं बिचित्र कथा बिस्तारी॥ जेहि कारन अज*

अगुन अरूपा। ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा॥ जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरे मुनि बेषा॥ जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥ अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रमरुजहारी॥' (बा० १४१)

त्रेतायुग चार युगोंमेंसे दूसरा युग है। उसका आरम्भ कार्तिक शु० ९ वा वैशाख शुक्ल ३ को होता है। स्कन्दपुराण मा० कु० ३ के अनुसार सत्ययुगका प्रारम्भ कार्तिक शुक्ल ९ को, त्रेताका वैशाख शुक्ल ३ को, द्वापरका माघी अमावस्याको और कलियुगका भाद्र कृष्ण १३ को हुआ। यथा—*'नवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता। वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते॥ माघे पञ्चदशी कृष्णा द्वापरादिः स्मृता बुधैः। त्रयोदशी नभस्ये च कृष्णा सादिः कलेः स्मृता॥'* (२९९-३००) शब्दसागरमें कार्तिक शुक्ल ९ को त्रेताका और वैशाख शुक्ल ३ को सत्ययुगका प्रारम्भ माना है। उपर्युक्त श्लोकका पाठान्तर भी मिलता है, यथा—**'वैशाखस्य तृतीया या कृतस्यादिः प्रकीर्तिता। कार्तिकस्यापि नवमी शुक्ला त्रेतादिरुच्यते॥'** मुहूर्तचिन्तामणिमें सत्ययुगका प्रारम्भ कार्तिक शुक्ल ९ को माना गया है। त्रेतायुग बारह लाख छियानबे हजार वर्षका होता है। अतः यह भी निश्चय है कि जिस चतुर्युगीमें ब्रह्म श्रीरामका अवतार हुआ, उसीमें सतीजीको उनके चरितमें मोह हुआ, उसी युगमें उनका सतीतन छूटा और उसीमें श्रीपार्वतीजीका अवतार, तप और विवाह हुआ। उसीमें यह संवाद हुआ। बन्दन पाठकजी *'एक बार'* का अर्थ एक-बारह'=१३—इस प्रकार करके रावण-जन्मके बाद तेरहवें त्रेतामें अगस्त्यजीके पास जाना कहते हैं।

टिप्पणी—२ *'संभु गए कुंभज रिषि पाहीं।'* इति। यहाँ कुम्भज नाम देकर ऋषिका बड़प्पन दिखाया कि जैसे सबकी उत्पत्ति है वैसी इनकी नहीं है। इनकी उत्पत्ति घटसे है। तात्पर्य कि ये मुनि बड़े विलक्षण हैं तभी तो महादेवजी उनके पास सत्सङ्गको गये हैं और ये ही नहीं किंतु सनकादि ऐसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी उनके पास आते हैं। यथा—*'तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी॥'* (उ० ३२)। *'घटसम्भव'* से भी उनका बड़प्पन दिखाया गया। पैदा तो हुए घटसे और काम किये कैसे धुरंधर!'—*'रोक्यो बिंध्य सोख्यो सिंधु घटजहू नामबल······'* (विनय)

नोट—२ अगस्त्यजीके पास सत्सङ्गके लिये जब-तब जानेका एक कारण यह भी हो सकता है कि अगस्त्यजी भी काशीवासी थे। देवताओंके कल्याणार्थ विन्ध्याचलको रोकनेके लिये ये दक्षिण चले गये थे। अतः अपने मित्रसे मिलने, उनको अपने सत्सङ्गका लाभ देनेके लिये जाया करते थे—यह कथा काशीखण्डमें है। (मा० पत्रिका) श्रीत्रिपाठीजी लिखते हैं कि सभी देवता इनके यहाँ आया-जाया करते थे, उनके बैठनेके लिये आश्रममें स्थान बने हुए थे। यथा—**'स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्रे स्थानं तथैव च। विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः। सोमस्थानं भवस्थानं स्थानं कौबेरमेव च॥ धातुर्विधातुः स्थानं च वायोः स्थानं तथैव च। स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः॥······'**

प० प० प्र०—अत्रि, वाल्मीकि आदि रामभक्तिप्रिय ऋषियोंके पास न जाना सहेतुक है, यह *'संभु'* पदसे सूचित किया है। शिवजी जानते हैं कि इस समय कुम्भज ऋषिके पास जानेसे ही **'शं'** (कल्याण) होगा, श्रीरघुपतिका दर्शन होगा और दर्शनसे कल्याण होता है। दूसरा हेतु कुम्भजके पास जानेका यह है कि अगस्त्यजीको *'सत्संगति अति प्यारी'* है। श्रीरामचरितमानसमें श्रीरघुनाथजीसे सत्संगकी याचना इन्हीं दो महात्माओं (श्रीअगस्त्यजी और श्रीशिवजी) ने की है। यथा—*'अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥'* (३।१३।११) *'बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग। पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥'* (७।१४) इसलिये सनकादिक भी अगस्त्यजीके पास जाया करते थे।

टिप्पणी—३ *'संग सती जगजननि भवानी'* इति। (क) *'संग सती'* से जनाया कि साथमें नन्दी आदि कोई गण न थे। *'सती'* कहकर उनका नाम बताया। भवपत्नीका नाम सती है, यथा—*'सती नाम तब रहा तुम्हारा।'* (उ० ५६) *'जगजननि'* और *'भवानी'* सतीके विशेषण हैं। सती कैसी हैं ? जगज्जननी हैं और भवानी हैं अर्थात् भवकी स्त्री हैं। पुनः, *'सती जगजननि भवानी'* तीन नामों वा विशेषणोंके और भाव ये हैं कि—

(ख) *'जगजननि'* से उनका ऐश्वर्य कहा। *'सती'* और *'भवानी'* से माधुर्य कहा। अर्थात् *'सती'* नामसे उनका अवतार दक्षके यहाँ कहा और *'भवानी'* से उनका ब्याह शंकरजीके साथ होना कहा। *'जगजननी'* कहकर तब *'भवानी'* कहनेका भाव यह है कि बिना ईश्वरके सम्बन्धके माया जगत्की रचना नहीं कर सकती। सती माया हैं, शंकरजी भगवान् हैं, यथा—*'तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।'* (बा० ८१)

(ग) इन तीन विशेषणोंको देकर इनकी 'उद्भव, स्थिति और संहारकारिणी' तीनों प्रकारकी शक्तियाँ कहीं। वह इस प्रकार कि सत्त्वगुणको धारण करके जगत्का पालन करती हैं यह *'सती'* पदसे सूचित किया। *'जगजननी'* होकर जगत्की उत्पत्ति करती हैं और *'भवानी'* होकर संहार करती हैं, यथा—*'जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥'* (बा० ९८।४) [प० प० प्र० का मत है कि *'भवानी'* से संहारकर्त्रीका भाव लेना गलत है। पालक-शक्तिको मृडानी कहते हैं—*(मृड पालने रक्षणे)* और संहार शिवशक्तिको शर्वाणि कहते हैं। 'अमरव्याख्या-सुधा' देखिये।

नोट—३ पं० रामकुमारजीके भाव टिप्पणीमें दिये गये। अन्य मानसविज्ञोंने जो भाव लिखे हैं उनमेंसे कुछ ये हैं—

(घ) ये तीन विशेषण देकर कविने यहाँ श्रीरामयशकी महिमा दिखायी है। इस तरह कि जब वे रामयशश्रवणके लिये शिवजीके साथ जा रही थीं तब ग्रन्थकारने उनके तीन उत्तम नाम दिये—सती, जगजननि और भवानी। लौटते समय इनको श्रीरामचरितमें सन्देह हुआ, इसलिये उस समय सन्देह होनेके आगमपर 'दच्छकुमारी' नाम दिया है। (मा० म०)

(ङ) 'सती' पतिव्रताको कहते हैं। इसमें अतिव्याप्ति है। अर्थात् इस शब्दमात्रसे अन्य पतिव्रता स्त्रियोंका भ्रमसे ग्रहण हो सकता है। अत: *'जगजननि'* कहा। परन्तु रमा, ब्रह्माणी आदि भी जगज्जननी हैं, इसलिये *'भवानी'* कहा अर्थात् जो भवकी पत्नी हैं। अब अतिव्याप्ति मिट गयी। (रा० प्र०)

(च) *'सती'* नाम देकर दक्षपुत्री होना कहा। दक्षको बड़ा मोह और अभिमान हो गया था। दक्ष-सम्बन्धी नाम देकर जनाया कि इनको भी मोह होगा। पुन:, माता संकट सहकर बच्चोंका पालन करती है, ये स्वयं संकट सहकर जगत्का हित करेंगी—इस विचारसे *'जगजननि'* कहा। *'जगजननी'* और *'भवानी'* से यह भी जनाया कि ये तो जगद्‌गुरु शंकरजीकी वामा हैं, जगदम्बा हैं, इनको मोह कहाँ ? ये तो केवल लीला करेंगी, जिससे संसारका हित हो।

(छ) यहाँ शिवजीको शम्भु और अखिलेश्वर कहा, उसी सम्बन्धसे उनकी अनुकूला होनेसे सतीजीको *'जगजननि'* और *'भवानी'* कहा। शिवजी रामकथा सुनने चले तब यह भी कथा सुनने चलीं। इससे *'सती'* अर्थात् शिवजीकी अनुकूला पतिव्रता नाम दिया। शिवजीको 'अखिलेश्वर' (जगत्के स्वामी) कहा, अत: सतीको जगज्जननी कहा। शम्भुकी जोड़में भवानी अर्थात् शिवपत्नी कहा। (जानकीशरणजी)

टिप्पणी—४ *'पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी'* इति। भाव कि अखिलेश्वर जानकर पूजा की; विश्वनाथ, सर्वेश्वर जानकर पूजा की; अतिथि जानकर नहीं। अर्थात् हमारे यहाँ अतिथि होकर आये हैं, इनकी पूजा करनी चाहिये, ऐसा समझकर पूजा नहीं की। [पुन: भाव कि अन्य देवताओंकी पूजा जैसी किया करते थे, उससे अधिक इनकी की। (वि० त्रि०)]

टिप्पणी—५ जब शम्भुका अगस्त्यजीके यहाँ जाना कहा तब साथमें सतीजीका जाना न कहा था। *'संभु गए कुंभज रिषि पाहीं'*—केवल इतना ही कहा था। जब मुनिने पूजा की, तब *'संग सती जगजननि भवानी'* कहा। यहाँ *'संग सती'*...... ' दीप-देहली-न्यायसे दोनों ओर लगता है। इस तरह साथ जाना भी प्रकट हो गया और शक्तिसमेत शिवजीका पूजन किया गया यह भी सूचित कर दिया गया। [पुन:, *'संग सती जगजननि भवानी'* कहकर *'पूजे'* कहनेका भाव कि जैसे शिवजीको अखिलेश्वर जानकर पूजा की, वैसे ही इनको शिवजीकी आद्याशक्ति जगज्जननी जानकर पूजा।]

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी॥ ३॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥ ४॥

अर्थ—मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने रामकथा विस्तारसे कही (और) महादेवजीने परम सुख मानकर सुनी॥ ३॥ ऋषि (श्रीअगस्त्यजी) ने (श्रीशिवजीसे) सुन्दर हरिभक्ति पूछी (और) शिवजीने अधिकारी (उपयुक्त पात्र जिससे गुप्त रहस्य कहे जा सकते हैं) पाकर (उनसे) हरिभक्ति कही॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'रामकथा मुनिबर्ज बखानी'* इति। शिवजीके बिना पूछे ही रामकथा क्यों कही? इसका भाव यह है कि पूजाके अन्तमें स्तुति की जाती है जिससे देवता प्रसन्न हों। ऋषिने सर्वेश्वरकी पूजा करके उनको प्रसन्न करनेके लिये स्तुतिकी जगह रामकथा सुनायी; क्योंकि वे जानते हैं कि शिवजीको रामकथा 'अतिप्रिय' है; यथा—*'सिव प्रिय मेकल सैल सुता सी।'*, *'अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के।'* (बा० ३१, ३२)। ☞ इसी तरह अत्रिके आश्रमपर जानेपर अत्रिजीने शक्तिसहित भगवान् रामका पूजन और स्तुति की। अनसूयाजीका श्रीजानकीजीमें वात्सल्यभाव था; उस भावके अनुसार उन्होंने श्रीजानकीजीको आशीर्वाद दिया और निकट बैठाया, दिव्य वस्त्र-भूषण पहिनाये—यह सब वात्सल्यभावका पूजन करके उन्होंने बिना पूछे उनको पातिव्रत्यधर्म कह सुनाया; क्योंकि श्रीजानकीजीको पातिव्रत्यधर्म 'अतिप्रिय' है।

नोट—१ पं० शुकदेवलालजीका भी यही मत है। श्रीकरुणासिन्धुजी तथा बैजनाथजीका मत है कि शिवजीकी आज्ञासे अगस्त्यजीने रामकथा कही। बैजनाथजी लिखते हैं कि साकेतविहारी श्रीरामजीके अवतारकी कथा अगस्त्यरामायणमें वर्णित है; वही कही। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि श्रीरामजी मुनिके आश्रममें पधारे थे, सम्भवतः वही प्रिय समाचार तथा वही सब वृत्तान्त मुनिने सुनाया।

टिप्पणी—२ *'मुनिबर्ज'* (मुनिवर्य) इति। अगस्त्यजीको मुनिवर्य कहा। इनका मुनिश्रेष्ठ होना इसीसे सिद्ध है कि अखिलेश्वर शिवजी इनके श्रोता हुए। सनकादि ऋषितक सत्संगके लिये इनके पास ब्रह्मलोकसे आया करते हैं जैसे शिवजी कैलाससे। यथा—*'आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥ तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी॥'* (उ० ३२)—उत्तरकाण्डके इस उद्धरणमें शिवजीने भी उन्हें *'मुनिबर'* कहा है।

टिप्पणी—३ *'सुनी महेस परम सुख मानी'* इति। भाव कि—(क) मुनिने ऐसी सुन्दर कथा कही और ऐसी मधुरता और मनोहरतासे युक्त कही कि महान् ईश जो महेश वे भी सुनकर परम सुखी हुए। पुनः, (ख) *'परम सुख'* का भाव कि पूजासे सुख माना था और अब कथा सुनकर परम सुख माना। [श्रीमुखवचन है कि—*'मम गुनग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ताकर सुख सोइ जानै परानंद संदोह॥'* (उ० ४६) भगवान्‌के गुणग्राम और नाम परानन्दरूप ही हैं। पुनः, श्रीरामगुणग्रामको सुनकर पुलक आदि होना ही चाहिये; इष्टका चरित्र है। त्रिपाठीजीका मत है कि *'सुनी महेस'* से सूचित किया कि सतीजीने सादर नहीं सुना।]

नोट—२ मुं० रोशनलालजी लिखते हैं कि—*'परम सुख मानी'* का भाव यह है कि ध्यानसुखसे भी अधिक सुख रामकथामें मिला, इसीसे तो ध्यान छोड़-छोड़कर शिवजी और सनकादि कथा सुना करते हैं; यथा—*'मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह। रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥'* (बा० १११) *'जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान। जे हरिकथा न करहिं रति तिन्हके हिय पाषान॥'* (उ० ४२)—(पां०)

टिप्पणी—४ *'रिषि पूछी हरि भगति सुहाई।'* इति। यह ऋषिकी चतुरता है कि जब शिवजी रामकथा सुनकर परम आनन्दित हुए तब हरिभक्ति पूछी। इससे पाया गया कि शिवजीके समान हरिभक्तिका ज्ञाता कोई नहीं है और यह कि हरिभक्ति परम दुर्लभ पदार्थ है कि अगस्त्यजी-ऐसे महात्मा भी उसे नहीं जानते थे—(इसपर हमारे विचार आगे नोट ३—५ में देखिये।)

नोट—३ इस विषयमें श्रीमुखवचन है कि *'जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥'* (बा० १३८) अर्थात् शिवजी रामभक्तिके कोठारी, भंडारी वा खजांची हैं।

नोट—४ अगस्त्यजीने सत्संगके लिये भगवद्भक्ति पूछी, क्योंकि बिना पूछे भगवच्चर्चा कैसे होती? और वास्तवमें तो भक्त जितनी ही उच्चकोटिको पहुँचता जाता है उसे भक्ति उतनी ही और भी अगम्य जान पड़ती है। वह अपनेको बहुत गिरा हुआ पाता है। श्रीभरतजी-ऐसे परम भक्तशिरोमणिके विचार देख लीजिये।

नोट—५ वे० भू० रा० कु० दासजी कहते हैं कि—*'अस तव रूप बखानौं जानौं। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौं॥ संतत दासन्ह देहु बड़ाई।.......'* (आ० १३) के अनुसार भगवत्तत्त्व एवं हरिभक्तितत्त्वके पूर्ण जानकारोंमें श्रीअगस्त्यजीका भी एक मुख्य स्थान है; इसका ज्वलन्त उदाहरण 'अगस्त्यसंहिता' नामक उनका रचा हुआ विस्तृत प्रबन्ध ही है। तथा अन्य श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणादिसे भी इसकी पुष्टि होती है। परन्तु अगस्त्यजीका कुछ ऐसा नम्र स्वभाव ही रहा है कि वे जब किसी पहुँचे हुए भगवद्भक्तोंका सत्संग पाते थे तब वे उनसे जगत्‌के कल्याणार्थ भगवद्भक्तिका गूढ़ रहस्य अवश्य पूछा करते थे। इसका प्रमाण श्रीरामचरितमानसके अतिरिक्त श्रीहनुमत्संहिता एवं आनन्दरामायण आदि दे रहे हैं।

नोट—६ *'हरिभगति'* इति। 'भक्तिसारसंग्रह', शाण्डिल्यमुनिकृत 'भक्तिसूत्र', 'श्रीमद्भागवत' आदि भक्तिविषयक ग्रन्थ हैं। ईश्वरमें अतिशय अनुराग होना भक्ति है। भागवतमें नौ प्रकारकी भक्तियाँ वर्णन की गयी हैं। *'भगति निरूपन बिबिध बिधाना।'* ३७ (१३) में देखिये। गुणोंके भेदसे भक्ति सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकारकी होती है। श्रीपंजाबीजी हरिभक्तिसे 'पराभक्ति' का ग्रहण करते हैं। भुशुण्डिजीने हरिभक्तिकी व्याख्या इस तरह की है—*'बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि। जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेसु बिचारि॥'* (उ० १२०)

टिप्पणी—५ *'कही संभु अधिकारी पाई'* इति। *'अधिकारी पाई'* कहनेका भाव कि रामभक्तिके अधिकारी भी दुर्लभ हैं। अगस्त्य-ऐसे मुनि इसके अधिकारी हैं। अधिकारीसे गूढ़ तत्त्व भी छिपाये नहीं जाते। अतः शिवजीने हरिभक्ति कही।

[वि० त्रि० जी लिखते हैं कि *'सुहाई'* से फलरूपा, सिद्ध हरिभक्ति जनायी। यथा—*'सब कर फल हरि भगति सुहाई'।* साधनरूपा भक्तिके तो सभी अधिकारी हैं। यथा—*'पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। भक्ति भाव भज कपट तजि मोहि परमप्रिय सोइ॥'* परन्तु सिद्धा भक्तिके (जिसे अविरल निर्भर आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं) अधिकारी कोई विरले ही होते हैं।]

नोट—७ इससे यही जनाया कि अनधिकारीसे इसे न कहना चाहिये। अधिकारी और अनधिकारीके लक्षण उ० ११३ और उ० १२८ में कहे गये हैं। यथा—*'तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥'* (११३। १२-१३), *'रामभगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥', 'यह न कहिअ सठ ही हठ सीलहिं। जो मन लाइ न सुन हरिलीलहिं॥ कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजै सचराचर स्वामिहि॥ द्विजद्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥', रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी॥ गुरपद प्रीति नीति रत जेई। द्विजसेवक अधिकारी तेई॥ ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई॥'* (१२८। ३—८) लोमश-भुशुण्डि-प्रसंगसे अधिकारीका चिह्न यह सिद्ध होता है कि—जगत्-मात्रको निज-प्रभुमय देखता हो, महत् शीलवान् हो और श्रीरामचरणोंमें दृढ़ विश्वास हो।

अगस्त्यजीको कैसे अधिकारी जाना ? उपर्युक्त लक्षणोंसे। अथवा, श्रीरामकथा जिस प्रकारसे उन्होंने कही उसीसे जान लिया। अथवा, इनको सत्संग अति प्रिय है इत्यादिसे।

नोट—८ बैजनाथजीका मत है कि मुनिने रामकथा कही और शिवजीने हरिभक्ति। इस तरह परस्पर उपकारसे यहाँ अन्योन्यालङ्कार है।

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥ ५॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥ ६॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथा कहते-सुनते कैलासपति शिवजी कुछ दिन वहाँ रहे॥ ५॥ (फिर) मुनिसे विदा माँगकर त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजी दक्षकुमारी श्रीसतीजीके साथ घरको चले॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'कहत सुनत'* इति। यहाँ *'सुनत कहत'* ऐसा पाठ चाहिये था, क्योंकि भगवान् शम्भुने प्रथम मुनिसे कथा सुनी तब हरिभक्ति कही, परन्तु यहाँ उलटा (*कहत-सुनत*) कहा गया। यह उलटा लिखना भी अभिप्राय-गर्भित है। ऐसा करके ग्रन्थकारने दोनोंकी प्रधानता रखी। ऊपर *'रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस……'* इस अर्धालीमें मुनिका कहना प्रथम है और शिवजीका सुनना पीछे और यहाँ शिवजीका कहना प्रथम और मुनिका सुनना पीछे कहा। पहलेमें मुनिकी प्रधानता रखी और दूसरेमें शिवजीकी। इस तरह दोनोंकी प्रधानता रही।

नोट—१ 'कहना-सुनना' मुहावरा है। 'सुनना-कहना' मुहावरा नहीं है। गोस्वामीजीने यहाँ मुहावरेके अनुकूल पद दिया है। इस मुहावरेमें आगे-पीछेका प्रश्न नहीं उठता। गोस्वामीजीने अन्यत्र भी इसका प्रयोग किया है। यथा—*'भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू॥'* (२। २२३। १) *'कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीयरामपद होइ न रत को॥'* (२। ३०४। २) *'कहत सुनत हरिहर सुजस गएउ दिवस भइ साँझ।'* (२। ३१२) इत्यादि। डींगरजीका मत है कि यहाँ *'कहत-सुनत'* का अर्थ है 'अनुकथन करते'। यथा—*'सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिकसमाज सोह सर सोई॥'* (बा० ४१)

टिप्पणी—२ *'रघुपति गुन गाथा'* इति। पूर्व कहा था कि *'रामकथा मुनिबर्ज बखानी'* और *'रिषि पूछी हरिभगति सुहाई'* और यहाँ लिखते हैं कि *'कहत सुनत रघुपति गुनगाथा'* ऐसा करके जनाया कि 'कथा' और 'हरिभक्ति' दोनों रघुपतिके गुण हैं।

टिप्पणी—३ *'कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा'* इति। (क) *'कछु दिन'* कथनका भाव कि सत्संग कुछ दिन साथ रहनेसे ही बनता है। यथा—*'मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा॥', 'तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास। सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आएउँ कैलास॥'* (उ० ५७) तथा यहाँ *'कहत सुनत रघुपति गुनगाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥'* आये और चले इसमें सत्संग नहीं होता। (ख) *'गिरिनाथा'* का भाव कि कैलासपति हैं, सदा कैलासमें रहते हैं। कैलास बड़ा रमणीक स्थान है, यथा—*'परम रम्य गिरिबर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥'* (बा० १०५) ऐसा रमणीय स्थान छोड़कर शिवजी सत्संगके लिये यहाँ कुछ दिन रह गये—यह सत्संगकी महिमा दिखायी।

नोट—२ *'गिरिनाथ'* का दूसरा भाव यह है कि गिरि अचल होता है, वैसे ही आप अचल होकर यहाँ रहकर सावधानतापूर्वक कथा कहते-सुनते रहे यह सत्संग तथा कथाके इच्छुकोंके लिये उपदेश है।

टिप्पणी—४ *'मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी'* इति। (क) [बिदा=जानेकी आज्ञा; रुखसत। *'बिदा'* माँगना शिष्टाचार है। चलते समय आज्ञा माँगनेकी रीति हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई आदि सभी सभ्य कौमोंमें है, इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि किसीके यहाँ प्रेमवश जाना अपने अधीन है किंतु लौटना उसके अधीन रहता है जिसके यहाँ जाय! बिदा माँगना प्रीतिका प्रणय अङ्ग है!] बिदा माँगनेसे रखनेवाले (जिसके यहाँ जाओ उस) का (मन और) मान (दोनों) रहते हैं। इसीसे बड़े लोग बिदा माँगकर चलते हैं। यथा—*'सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥'* (आ० ३) *'जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥'* (सुं० ८) तथा यहाँ *'मुनि सन बिदा मागि……'* कहा। (ख) *'त्रिपुरारी'* इति। (जैसे ऋषिके यहाँ जानेमें *'संभु गए कुंभजरिषि पाहीं'* कहा था, वैसे ही चलते समय बिदा माँगकर चलनेमें भी *'मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी'*—केवल शिवजीका नाम दिया। क्योंकि ये पति हैं। इन्हींकी प्रधानता है सतीजीको संग कहा; वे गौण हैं। त्रिपाठीजीका मत है कि बिदा माँगनेमें दक्षकुमारी ही कारण

मालूम होती हैं, नहीं तो गिरिनाथ तो ऐसे रामकथाके रसिक हैं कि भुशुण्डिजीके यहाँ मराल तन धरकर पूरी कथा सुनी।)

टिप्पणी—५ *'चले भवन सँग दच्छकुमारी'* इति। भवनको चले। भवन कहाँ है? यह कवि आगे स्वयं कहते हैं—*'बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा।'* (बा० ५८) अर्थात् कैलास उनका घर है; यथा—*'भवन कैलास आसीन कासी'* (विनय०) पूर्व कहा था कि *'संग सती जगजननि भवानी।'* सती पतिव्रताको कहते हैं; इससे वहाँ यह न खुला कि सती कौन हैं। उसे यहाँ खोलते हैं कि सती दक्षकी कुमारी हैं।

—६ 'त्रिपुरारी', 'दच्छकुमारी'—

पं० रा० कु०—त्रिपुरारी और दक्षकुमारी कहकर आगेवाली प्रसंगभरकी भविष्य कथा दिखाते हैं। इस तरह कि—(क) त्रिपुर अधर्मी था इसीसे शिवजीने उसे मारा। इसी तरह जो अधर्मी हैं, शिवजी उनको मारते हैं, एवं उनका त्याग करते हैं। सतीजीने यह अधर्म किया कि पतिवचन मृषा माना, ब्रह्मको प्राकृत नर (मनुष्य) माना और श्रीसीताजीका रूप धारण किया, अतएव त्रिपुरारीने सतीको त्याग दिया। दक्षने अधर्म किया कि शिवजीसे विरोध किया, उनको जामाता मानकर उनकी निन्दा की, उनका अपमान किया, यज्ञमें भाग न दिया और सती-ऐसी पतिव्रता भगवद्भक्ताका अपमान किया। अतएव उसको वीरभद्रद्वारा मारा और उसका यज्ञ विध्वंस किया। *'दच्छकुमारी'* कहकर भविष्य यह जनाया कि 'सतीजी दक्षके यहाँ जायेंगी। शिवजीसे विरोध माननेके कारण दक्ष सतीजीका मान न करेगा। शिवजीका भाग यज्ञमें न देखकर पतिका अपमान मानकर सतीजी दक्षका नाता मिटानेके लिये शरीर-त्याग करेंगी।' पुनः, (ख) शिवजी त्रिपुरारी हैं। उन्होंने त्रिपुरके मारनेमें बड़ी सावधानतासे काम लिया था। इसी तरह वे लक्ष्यपर सदा सावधान रहते हैं। अतएव आगे श्रीरामरूप देखकर इनको भ्रम न होगा और दक्षको ईश्वरमें भ्रम था। उसने शिवजीको न जाना। सतीजी दक्षकुमारी हैं अतः इनको भी परमेश्वर (रामरूप) में भ्रम होगा—यह दक्षकुमारी कहकर जनाया। (*'कारन ते कारज कठिन'* इसके अनुसार दक्षसे अधिक मोह सतीको हुआ। दक्षको ईश्वर शिवमें भ्रम हुआ और दक्षकुमारीको शिवजीके इष्ट परमेश्वर राममें महामोह हुआ।)

नोट—३ प्रसंगके आरम्भमें *'जगजननि'* और *'भवानी'* आदि नाम दिये थे। अब बिदा होनेपर घरको लौटते समय पति और ऐश्वर्यसम्बन्धी नाम छोड़ दिये गये। केवल पिता-सम्बन्धी नाम दिया गया। क्योंकि अब ये पतिसे विमुख होनेवाली हैं और शिवजी रास्तेहीमें पति-पत्नी-भाव त्याग देंगे। यथा—*'एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥'* (बा० ५७) इस तरह पिता-सम्बन्ध देकर इनका भावी त्याग सूचित किया।

त्रिपुरासुर

(भा० ७।१०) में लिखा है कि एक बार जब देवताओंने असुरोंको जीत लिया तब वे महामायावी शक्तिमान् मयदानवकी शरणमें गये। मयने अपनी अचिन्त्य शक्तिसे तीन पुररूपी विमान लोहे, चाँदी और सोनेके ऐसे बनाये कि जो तीन पुरोंके समान बड़े-बड़े और अपरिमित सामग्रियोंसे भरे हुए थे। इन विमानोंका आना-जाना नहीं जाना जाता था। यथा—**'स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः। दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः॥'** (५४) [महाभारतसे पता चलता है कि—ये तीनों पुर (जो विमानके आकारके थे) तारकासुरके तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों पुत्रोंने मयदानवसे अपने लिये बनवाये थे। इनमेंसे एक नगर (विमान) सोनेका स्वर्गमें, दूसरा चाँदीका अन्तरिक्षमें और तीसरा लोहेका मर्त्यलोकमें था। ऋग्वेदके कौषीतमें और ऐतरेय ब्राह्मणोंमें त्रिकका वर्णन है। यथा—'**(असुराः) हरिणीं (पुरं) हादो दिविचक्रिरे। रजतां अन्तरिक्षलोके अयस्मयीमस्मिन् अकुर्वत्**॥' (कौ० ८।८, ऐ० १।१३) अर्थात् असुरोंने

हिरण्मयी पुरीको स्वर्गमें बनाया, रजतमयीको अन्तरिक्षमें और अयस्मयीको इस पृथ्वीलोकमें।] तीनों पुरोंमें एक-एक अमृतकुण्ड बनाया गया था। इन विमानोंको लेकर वे असुर तीनों लोकोंमें उड़ा करते थे।

अब देवताओंसे अपना पुराना वैर स्मरणकर मयदानवद्वारा शक्तिमान् होकर तीनों विमानोंद्वारा दैत्य उनमें छिपे रहकर तीनों लोकों और लोकपतियोंका नाश करने लगे। जब असुरोंका अत्याचार बहुत बढ़ गया तब सब देवता शङ्करजीकी शरण गये और कहा कि '**त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः।**' (५६) ये त्रिपुरानिवासी असुरगण हमें नष्ट किये डालते हैं। हे प्रभो! हम आपके हैं, आप हमारी रक्षा करें। शङ्करजीने पाशुपतास्त्रसे अभिमन्त्रित एक ऐसा बाण तीनों पुरोंपर छोड़ा कि जिससे सहस्रशः बाण और अग्निकी लपटें निकलती जाती थीं। उस बाणसे समस्त विमानवासी निष्प्राण हो गिर गये। महामायावी मयने सबको उठाकर अपने बनाये हुए अमृतकुण्डमें डाल दिया जिससे उस सिद्ध अमृतका स्पर्श होते ही वे सब फिर वज्रसमान पुष्ट हो एक साथ खड़े हो गये। जब-जब शङ्करजी त्रिपुरके असुरोंको बाणसे निष्प्राण करते थे, तब-तब मयदानव सबको इसी प्रकार जिला लेता था। शङ्करजी उदास हो गये, तब उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया। उनको भग्न संकल्प और खिन्नचित्त देख भगवान्‌ने यह युक्ति की कि स्वयं गौ बन गये और ब्रह्माको बछड़ा बनाकर बछड़ेसहित तीनों पुरोंमें जा सिद्धरसके तीनों कूपोंका सारा जल पी गये। दैत्यगण खड़े देखते रह गये। वे सब ऐसे मोहित हो गये थे कि रोक न सके। तत्पश्चात् भगवान्‌ने युद्धकी सामग्री तैयार की। धर्मसे रथ, ज्ञानसे सारथी, वैराग्यसे ध्वजा, ऐश्वर्यसे घोड़े, तपस्यासे धनुष, विद्यासे कवच, क्रियासे बाण और अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे अन्यान्य वस्तुओंका निर्माण किया। इन सामग्रियोंसे सुसज्जित हो शङ्करजी रथपर चढ़े और अभिजित् मुहूर्तमें उन्होंने एक ही बाणसे उन तीनों दुर्भेद्य पुरोंको भस्म कर दिया। (भा० ७। १०। ५३—६८)

दूसरा आख्यान—त्रिपुरोंकी उत्पत्ति और नाशका एक आख्यान महर्षि मार्कण्डेयने किसी समय धृतराष्ट्रसे कहा था जो दुर्योधनने महारथी शल्यसे (कर्णपर्वमें) कहा है। उसमें बताया है कि तारकासुरके तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामके तीन पुत्र थे, जिन्होंने घोर तप करके ब्रह्माजीसे यह वर माँग लिया था कि 'हम तीन नगरोंमें बैठकर इस सारी पृथ्वीपर आकाशमार्गसे विचरते रहें। इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतनेपर हम एक जगह मिलें। उस समय जब हमारे तीनों पुर मिलकर एक हो जायँ तो उस समय जो देवता उन्हें एक ही बाणसे नष्ट कर सके, वही हमारी मृत्युका कारण हो।' यह वर पाकर उन्होंने मयदानवके पास जाकर उससे तीन नगर अपने तपके प्रभावसे ऐसे बनानेको कहे कि उनमेंसे एक सोनेका, एक चाँदीका और एक लोहेका हो। तीनों नगर इच्छानुसार आ-जा सकते थे। सोनेका स्वर्गमें, चाँदीका अन्तरिक्षमें और लोहेका पृथ्वीमें रहा। इनमेंसे प्रत्येककी लम्बाई-चौड़ाई सौ-सौ योजनकी थी। इनमें आपसमें सटे हुए बड़े-बड़े भवन और सड़कें थीं तथा अनेकों प्रासादों और राजद्वारोंसे इनकी बड़ी शोभा हो रही थी। इन नगरोंके अलग-अलग राजा थे। स्वर्णमय नगर तारकाक्षका था, रजतमय कमलाक्षका और लोहमय विद्युन्मालीका। इन तीनों दैत्योंने अपने अस्त्र-शस्त्रके बलसे तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया था। इन दैत्योंके पास जहाँ-तहाँसे करोड़ों दानव योद्धा आकर एकत्रित हो गये। इन तीनों पुरोंमें रहनेवाला जो पुरुष जैसी इच्छा करता, उसकी उस कामनाको मयदानव अपनी मायासे उसी समय पूरी कर देता था। यह तारकासुरके पुत्रोंके तपका फल कहा गया।

तारकाक्षका एक पुत्र 'हरि' था। इसने तपसे ब्रह्माजीको प्रसन्न कर यह वर प्राप्त कर लिया कि 'हमारे नगरोंमें एक बावड़ी ऐसी बन जाय कि जिसमें डालनेसे शस्त्रसे घायल हुए योद्धा और भी अधिक बलवान् हो जायँ।' इस वरके प्रभावसे दैत्यलोग जिस रूप और जिस वेषमें मरते थे उस बावड़ीमें डालनेपर वे उसी रूप और उसी वेषमें जीवित होकर निकल आते थे। इस प्रकार उस बावड़ीको पाकर वे समस्त लोकोंको कष्ट देने लगे। देवताओंके प्रिय उद्यानों और ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंको उन्होंने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इन्द्रादि देवता जब उनका कुछ न कर सके तब वे ब्रह्माजीकी शरण गये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे

वे सब शङ्करजीके पास गये और उनको स्तुतिसे प्रसन्न किया। महादेवजीने सबको अभयदान दिया और कहा कि तुम मेरे लिये एक ऐसा रथ और धनुष-बाण तलाश करो जिनके द्वारा मैं इन नगरोंको पृथ्वीपर गिरा सकूँ।

देवताओंने विष्णु, चन्द्रमा और अग्निको बाण बनाया तथा बड़े-बड़े नगरोंसे भरी हुई पर्वत, वन और द्वीपोंसे व्याप्त वसुन्धराको ही उनका रथ बना दिया। इन्द्र, वरुण, कुबेर और यमादि लोकपालोंको घोड़े बनाये एवं मनको आधारभूमि बना दिया। इस प्रकार जब (विश्वकर्माका रचा हुआ) वह श्रेष्ठ रथ तैयार हुआ तब महादेवजीने उसमें अपने आयुध रखे। ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड और ज्वर—ये सब ओर मुख किये हुए उस रथकी रक्षामें नियुक्त हुए। अथर्वा और अङ्गिरा उनमें चक्ररक्षक बने। सामवेद, ऋग्वेद और समस्त पुराण उस रथके आगे चलनेवाले योद्धा हुए। इतिहास और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक बने। दिव्य-वाणी और विद्याएँ पार्श्वरक्षक बनीं। स्तोत्र, वषट्कार और ओंकार रथके अग्रभागमें सुशोभित हुए। उन्होंने छहों ऋतुओंसे सुशोभित संवत्सरको अपना धनुष बनाया और अपनी छायाको धनुषकी अखण्ड प्रत्यञ्चाके स्थानोंमें रखा। ब्रह्माजी उनके सारथी बने। भगवान् शङ्कर रथपर सवार हुए और तीनों पुरोंको एकत्र होनेका चिन्तन करने लगे। धनुष चढ़ाकर तैयार होते ही तीनों नगर मिलकर एक हो गये। शङ्करजीने अपना दिव्य धनुष खींचकर बाण छोड़ा जिससे तीनों पुर नष्ट होकर गिर गये। इस तरह शङ्करजीने त्रिपुरका दाह किया और दैत्योंको निर्मूलकर त्रिलोकका हित किया।

वाल्मीकीयसे पता चलता है कि दधीचि महर्षिकी हड्डियोंसे पिनाक बनाया गया था और भूषण टीकाकारका मत है कि भगवान् विष्णु बाण बने थे। जिससे त्रिपुरासुरका नाश हुआ। वही धनुष पीछे राजा जनकके यहाँ रख दिया गया था। दधीचिकी हड्डियोंसे दो धनुष बने, शार्ङ्ग और पिनाक। वाल्मीकीय रा० बा० सर्ग ७५ के आधारपर कहा जाता है कि विष्णुभगवान्ने शार्ङ्गसे असुरोंको मारा और शङ्करजीने तीनों पुरोंको जलाया। ('विनयपीयूष' से उद्धृत। विनय० पद ३)

स्कन्दपु० आवन्त्य रेवाखण्डमें लिखा है कि राजा बलिका महापराक्रमी पुत्र बाणासुर भी सहस्रभुज था। उसने एक सहस्र दिव्य वर्षोतक महादेवजीकी उपासना की। उसकी सेवासे संतुष्ट होकर शङ्करजीने उससे वर माँगनेको कहा। उसने माँगा कि 'मेरा नगर दिव्य एवं सम्पूर्ण देवताओंके लिये अजेय हो। आपको छोड़कर दूसरे किसी देवताके लिये यहाँ प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन हो। मेरा यह नगर मेरे स्थिर होनेपर स्थिर रहे और मेरे चलनेपर वह साथ-साथ चले, सर्वथा मेरे मनके अनुकूल बना रहे।' महादेवजीने उसे यह वर दिया। तदनन्तर भगवान् विष्णुने भी बाणासुरको वैसा ही दूसरा पुर दिया। दोनोंने उसे ब्रह्माजीके पास भेजा। वहाँ जानेपर ब्रह्माजीने भी उसे वैसा ही तीसरा पुर दिया। इन तीनों पुरोंको प्राप्त करके बाणासुर 'त्रिपुर' नामसे विख्यात हुआ। इस तरह वर पाकर वह समस्त देव, दानव, यक्ष, राक्षसादिसे अवध्य और अजेय हो गया। उसके अत्याचारसे सब उद्विग्न हो गये। सबने शङ्करजीसे पुकार की। शङ्करजी अपने प्रमुख पार्षदों और देवी पार्वतीसहित जाकर श्रीशैल नामक सिद्ध पर्वतपर ठहरे। वहीं विराट्रूप धारण कर पिनाक नामक धनुषको हाथमें ले उसपर अघोर नामक बाण लगाकर छोड़ा जिससे दग्ध होकर त्रिपुरके तीन खण्ड हो गये। उसे जर्जर करके शिवजीने नर्मदामें गिरा दिया। तीनों पुरोंके दग्ध हो जानेपर बाणासुरने शिवजीकी भारी स्तुति की जिससे वे प्रसन्न हो गये। उसने परिवारसहित इसी शरीरसे शिवलोककी प्राप्ति माँगी और पायी।

☞ '*दच्छ, दच्छकुमारी*' इति। पद्मपुराणमें लिखा है कि ब्रह्माजीने अपनेसे उत्पन्न अपने ही स्वरूपभूत स्वायम्भुवको प्रजापालनके लिये प्रथम मनु बनाया। इनकी दो कन्याएँ हुईं—प्रसूति और आकूति। मनुने प्रसूतिका विवाह दक्षके साथ कर दिया। प्रसूतिके गर्भसे पहले चौबीस कन्याएँ हुईं, जिनको धर्मने अपनी पत्नियोंके रूपमें ग्रहण किया। इनसे छोटी ग्यारह कन्याएँ और थीं जो १ ख्याति, २. सती, ३. सम्भूति, ४. स्मृति, ५. प्रीति, ६. क्षमा, ७. सन्नति, ८. अनुसूया, ९. ऊर्जा, १०. स्वाहा,

११. स्वधा नामसे प्रसिद्ध हुई। इनको क्रमशः १. भृगु, २. शिव, ३. मरीचि, ४. अंगिरा, ५. पुलस्त्य, ६. पुलह, ७. क्रतु, ८. अत्रि, ९. वसिष्ठ, १०. अग्नि, ११. पितरोंने ग्रहण किया। यह भी लिखा है कि भृगु, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि; दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ ब्रह्माके, उन्हींके सदृश, मानसपुत्र हैं। ये नौ भी ब्रह्मा ही कहे जाते हैं। (संक्षिप्त प० पु०) (भा० ४।१।११) में भी यही बात मैत्रेयजीने विदुरजीसे कही है कि स्वायम्भुव मनुने अपनी तीसरी कन्या प्रसूतिका विवाह ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिसे किया था। उसी अध्यायमें यह भी कहा है कि प्रसूतिसे दक्षने अति सुन्दरी सोलह कन्याएँ उत्पन्न कीं जिनमेंसे तेरह धर्मको, एक अग्निको, एक समस्त पितृगणको और एक शङ्करजीको दी। शङ्करपत्नीका नाम 'सती' था जिन्होंने युवावस्थाहीमें क्रोधवश योगके द्वारा अपने शरीरको त्याग दिया था।

गरुड़पुराणमें कथा इस प्रकार है कि 'ब्रह्माने सृष्टिकी कामनासे धर्म, रुद्र, मनु, भृगु तथा सनकादिको मानसपुत्रके रूपमें उत्पन्न किया। फिर दाहिने अँगूठेसे दक्षको और बायेंसे दक्षपत्नीको उत्पन्न किया जिससे दक्षको सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुईं—श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती—(ये नाम (भा० ४।१) में आये हैं। स्वाहाका अग्निसे, स्वधाका पितृगणसे सम्बन्ध हुआ, प्रथम तेरहका धर्मसे।) रुद्रको सती प्राप्त हुई।'……शिवजीने दक्षयज्ञ विध्वंस किया और शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर ध्रुवके वंशमें जन्म लोगे। ध्रुवके वंशज प्रचेतागणने जब घोर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करनेका वर मिला और उन्होंने कण्डुकन्या मारिषाके गर्भसे दक्षको उत्पन्न किया। दक्षने चतुर्विध मानससृष्टि की, पर जब मानससृष्टिसे प्रजावृद्धि न हुई तब उन्होंने वीरण प्रजापतिकी कन्या 'असिक्री' को ग्रहण किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न कीं। इन्हीं कन्याओंसे कश्यप आदिने सृष्टि चलायी।'—(श० सा०) और पुराणोंमें भी इसी तरह कथा कुछ हेर-फेरसे है। कल्पभेदसे सभी कथाएँ ठीक हैं।

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥ ७॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥ ८॥

अर्थ—उस समय (उन्हीं दिनों) पृथ्वीका भार हरनेके लिये (दुःखके हरनेवाले भगवान्) हरिने रघुकुलमें अवतार लिया॥ ७॥ पिताके वचनसे राज्यको छोड़कर उदासी वेषसे वे अविनाशी भगवान् दण्डकवनमें विचर रहे थे॥ ८॥

टिप्पणी—१ ***'तेहि अवसर भंजन महिभारा।'***…… ' इति। (क) ***'तेहि अवसर'*** अर्थात् उन्हीं दिनों त्रेतायुगमें जैसा पूर्व कह आये। यथा—***'एक बार त्रेताजुग माहीं।'*** (ख) [अथवा, ***'तेहि अवसर'*** का अन्वय ***'दंडक बन बिचरत अबिनासी।'*** के साथ कर लें। चारों चरणोंका अन्वय एक साथ कर लेनेसे शंका नहीं रह जाती।] (ग) ***'भंजन महिभारा'*** और ***'हरि'***से अवतारका हेतु बताया। पृथ्वीका भार उतारना अवतारका हेतु है, यथा—***'जगकारन तारन भव भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार॥'*** (कि० १) जो दुःखको हरे वही हरि है। राम ही हरि हैं; यथा—'**वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।**' (मं० श्लो०) (घ) ***'रघुबंस लीन्ह अवतारा'*** इति। रघुवंशमें अवतार लिया—इस कथनका भाव यह है कि रघुवंश धर्मात्मा कुल है; यथा—***'रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथु पगु धरै न काऊ॥'*** (बा० २३१) और यह अवतार धर्मकी रक्षाके लिये है।

नोट—१ पुनश्च, इस अवतारमें अनेक नीच योनियोंके प्राणियोंको गति देनी है, संतोंकी रक्षा करनी है, शरणमें आये हुओंको अभय प्रदान करना है और रघुकुल इन बातोंमें विख्यात है, उदार है, तेजस्वी है, प्रतापी है। अतः इस कुलमें अवतरे, जिसमें यह संदेह न हो कि ब्रह्मने अवतार लिया है, सब यही जानें कि मनुष्य हैं।

नोट—२ ***'रघुबंस'*** इति। इसे सूर्यवंश, इक्ष्वाकुवंश भी कहते हैं। ब्रह्माजीके प्रपौत्र विवस्वान् (सूर्य)

हुए जिनके पुत्र वैवस्वत मनु हुए। सम्भवतः इस कुलके पुरुषा विवस्वान् हैं, इसीसे इसे 'सूर्यवंश' कहते हैं। गोस्वामीजीने भी इन्हें रघुकुलगुरु कहा है, यथा—'*उदउ करहु जनि रबि रघुकुलगुर॥*' (२।३७) मनुके पुत्र इक्ष्वाकु हुए। (वाल्मी० १।७०) में इक्ष्वाकु महाराजको ही प्रथम राजा अयोध्याका लिखा है। इसीसे इसे इक्ष्वाकुवंश कहा जाता है। वंशपरम्पराएँ जो वाल्मीकीय और भागवतमें दी हैं उनमें बहुत अन्तर है जिसका कारण कल्पभेद ही जान पड़ता है। वाल्मीकीयमें इक्ष्वाकुसे दसवें मान्धाता, उन्नीसवें दिलीप, बाईसवें रघु महाराज और पैंतीसवें दशरथ महाराज हैं; और भागवतमें इक्ष्वाकुसे अठारहवें मान्धाता, अड़तीसवें दिलीप, तिरपनवें रघुजी और पचपनवें दशरथजी हैं। वाल्मीकीयमें रघुजी दिलीपजीके प्रपौत्र हैं। दिलीपके भगीरथ, भगीरथके ककुत्स्थ जिनके पुत्र रघु हुए। भागवतमें बहुत अन्तर है पर बड़े-बड़े राजाओंके नाम दोनोंमें हैं।

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें देवलमुनिने वैश्य शरभसे राजा दिलीपका वृत्तान्त यों बताया है कि—'जब सुदक्षिणा रानीसे कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ, तब राजा शोचयुक्त हो गुरु वसिष्ठके पास गये और अपने आनेका कारण बताया। श्रीवसिष्ठजीने ध्यानद्वारा जानकर कारण बताया कि 'तुम इन्द्रकी सेवामें गये थे। परन्तु रानीके ऋतुकालका अतिक्रम न हो यह सोचकर राजमहलको लौटते समय उतावलीके कारण मार्गमें कल्पवृक्षके नीचे खड़ी हुई कामधेनुको तुमने प्रदक्षिणा करके प्रणाम नहीं किया जिससे उसने शाप दे दिया कि जबतक तू मेरी प्रसूती संतानकी सेवा न करेगा तबतक तुझे पुत्र न होगा।' और कहा कि हमारी नन्दिनी गौ उसकी प्रसूतीकी पुत्री है। तुम दोनों इसकी सेवा करो। वनमें इसकी सेवा तुम करो और आश्रमपर आनेपर रानी करें। दृढ़तापूर्वक नन्दिनीकी आराधना करते हुए राजाको इक्कीस दिन बीत गये। तब नन्दिनीको एक सिंहने पकड़ लिया। राजाने ज्यों ही बाण चलाना चाहा त्यों ही सिंहकी दृष्टि पड़ते ही वह जड़वत् हो गया। तब राजाने प्रार्थना की कि मैं इसके बदले अपना शरीर समर्पण करता हूँ। यह सुनकर सिंह मौन हो गया और राजा उसके सामने मुँह नीचे किये हुए लेट गये और सिंहके द्वारा दुःसह आघातकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि अकस्मात् उनपर आकाशसे फूलोंकी वृष्टि हुई। फिर 'बेटा! उठो!' यह सुनकर वह उठे तो वह नन्दिनी पास खड़ी थी, सिंह वहाँ न देख पड़ा। नन्दिनीने कहा कि मैंने ही मायासे सिंहका रूप धरकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। तुम वर माँगो। वंशधर पुत्रका वर माँगनेपर नन्दिनीने कहा कि 'पत्तेके दोनेमें दूध दुहकर इच्छानुसार पी लो, इससे तुम्हें अस्त्र-शस्त्रोंके तत्त्वका वेत्ता पुत्र प्राप्त होगा।' पर इन्होंने उत्तर दिया कि आश्रमपर पहुँचनेपर वत्सके पी लेनेपर फिर गुरुजीके पूजन आदि समस्त धार्मिक क्रियाओंके अनुष्ठानसे बचे हुए आपके प्रसादस्वरूप दूधका ही पान करूँगा। इस प्रकार पूर्णमनोरथ होकर राजा-रानी दूसरे दिन अयोध्यापुरीको लौटे। कुछ दिनोंके बाद दिलीप महाराजके 'रघु' नामक पुत्र हुआ जिसके नामसे इस पृथ्वीपर सूर्यवंशकी ख्याति हुई अर्थात् रघु ऐसे प्रतापी राजा हुए कि उनके बाद सूर्यवंशका नाम ही रघुवंश हो गया।

कालिदासजीने भी 'रघुवंश' में दिलीप महाराजके पुत्रका नाम 'रघु' बताया है और सुरभि (कामधेनु) के शाप तथा नन्दिनीके प्रसादकी कथा भी दी है, जो सर्ग १ श्लोक ७५—७७ इत्यादिमें है। जब दिलीप महाराज निन्यानबे यज्ञ कर चुकनेके बाद फिर यज्ञ करने लगे तब इन्द्र डरा और उसने यज्ञका घोड़ा चुरा लिया। अश्वकी रक्षामें रघुजी नियुक्त थे। इन्होंने ऐसे अस्त्र-शस्त्र चलाये कि इन्द्रके प्राणोंपर आ बनी तब उसने वज्र चलाया। उससे एक क्षणभर रघुजी मूर्च्छित हो गये फिर तुरंत ही उठकर युद्ध करने लगे। इन्द्र विस्मित हो गया और इनके पराक्रमसे संतुष्ट हो उसने यज्ञपशुको छोड़ अन्य वर माँगनेको कहा। रघुजीने पिताके यज्ञकी पूर्तिका वर माँगा। यज्ञ पूरा हो गया। रघु महाराजने विश्वजित् यज्ञ करके सर्वस्व दान कर दिया। उसी समयकी बात है कि बरतन्तु ऋषिने अपने शिष्य कौत्सके हठ करनेपर उससे चौदह विद्याओंकी शिक्षाके बदलेमें चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ माँगीं। कौत्स घबड़ाकर महाराज 'रघु' के यहाँ आये

तो देखा कि वे सर्वस्व दान करके स्वयं मिट्टीके पात्रसे निर्वाह करते हैं। वे लौटने लगे तो राजाने आगमनका कारण पूछा और बतानेपर कहा कि मैं कल ही प्रातः कुबेरपर चढ़ाई करके तुम्हें इतना धन दूँगा। कुबेरको रातहीमें खबर मिली। वे डर गये और रात्रिमें ही उन्होंने स्वर्णमुद्राकी वर्षा की। राजाने कौत्सको वह सब दे दिया। इसी प्रकारकी उनके प्रतापकी अनेक कथाएँ हैं। इसीसे तबसे उस वंशका नाम 'रघुवंश' पड़ गया।

टिप्पणी—२ *'लीन्ह अवतार'* इति। *'लीन्ह'* शब्दसे सूचित करते हैं कि वे अविनाशी हैं, जन्म-कर्मरहित हैं, उन्होंने अपनी इच्छासे अवतार लिया, कर्मवश नहीं। यथा—*'निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।'* (कि० २६) *'निज इच्छा निरमित तनु माया गुन गोपार।', 'इच्छामय नर बेष सँवारें। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारें॥'* (बा० १५२)

'पिता बचन तजि राजु उदासी।'......' इति। (क) पिताके वचनोंकी रक्षाके लिये राज्य छोड़कर सबसे उदासी होकर दण्डकवनमें विचरते हैं; यथा—*'तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥'* (अ० २९) (ख) *'बिचरत'* शब्द देकर जनाया कि सुखसे वनवास कर रहे हैं।

नोट—३ राज्यका त्याग और वनवास दोनों कठिन काम हैं; परंतु आपने ये दोनों काम पिताके बद्ध वचन होनेसे उनके वचनोंको मानकर सुखपूर्वक किये—यह बात *'तजि राजु उदासी'* और *'दंडक बन बिचरत'* कहकर दर्शायी है। क्योंकि 'विचरण' और 'उदासीनता'—ये दोनों सुखके द्योतक हैं। यही बात ग्रन्थकारने अयोध्याकाण्डमें कही है; यथा—'**प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः। मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥**' (मं० श्लो०) *'पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर। बिसमउ हरषु न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥'* (अ० १६५) *'उदासी'* से राजपाटसे उदासीनता और निर्लोभता एवं हर्ष-शोकरहित मन भी सूचित होते हैं और उदासी वेष भी।

नोट—४ *'दंडक बन बिचरत'* अर्थात् दण्डकवनमें विचरना कहकर यह भी जनाया कि विशेषकर इसी वनमें फिर रहे हैं, जिसमें वहाँकी भूमि, वृक्ष, वन, लता और तृण आदि सभी आपका चरणरज पाकर पवित्र हो जायँ। अगस्त्यजीके *'दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिबर कर हरहू॥'* इन वचनोंको सत्य कर रहे हैं, चरितार्थ कर रहे हैं (मा० प०)। *'दंडक बन'* इति। यह इक्ष्वाकुमहाराजके पुत्र दण्डकी राजधानी थी। इसने शुक्रकी पुत्री अरजाके साथ बलात्कार किया जिससे शुक्रजीने इसको शाप दिया। शापसे इसके राज्यके सब जीव-जन्तु, तृण-लता-वृक्ष हो गये। सारा राज्य नष्ट होकर भयानक वन हो गया। विशेष *'दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन।'* दोहा ४ चौपाई ७ देखिये।

टिप्पणी—३ *'अबिनासी'* इति। अविनाशी विशेषण देकर खर-दूषण-वधकी कथा सूचित की कि सब (चौदह हजार अजर, अजय और देवताओं आदिसे भी अवध्य) राक्षस मारे गये और श्रीरघुनाथजीको कोई न मार सका; क्योंकि ये *'अबिनासी'* हैं। अथवा, प्रथम *'हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा'* से अवतार होना कहा। परन्तु जिसका जन्म होता है उसका नाश (मरण) भी निश्चय ही होता है; यथा—'**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**' (गीता २। २७) अतः प्रथम अवतार कहकर फिर यह भी कहा कि ये *'अबिनासी'* हैं, इनका नाश नहीं होता। क्योंकि इनका अवतार निज इच्छासे होता है (जैसा ऊपर *'लीन्ह अवतारा'* की व्याख्यामें कह आये हैं), सब जीवोंकी तरह कर्मके वशसे नहीं होता। इनके जन्म-कर्म सभी दिव्य हैं।

नोट—५ मा० पत्रिकाकार लिखते हैं कि *''अबिनासी''* से जनाया कि *'जैसा नाच वैसी काँछ वा जैसी काँछ तैसा नाच'*—इस लोकोक्तिको पूरा कर दिखा रहे हैं, नहीं तो वे तो परब्रह्म हैं।

टिप्पणी—४ इस प्रसंगमें यहाँ *'तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥'* यह बालकाण्डकी कथा है *'पिता बचन तजि राज उदासी'* यह अयोध्याकाण्डकी कथा है और *'दंडक बन बिचरत अबिनासी'* यह अरण्यकाण्ड है। यहाँतक चार चरणोंमें इतनी कथा कही गयी—(इससे अनुमान

होता है कि) श्रीअगस्त्यजीने श्रीशिवजीसे श्रीरामविरहतककी कथा कहा और फिर यह बोले कि वही श्रीरामजी इस समय दण्डकवनमें श्रीसीताजीको खोज रहे हैं—यह सुनकर श्रीशिवजी दर्शनकी इच्छासे मुनिसे बिदा माँगकर चले, जैसा आगे लिखते हैं। यथा—'*हृदय बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।*' ☞ यह सब बात अभिप्रायसे अनुमानित होती है। इस अभिप्राय तथा इस अनुमानका प्रमाण श्रीसनकादिजीके प्रसंगमें भी मिलता है। वहाँ कहा है कि—'*जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए॥*'''''*तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी॥*' '*रामकथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी॥*' (उ० ३२) यहाँ अगस्त्यजी सातों काण्डोंकी रामकथा कहकर श्रीसनकादिसे बोले कि इस समय श्रीरामचन्द्रजी राज्य कर रहे हैं, श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और पवनकुमारसहित इस अवसरपर उपवनमें एकान्तमें हैं—यह सुनकर सनकादिजी अगस्त्यजीसे बिदा होकर श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनार्थ श्रीअवधपुरीमें आये।

नोट—६ श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि—१ यहाँ (अवतार कहा किंतु) विवाहादि लीलाएँ नहीं कहीं। क्योंकि 'रामायणमें विवाहादि लीलाएँ केवल इसी अवतारकी हैं तथा पीछे उत्तरकाण्डमें जो राजतिलककी कथा है वह भी इसी अवतारकी लीला है। और जन्महेतु तथा वनयात्रासे लेकर रावणवधतकका प्रसंग 'अनेक अवतारोंकी संकीर्णतामें इस अवतारकी कथा विचित्र रीतिसे सूक्ष्म कही है।' इसीसे यहाँ इसे प्रकट कहा।

'*दंडक बन बिचरत*' से भरतागमनसे लेकर शूर्पणखाका रावणके पास जानेतककी कथा सूचित कर दी।

—पिता-बचन—

लोग यहाँ शंका किया करते हैं कि 'महाराज दशरथजीने तो अपने मुखसे कहा नहीं तब यहाँ '*पिता बचन*' कैसे लिखा ?'

वाल्मीकीयमें तो स्पष्ट कहा है। रहा इस ग्रन्थमें सो अनुमानसे वचन स्पष्ट जान पड़ते हैं—'**मौनं सम्मतिलक्षणम्।**' सत्यसन्ध श्रीरामजीके वचनोंसे भी आज्ञा सिद्ध है। यथा—'*तात बचन पुनि मातुहित भाइ भरत अस राउ। मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ॥*' (अ० १२५)'*कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥ बरष चारिदस बासु बन मुनिब्रत बेषु अहारु॥*' (अ० ८८)'*पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥*' (अ० ५३)'*मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥ सो तुम्ह करहु करावहु मोहू।*' (अ० ३०६)'*हम पितु बचन मानि बन आए।*' (कि० २) '*पिता बचन मैं नगर न आवउँ।*' (लं० १०५) तथा '*राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥*' '*तासु बचन मेटत मन सोचू।*' (अ० २६४) इत्यादि।

अब महाराज श्रीदशरथजीके वचन सुनिये—'*रामरूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥ राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भएउ न हरषु हरासू॥*' (अ० १४९) वनयात्रा कर देनेपर उन्होंने सुमन्तजीसे कहा है कि—'*रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गए दिन चारि॥*' (८१)'*जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ ब्रत रघुराई॥ तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी॥*'—इन वचनोंसे स्पष्ट है कि उन्होंने आज्ञा दी। अगाध भक्ति और प्रेमके कारण आज्ञा देना ग्रन्थकारने स्पष्ट नहीं लिखा। भला प्रेममें वियोगके वचन मुखसे कैसे निकल सकते हैं?

पिता वचनबद्ध हो चुके थे। वे श्रीरामजीकी शपथ करके कैकेयीजीको वचन हार चुके थे। यथा—'*झूठेहुँ हमहिं दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू॥ रघुकुलरीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥*'''''*तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥*' (अ० २८)—तब वे उसके विरुद्ध कैसे कह सकते थे ? दशरथजीके सामने ही कैकेयीजीने श्रीरामजीसे कहा भी है कि—'*सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु। सकहु त आयसु धरहु सिर मेटेहु कठिन कलेसु॥*' (अ० ४०) वरका माँगना और राजाका वर देना भी कहा था। कैकेयी अम्बाद्वारा उनकी आज्ञा भी प्रथम ही श्रीरामजीको

मालूम हो गयी थी। वचनबद्ध हो जानेसे वनवासकी आज्ञा स्पष्ट हो जाती है। फिर यहाँ तो मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी उज्ज्वल कीर्ति जगमगा रही है कि इतनेहीसे (कैकेयी और वह भी सौतेली माँके कहनेमात्रसे) उन्होंने पिताकी आज्ञा मान ली, ऐसे गजबके वे पितृ-भक्त थे। उन्होंने यह न कहा कि सबके सामने तो उन्होंने हमें युवराज बनानेकी बात कही और इस समय भी हमसे तो उन्होंने कहा नहीं कि राज न देंगे, वनवास देते हैं, तब हम क्यों जायें? आपने इस परतः आज्ञाको आज्ञा मान ली। क्योंकि यदि आप उनके वचनबद्ध हो जानेपर और भरतको राज्य देनेको स्पष्ट कह देनेपर भी वनको न जाते तो अगाध भक्ति और प्रेमके कारण पिताका इस वरके ऋणसे स्पष्ट ही उद्धार न हो सकता और उनके सत्यव्रतमें भी बट्टा लग जाता। क्योंकि कैकेयीजी तो स्पष्ट शब्दोंमें कह चुकी थीं कि—

'होत प्रात मुनिबेष धरि जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं॥ ३३॥'

तथा फिर दूसरे वरके विषयमें कैकेयीसे बहुत कुछ प्रार्थना करनेपर भी जब उसने नहीं माना और अपनी हठ रखी तब उन्होंने यही कहा कि *'अब तोहि नीक लाग कर सोई।'*—इस तरह उन्होंने कैकेयीको आज्ञा सुना देनेकी भी इजाजत दे दी। यद्यपि आज्ञा सुनानेकी इजाजत होने-न-होनेका प्रभाव नहीं हो सकता।

☞ यह तो हुआ शंकाके अनुसार उसका समाधान। हमारी समझमें तो यह शंका ही निर्मूल है। *'पिता बचन'*……' का अर्थ यह क्यों न लें कि—पिताने जो कैकेयीको वचन दिया था उसके कारण राज्यको त्याग कर। इसमें कोई शंका ही नहीं रह जाती और वास्तविक अर्थ भी यही है। पुनः अध्यात्मरामायणमें इस प्रसङ्गपर जो वचन श्रीरामजीने कैकेयीजीसे कहे हैं और जो कैकेयीजीने उनसे कहे हैं; यथा—**'किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम्।'……'त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये। किञ्चित् कार्यं त्वया राम कर्तव्यं नृपतेर्हितम्॥ कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम्'……। सत्यपाशेन सम्बद्धं पितरं त्रातुमर्हसि॥ पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात् त्रायते पिता॥'** (२। ३। ५५-५८) (अर्थात्) श्रीरामजीने कैकेयीजीसे पूछा कि पिताके दुःखका क्या कारण है? उसने कहा कि दुःखके कारण तुम्हीं हो, उनके दुःखकी शान्तिके लिये तुम्हें कुछ उनका प्रिय कार्य करना होगा। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, उनको सत्यवादी बनाओ। उन्होंने मुझे दो वर दिये हैं जिनकी सफलता तुम्हारे हाथ है। सत्यपाशमें बँधे हुए अपने पिताकी रक्षा तुम्हें कर्तव्य है। 'पुत्र' शब्दका अर्थ ही है 'जो पिताकी नरकसे रक्षा करता है'। इसपर जो श्रीरामजीने कहा है, वह पुत्रोंके लिये सुवर्णाक्षरोंमें लिख लेनेकी बात है। वे कहते हैं—**'पित्रर्थे जीवितं दास्ये'……। अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः॥ उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः। उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते॥'** (२।३।६०-६१) (अर्थात्) पिताके लिये मैं प्राण दे सकता हूँ।……जो पुत्र पिताकी आज्ञाके बिना ही उनका अभीष्ट कार्य करता है वह उत्तम है। जो पिताके कहनेपर करता है वह मध्यम है और जो कहनेपर भी न करे वह विष्ठाके समान है। राम दो बात कभी नहीं कहता—**'रामो द्विर्नाभिभाषते।'** मैं आज्ञा अवश्य पूर्ण करूँगा—इन वचनोंसे शंका करनेवालोंको उपदेश लेना चाहिये कि 'उत्तम' पुत्रका यही लक्षण है जो श्रीरामजीने अपने आचरणसे दिखाया है। उन्होंने केवल वचनबद्ध होनेसे ही पिताकी आज्ञाका आशय समझकर उनकी आज्ञाका पालन किया। मर्यादापुरुषोत्तम हमलोगोंको आचरणद्वारा उपदेश दे रहे हैं।

दो०—हृदय बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त* रूप अवतरेउ प्रभु गएँ† जान सबु कोइ॥

---

* गुपुत—१७२२, १७६२, छ०, कोदवराम। गुप्त—१६६१, १७०४। † गए—छ०, कोदवराम। गये—१७२१, १७६२।

सो०—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥ ४८॥

शब्दार्थ—**गएँ**=जानेसे। **छोभु** (क्षोभ)=खलबली, उद्वेग, चित्तकी विभिन्न गति होना। स्थिर न होना।

अर्थ—श्रीशिवजी हृदयमें विचारते हुए चले जाते हैं कि किस प्रकार (प्रभुके) दर्शन हों। प्रभु (परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी) ने गुप्तरूपसे अवतार लिया है। (वहाँ उनके समीप मेरे) जानेसे सब लोग उन्हें जान जायँगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि शङ्करजीके हृदयमें बड़ी ही खलबली (पड़ी) है, दर्शनकी लालसासे नेत्र ललचा रहे हैं, (परंतु) मनमें डर (भी) है। सतीजी इस मर्म अर्थात् शिवजीके हृदयके रहस्यको—उनकी खलबलीको नहीं जानतीं॥ ४८॥

टिप्पणी—१ *'हृदय बिचारत जात हर'* हृदयमें विचारते चले जाते हैं, इस कथनका तात्पर्य यह है कि यह बात प्रकट करनेयोग्य नहीं है, इसीसे सतीजीसे भी नहीं कहते, मन-ही-मन विचार कर रहे हैं। २-*'केहि बिधि दरसनु होइ'* से जनाया कि दर्शनकी कोई विधि नहीं बैठती। यही बात आगे कहते हैं,—*'गुप्त रूप......'*।

☞ नोट—१ भगवान् शङ्कर परम भागवत हैं। वैष्णवशिरोमणि हैं; यथा—'**वैष्णवानां यथा शम्भुः**'। आप श्रीरामजीके दर्शनोंके लिये अवसरपर कभी नहीं चूकते। किसी-न-किसी विधिसे अवश्य दर्शनोंको आया-जाया करते हैं, प्रभुके जन्मपर शिशु-रामके दर्शनोंके लिये आगमी बनकर आये। यथा—*'अवध आजु आगमी एकु आयो। करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परचो पायो॥ १॥ बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।'*, (गीतावली बा० १४) *'औरो एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥ काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहिं कोऊ॥ परमानंद प्रेमसुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥'* (बा० १९६) कभी योगी बने, कभी अपने निजरूपसे दर्शन करने आये। विवाह, रावण-वध और राज्याभिषेक आदि सुअवसरोंपर आपका श्रीरामदर्शनार्थ जाना गीतावली और रामचरितमानसमें बराबर पाया जाता है।

इस समय दण्डकारण्यसे ही आपका कैलासको ओर जाना हो रहा है। और प्रभु भी इस समय दण्डकवनहीमें विचर रहे हैं। इतने निकट होनेपर भी अपने इष्टदेवका दर्शन न करें—यह मन मानता नहीं। यदि दर्शन करनेको समीप जायँ और उनको प्रणाम न करें तो प्रभुका अनादर होगा—अपमान होगा। यदि जाकर उनको प्रणाम करते हैं तो सब जान जायँगे कि ये परब्रह्म परमेश्वर हैं, शिवजीके इष्ट हैं, तभी तो शिवजीने इनको प्रणाम किया। इससे स्वामीको संकोच होगा।

इस प्रकार शङ्करजी असमंजसमें पड़े हैं। स्वामीको संकोच न होने देना—यह उत्तम सेवकका धर्म है। देखिये, भरतजीके विषयमें कहा है कि *'भरत सरिस को राम सनेही'* सो उन्हीं भरतजीके वाक्य हैं कि *'जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥' 'अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥'* (अ० २६८-२६९) 'श्रीशङ्करजीका भी यही सिद्धान्त यहाँ सिद्ध होता है, वे भी स्वामीको संकोचमें डालना सेवक-स्वामि धर्मके विरुद्ध मानते हैं—इसीलिये अनेक युक्तियाँ मनमें सोचते हैं पर कोई युक्ति ठीक नहीं जँचती।

टिप्पणी—२ *'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सब कोइ।'* इति। (क) अर्थात् परब्रह्मने अपना ऐश्वर्य छिपाकर मनुष्यरूपसे अवतार लिया है। वे अपना ऐश्वर्य प्रकट करना नहीं चाहते। (रघुवंशमें इक्ष्वाकु, मान्धाता, रघु और दिलीप आदि एक-से-एक बड़े-बड़े प्रतापी, तेजस्वी और शरणागतरक्षक तथा धर्मात्मा राजा हुए हैं। ब्रह्मने उसी कुलमें अवतार लिया जिसमें आपके बल, पराक्रम, पुरुषार्थ, तेज और प्रताप

गएँ—१६६१, १७०४। ☞ अनुस्वारकी उपयोगिता यहाँ अर्थ लगानेमें देखिये। अनुस्वार न होता तो 'जान गये' ऐसा ही अर्थ प्रायः लगाया जाता।

आदिको देखकर किसीको आपके ब्रह्म होनेका गुमान भी न हो; सब आपको अवधेशकुमार ही समझें। बाल-लीला, स्त्री-वियोग-विरहमें विलापादि नरनाट्य इसीलिये हैं कि कोई भाँप न सके कि ये ब्रह्म हैं।) गुप्तरूपसे क्यों अवतरे ? अपनेको प्रकट क्यों नहीं करते ? यह छिपाव क्यों ?—इसका कारण अगली अर्धालीमें देते हैं—*'रावन मरन मनुज कर जाचा।'* (ख) *'गएँ जान सबु कोइ'* का भाव कि अभी सब कोई नहीं जानता। हमारे जानेसे उनका ऐश्वर्य सब कोई जान लेगा। इस तरह *'गुप्तरूप''''''कोइ'* का भाव यह हुआ कि हमारा प्रभुके पास जाना उनकी रुचिके प्रतिकूल है और विधिके भी प्रतिकूल है। क्योंकि उनका वचन असत्य हो जायगा।

टिप्पणी—३ *'संकर उर अति छोभु''''''*' इति। विचार करनेमें 'हर' नाम दिया। जीवोंके क्लेशके हरनेवाले हैं। अपने भक्त रावणका भी उद्धार हो और समस्त प्राणियोंका संकट मिटे, पृथ्वीका भार उतरे—इसीसे विचार करते हैं। 'हर' संहारके देवता हैं। राक्षसोंका संहार भी आपको इष्ट है। अवतार गुप्त रखनेसे लोकमात्रका हित है, रावणादिका और देवताओं, मुनि, विप्र, धरणी आदि सभीका हित चाहते हैं, अतः शङ्कर नाम भी दिया। स्वयं असमंजसमें पड़कर भी परोपकार ही करते हैं।

टिप्पणी—४ *'सती न जानहिं मरमु सोइ'* इति। यहाँ दिखाया कि शङ्करजीके हृदयकी बात सतीजी भी नहीं जानतीं और आगे बतायेंगे कि सतीजीके हृदयकी बात शङ्करजी जान गये। यथा—*'जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥'* (५१) [सतीजीने मन लगाकर कथा सुनी होती तो कुछ मर्म समझतीं। वि० त्रि०]

टिप्पणी—५ *'तुलसी दरसन लोभु मन डरु''''''''*' इति। (क) ☞ सुन्दर अवसर पाकर कवि चूकता नहीं, अपना सम्बन्ध लगा ही देता है। वैसे ही यहाँ भी दर्शनके लोभमें आप भी शामिल हो गये। अर्थात् हमको भी दर्शनकी लालसा है, हमारे भी नेत्र लालायित हो रहे हैं। ग्रन्थकारकी अपना सम्बन्ध लगानेकी रीति है। उदाहरण यथा—*'मन संतोषे सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस। सकल तनय चिरजीवहु तुलसिदासके ईस॥'* (१९६)*'तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भक्ति दान बर माँगि लये।'* (गीतावली) इत्यादि।

(ख) *'मन डरु'* इति। ऐश्वर्य प्रकट करना प्रभुकी इच्छाके प्रतिकूल होगा। ऐश्वर्य खुलनेका डर है। इससे प्रभुको संकोच होगा; क्योंकि यदि ऐश्वर्य प्रकट हो जानेपर रावणका वध करें तो अपने भक्त ब्रह्माका वचन असत्य हो जायगा, उनकी प्रतिष्ठा जाती रहेगी।

(ग) *'लोचन लालची'* इति। दर्शनका लालच तो मन और लोचन दोनोंको ही होता है; यथा—*'पितु दरसन लालचु मन माहीं॥'* (बा० ३०७)*'देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥'* (बा० २३२)*'दरस लागि लोचन अकुलानें।'* (२२९) इत्यादि। पर यहाँ मन ऐश्वर्य खुलनेको डर रहा है, इसीसे यहाँ मनका ललचाना न कहा, केवल नेत्रोंका ललचाना कहा।

नोट—२ श्रीरामजी क्यों अपनेको प्रकट नहीं करना चाहते यह तो उनके अतिरिक्त कोई नहीं जानता। अवतार किन कारणोंसे होता है, यह भी प्रायः कोई नहीं जान सकता। यथा—*'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥'*(१।१२१) यदि कहें कि रावण-वधके ही लिये अवतार हुआ तो उसका वध तो साठ वर्षकी भी अवस्था उनकी न थी तभी कर डाला था। फिर कम-से-कम ग्यारह हजार वर्षतक वे क्यों श्रीअयोध्याका राज्य करते रहे? रावण-वध करके चले जाना था, जैसे कि हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु आदिके लिये अवतार लेकर चले गये थे। रावण-वधके पश्चात् भी तो उन्होंने अपने अवतारको अन्ततक गुप्त ही रखा है। खास-खास भक्तोंको ही जनाया है। तब रावण-वधके लिये ही ऐश्वर्यका गुप्त रखना कैसे कहा जाय ? दोहा ४८ में यहाँ और आगे भी टिप्पणियों और लेखोंमें जो यह कहा है कि ईश्वरता प्रकट होनेसे विधिका वचन असत्य हो जायगा—यदि इसका यह तात्पर्य है कि तब रावणका वध न हो सकेगा तो हमें इस भावकी यथार्थतामें सन्देह होता है। अतः हमें *'बिधि बचन'* शब्दपर विचार करना होगा। रावणने वर माँगा है कि—*'हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥'* (१।१७७) और ब्रह्माजीने 'एवमस्तु'

कहा। फिर यह भी कहते हैं कि *'रावन मरन मनुज कर जाँचा'* और लङ्काकाण्डमें रावणने अङ्गदसे कहा है कि—*'नर कें कर बध आपन बाँची। हँसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥'* (६। २९)

इन तीनों स्थलोंमें कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं है कि भगवान्, देवता, ब्रह्म आदि कोई मनुष्य या वानररूप न धारण करें; यदि वे मनुष्य या वानर बनकर आवें तो मैं न मरूँ। जहाँतक महात्माओं, विद्वानोंके सत्सङ्गसे मालूम हुआ कहीं किसी ग्रन्थमें रावणने यह शर्त नहीं लगायी और न ब्रह्माजीने ऐसा वर दिया। तब यदि वह जान भी जाय कि ये ब्रह्म ही हैं तो भी उसके वधमें बाधा कैसे पड़ सकती है? फिर जिन रामायणोंमें ऐसा उल्लेख है कि रावणको निश्चय हो गया था कि ये ब्रह्म ही हैं (जैसे कि अध्यात्मके कल्पके रावणको हुआ) तो उन कल्पोंमें रावणका वध फिर क्योंकर हुआ? रावण तो यह चाहता ही था कि उनके हाथोंसे बध हो, जिसमें फिर संसारमें न पड़ना हो। फिर यह भी देखिये कि अवतार गुप्त कहाँ रहा। विभीषणजी, मन्दोदरीजी, माल्यवान्, मारीच, कुम्भकर्ण—ये सभी तो जानते थे और सबने रावणसे कहा भी। 'नर या मनुज' का अर्थ यही है कि जो शिशु, कुमार, किशोर, पौगण्ड आदि अवस्थाओंको प्राप्त हो, दुःख-सुखमें उनके अनुकूल व्यवहार करे, जिसके श्वासोच्छ्वास-निमेष आदि मनुष्यमें देख पड़नेवाले लक्षण देखनेमें आते हों और प्रभु वैसा ही सब नर-नाट्य कर ही रहे हैं तब रावणका वध कैसे न होगा ? शिवजी कह रहे हैं कि—*'प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साँचा'* ब्रह्माके वचन सत्य करना चाहते हैं। वे यह नहीं कहते कि ऐश्वर्य खुल जानेसे विधिके वचन असत्य हो जायँगे। ब्रह्माके वचन सत्य करनेके लिये ही वे मनुष्यका स्वाँग (विलाप आदि) कर रहे हैं—इतना ही मात्र यहाँ अभिप्रेत है। नर-नाट्यमात्रसे विधिके वचन सत्य हो जाते हैं; क्योंकि ब्रह्ममें तो ये अवस्थाएँ और विकार होते ही नहीं।

☞ हमारी समझमें *'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु……'* का सम्बन्ध इन चौपाइयोंसे नहीं है, इसीसे ग्रन्थकारने भी एक सोरठा बीचमें देकर दोनोंको पृथक् कर दिया है। गुप्त रखनेका कारण एक तो यही है कि तब नर-नाट्यकी शोभा न रह जायगी और लीलाका रस भङ्ग हो जायगा। ईश्वरका चरित होनेसे वह मनुष्योंके लिये अनुकरणीय न होगा और आदर्श मनुष्य, आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई इत्यादि होनेसे वह मनुष्योंके लिये अनुकरणीय होगा।

रावन मरनु मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥ १॥
जौं नहिं जाउँ रहै पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥ २॥

अर्थ—रावणने अपना मरण (मृत्यु) मनुष्यके हाथसे माँगा है। प्रभु ब्रह्माके वचनको सत्य करना चाहते हैं॥ १॥ यदि मैं (दर्शनको) नहीं जाता तो पछतावा (पश्चात्ताप) बना रह जायगा। (शङ्करजी इस प्रकार अनेक) विचार कर रहे हैं पर कुछ 'बनाव' (युक्ति वा, बनाया) नहीं बनता॥ २॥

टिप्पणी—१ *'रावन मरनु मनुज कर जाचा।……'* इति। *'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु'* का (अर्थात् अपना ऐश्वर्य छिपाये हुए, प्राकृत मनुष्य बने हुए चरित्र क्यों कर रहे हैं, इसका) कारण यहाँ खोलकर कहते हैं। [शिवजी मन-ही-मन सोच रहे हैं कि—'रावणकी तपस्यापर रीझकर ब्रह्माजीने उससे वर माँगनेको कहा तब उसने वर माँगा कि—*'हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥'* (बा० १७७) और ब्रह्माजीने उसको यह वर दिया, यथा—*'एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा॥'* (१७७) ☞ रावणने तो वर माँगा कि *'बानर'* और *'मनुज'* इन दो जातियोंको छोड़कर किसी औरसे मेरी मृत्यु न हो; क्योंकि वह जानता था कि नर और वानर तो हमारे नित्यके आहार हैं, ये तुच्छ जन्तु हमारा क्या कर सकते हैं। पर यहाँ कहते हैं कि रावणने अपना मरण *'मनुज'* के हाथ माँगा है। इसका सामञ्जस्य इस प्रकार होता है कि रावणने दोको छोड़ा; विधाताने *'मनुज'* से निश्चय कर दिया। कह दिया कि इन दोको छोड़ अन्यसे मृत्यु न होगी, इनमेंसे भी *'मनुज'* से होगी—यह कह उसके ललाटमें *'मनुज'* के हाथ मृत्यु होना लिख दिया। इसका प्रमाण लं० २९ (२) *'नर कें कर आपन बध

बाँची। हँसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥' में मिलता है तथा यहाँ केवल *'मनुज'* शब्द देनेसे *'हँसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची'* से स्पष्ट है कि वह ब्रह्माके वचनको असत्य करना चाहता था। वर पाकर उसने समस्त देवताओं आदिको जीत लिया; यथा—*'भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र। मंडलीक मनि रावन राज करै निज मंत्र॥'* (बा० १८०) इन्द्रादि देवता तो उसके बन्दीखानेमें सड़ने लगे, ब्रह्मा और शिव भी उससे डरते थे। भगवान् विष्णु भी उसका कुछ न बिगाड़ सके; यथा—*'की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥'* (अ० २९) तब भला बेचारे मनुष्य किस गिनतीमें हैं?—यह विचार कर प्रभुने स्वयं 'मनुजरूप' धारणकर रावण-वध करनेका निश्चय किया।] 'मनुजरूप' धारण किया और प्राकृत मनुष्योंके-से चरित्र कर रहे हैं, क्योंकि रावणको मारना है—(कोई और मनुष्य उसका वध नहीं कर सकता)—जिसमें ब्रह्माके वचन सत्य हो जायँ कि रावण मनुजके हाथ मारा गया।

नोट—१ मुं० गुरुसहाय लाल तथा पं० शिवलाल पाठकजी *'मनुज'* का अर्थ 'मनुसे उत्पन्न' करते हैं। मयंककार लिखते हैं कि—'रामचन्द्रजी साधारण मनुष्य नहीं हैं। अतएव उनको *'मनुज'* कहना पाप है। वे मनु-शतरूपाजीके प्रेमसे उत्पन्न हुए, अतएव उनको *'मनुज'* कहना योग्य है, परन्तु साधारण भावसे नहीं। रावणके वर माँगनेमें भी चतुरता है। वह *'मनुज'* से मृत्यु माँगता है, क्योंकि प्रभुने मनुको वर दिया है कि हम तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लेंगे।'—*'होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।'* (५१)

टिप्पणी—२ *'प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा।'* इति। *'प्रभु'* कहनेका भाव कि समर्थ होकर भी उन्होंने ऐसी हीनता धारण की कि नर बने और प्राकृत नरचरित—विलाप आदि किये। *'कीन्ह चह साचा'* का भाव कि प्रभु अपने भक्त ब्रह्माके वचनको सत्य करना चाहते हैं तो हमको वह काम करना उचित नहीं, जिसमें उनका वचन असत्य हो जाय। ☞यद्यपि वर देनेमें शिवजी भी शामिल थे; यथा—*'मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा।'* तथापि वे अपना नाम यहाँ नहीं लेते। *'बिधि बचन'* सत्य करना चाहते हैं—इससे स्पष्ट कर दिया कि ब्रह्माने मनुष्यके हाथ मृत्युका निश्चय किया था।

नोट—२ यहाँ *'प्रभु'* पद बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जिससे जनाते हैं कि आप रावण-वधके लिये वैसे ही समर्थ थे, अवतार लेनेकी भी आवश्यकता न थी। यथा—*'जाकें डरु अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥'* (सुं० २२)*'उमा काल मरु जाकी ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥'* (लं० १०१)*'प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई। केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई॥'* (लं० ११३) तथा *'भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई॥'* (अ० २८) जब आपके भृकुटिके इशारेमात्रसे *'सृष्टि'* लय होती है, तब भला रावणका वध कितनी बात थी? प्रभुने केवल ब्रह्माको बड़ाई (यश) देनी चाही, उनकी बात रखनी चाही; इसलिये *'मनुज'* रूप और उसका स्वाँग धारण किया। यहाँतक कि उन्होंने ब्रह्मादिसे भी अपना ऐश्वर्य छिपाना चाहा।

देखिये, आजकल भी चार-छः रुपये वेतन पानेवाला एक चौकीदार भी यदि कुछ अनुचित भी कर्म करता है तो भी ऊपरके कर्मचारी, राज्याधिकारी उसकी बात रखते हैं। कलेक्टर, मैजिस्ट्रेट, गवर्नर, वाइसराय आदि यदि कभी कोई अन्याय कर डालते हैं तो उसपर जनताकी हाय-हाय सुनकर भी राजा उसको अन्यथा नहीं करता। ओडायर और कर्जनके कर्म सभी जानते हैं, जलियानवाला बागका हाल छिपानेसे भी न छिपा इत्यादि। पर हाय-हायसे हुआ क्या ? यह क्यों ? केवल राज्यकी मान-मर्यादाकी स्थितिके लिये।

जब प्राकृत राजाओंका यह हाल है तब भला अखिलब्रह्माण्डनायकमें यह (अपने परम अधिकारी, कर्मचारियों और भक्तोंके वरदानके वाक्योंकी रक्षा वा पूर्ति करनेका) गुण होनेमें आश्चर्य ही क्या ? वे तो श्रुतिसेतुपालक हैं ही, सबकी मर्यादा क्यों न रखेंगे ? ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि उन्हींके बनाये हुए अधिकारी ही तो हैं; यथा—*'हरिहरहि हरता बिधिहि बिधिता श्रियहि श्रियता जेहि दई। सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई॥'* (वि० १३५) यदि ब्रह्माका वचन सत्य न हो तो कोई तप आदि करेगा क्यों? तथा उनको मानेगा क्यों?

टिप्पणी—३ *'जौं नहिं जाउँ रहै पछितावा।'* इति। ☞यहाँतक शिवजीके विचारकी सीमा दिखायी, उनके हृदयकी खलबली कही। प्रथम कहा था कि *'हृदय बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ'* यह विचारका उपक्रम है और *'करत बिचार न बनत बनावा'* यहाँ उपसंहार है। *'केहि बिधि दरसनु होइ'* से *'रहै पछितावा'* तक सब हृदयके विचार हैं। प्रथम कह आये कि *'गएँ जान सब कोइ'* जानेसे सब कोई उनको जान जायगा। और न जानेसे क्या हानि होगी सो यहाँ कहते हैं कि *'रहै पछितावा'*। पछतावा रह जायगा कि 'स्वामीके इतने समीप पहुँचकर भी दर्शन न किये, चले आये। वनमें एकान्तका दर्शन था और वह भी बिना परिश्रमका, अनायास, ऐसा भी सुन्दर अवसर हाथसे निकल जाने दिया।' (वै०) पुनः, *'रहै पछितावा'* का भाव कि वह पश्चात्ताप किस कामका ? व्यर्थ ही तो होगा ? यथा—*'समय चुकें पुनि का पछितानें।'* (बा० २६१) अभागे ही पीछे पछताते हैं; यथा—*'फिरि पछितैहसि अंत अभागी।'* (अ० ३६) *'अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥ मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई।'* (अ० १४४)—यह पछतानेका एक स्वरूप है—(यहाँतक मनमें शंका-समाधानका उठना 'वितर्क संचारी भाव' है। ब्रह्माके वचन सत्य करनेके लिये *'ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत'* चरणोंसे वनके काँटोंमें घूम रहे हैं, ऐसी भक्तानुग्रहकारिणी अवस्थामें यदि भक्तवत्सल प्रभुकी इस अवस्थाकी झाँकीका दर्शन न किया तो पछतावा रह जायगा। वि० त्रि०)

टिप्पणी—४ *'न बनत बनावा'* इति। अर्थात् न तो दर्शन करते बने और न दर्शन छोड़ते ही बने। *बनावा*=बनाव, युक्ति तदबीर।=बनाया, बनाते। बनाये न बनना मुहावरा है अर्थात् कोई एक बात निश्चित नहीं हो पाती कि जायँ या न जायँ। पुनः भाव कि पूर्व कहा था *'केहि बिधि दरसनु होइ'* अर्थात् दर्शनकी *'बिधि'* पर विचार करते चले। और यहाँ कहते हैं—*'करत बिचार न बनत बनावा॥'* अर्थात् विधिका विचार करते तो हैं पर दर्शनकी *'बिधि'* का बनाव नहीं बनता। कोई युक्ति मनमें नहीं बैठती। ☞मिलान कीजिये—*'एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥'* (अ० २५३)

एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेहीं समय जाइ दससीसा॥ ३॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भएउ तुरत सो कपट कुरंगा॥ ४॥

अर्थ—इस प्रकार शिवजी सोचके वश हुए। अर्थात् चिन्ताग्रस्त हो गये। उसी समय नीच रावणने जाकर नीच मारीचको साथ लिया। वह (मारीच) तुरत ही मायाका हिरन बन गया। ३-४।

टिप्पणी—१ *'एहि बिधि भए सोच बस ईसा'* इति। (क)—*'एहि बिधि'* अर्थात् जैसा *'हृदयँ बिचारत जात'* से यहाँतक कह आये उस प्रकार। [दूसरा अर्थ एक यों भी हो सकता है कि—'इस *'बिधि'* के सोचके वश हो गये।'] (ख)—*'भए सोच बस'*—ब्रह्म राम (अपने इष्टदेव) के दर्शनकी विधि न बैठी, कोई युक्ति मनमें न जँची यह बड़े सोचकी बात है ही। अतः सोचवश होना कहा। (ग)—[*'ईसा'* इति। ईश एवं ईश्वर शब्द गोस्वामीजीने प्रायः महादेवजीके लिये प्रयुक्त किया है; यथा—*'भएउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥'* (१।८७)*'मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई।'* (७।४९) इत्यादि। ईशका अर्थ है 'ईश्वर' 'समर्थ'। यहाँ यह शब्द सामर्थ्य सूचित करता है। 'ईश', 'ईश्वर' और 'ईशान' ये तीनों शिवजीके नाम अमरकोषमें मिलते हैं; यथा—'**शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः। ईश्वरः शर्व ईशान**.......।' (१।१।३२) ईश ऐश्वर्य धातु है। '**ईष्टे तच्छील ईशानः**।' अर्थात् जो समर्थ या ऐश्वर्यवान् होता है वही ईश, ईश्वर और ईशान है। *'सोचबस'* के साथ 'ईश'—शब्द बड़ा ही मजेदार है, रोचक है, सुन्दर है। भाव यह है कि शिवजी-ऐसे समर्थ भी इस समय 'सोच' के फंदेमें पड़ गये हैं, उससे छुटकारा नहीं पाते, सोचमें निमग्न हैं, जैसे कोई समर्थ किसी शत्रुके वशमें अनायास पड़ जाय और उससे छूटनेका उपाय न सूझ पड़े। *'बस भए'* से जनाते हैं कि बहुत देरतक सोचमें मग्न रहे।] *सोच*=असमंजसपूर्वक विचार। (वै०)

टिप्पणी—२ *'तेहीं समय जाइ दससीसा।'*.......' इति। (क) *'तेहीं समय'* कहकर पूर्वप्रसंगसे सम्बन्ध मिलाते हैं। इस तरह कि—*'तेहि अवसर'*....... *। पिता बचन तजि राज उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥'*

(४८।७-८)''''''''*'तेहीं समय'''''''' ।'* अर्थात् जब भगवान् रामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें उदासी वेषसे सुखपूर्वक विचरण कर रहे थे, उसी समय रावणने सीताजीका हरण किया। *'दंडक बन बिचरत''''''''* ' तक कहकर वक्ता बीचमें शिवजीके हृदयका विचार और सोच वर्णन करने लगे थे, क्योंकि ग्रन्थकार तो एक ही हैं। अब पुनः वहींसे प्रसंग उठाते हैं। [*'दससीसा'* से उसकी निर्भयता दर्शित की। यथा—*'हैं काके द्वै सीस ईसके जो हठि जन की सीम चरै।'* (वि० १३७। वि० त्रि०)]

टिप्पणी—३ *'लीन्ह नीच मारीचहि संगा।'* इति। (क) उसी समय दशशीशने जाकर मारीचको संगमें लिया, इस कथनसे पाया गया कि रावण लङ्कासे मारीचके स्थानपर अकेला आया। यथा—*'चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधुतट जहवाँ॥'* (अ० २३)*'कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आएहु तात।'* (अ० २४)। ☞(ख) *'नीच'* विशेषण रावण और मारीच दोनोंमें लगता है। वक्ताओंने यह शब्द रावणके लिये अरण्य और लङ्काकाण्डमें भी प्रयुक्त किया है। यथा—*'दसमुख गएउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथरत नीचा॥'* (अ० २४) तथा *'बानप्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा'।* (लं० ३५) (मंदोदरीवाक्य रावणप्रति)। चोरीसे परस्त्रीको हरण करने चला, इसीसे रावणको नीच कहा। परस्त्रीहरण करना नीचता है।

नोट—*'नीच'* शब्द यहाँ मारीच शब्दसे सटा हुआ रखा है। इसलिये *'नीच'* विशेषण मारीचसे ही अधिक सम्बन्ध रखता हुआ जान पड़ता है। दोहावलीमें भी मारीचको गोस्वामीजीने *'नीच'* विशेषण दिया है; यथा—*'सुकृत न सुकृती परिहरै कपट न कपटी नीच। मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच॥'* (३४१) इससे *'नीच'* को यहाँ भी मारीचका विशेषण माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु अरण्यकाण्डमें गोस्वामीजीने उसके हृदयके श्रीरामविषयक अटल प्रेम इत्यादिकी भूरि-भूरि प्रशंसा एक छन्द, एक दोहा और कुछ चौपाइयोंमें की है; यथा—*'अस जिय जानि दसानन संगा'* से *'धन्य न मो सम आन॥'* (२६) तक इतना ही नहीं किंतु अपने इन वचनोंकी पुष्टिमें श्रीरामजीका, उसके अन्तःकरणका प्रेम पहचानकर, उसको मुनि-दुर्लभ-गति देना कहा है; यथा—*'अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥'* (२७) अन्तमें उसने प्रेमपूर्वक रामजीका स्मरण करते हुए प्राण छोड़ा है, इससे जान पड़ता है कि वह पूर्णरीत्या साधु हो गया था और इसी कारणसे वह समुद्रके इसी पार सुन्दर आश्रम बनाकर एकान्तमें भजन करता था। यथा—'**शरेण मुक्तो रामस्य कथञ्चित् प्राप्य जीवितम्। इह प्रव्राजितो युक्तस्तापसोऽहं समाहितः॥**' (वाल्मी० ३।३९।१३) (अर्थात् श्रीरामजीके बाणसे किसी तरह बचकर विरक्त होकर मैं तपमें स्थित रहता हूँ। यह उसने रावणसे कहा है।) रावणका मामा होते हुए भी उसके साथ नहीं रहा। और इसीसे उसने रावणको सदुपदेश भी किया—तब उसको *'नीच'* क्यों कहा ? इसपर कहा जा सकता है कि—'एक तो इसने नीच कार्यमें नीच रावणका साथ दिया और बना है साधु! दूसरे, इसने श्रीरामजीका किञ्चित् उपकार न माना कि एक बार तो सिद्धाश्रममें उन्होंने जब यह भाई और सेनासहित उनसे लड़ने आया था, इसके भाईको तो बाणसे भस्म कर दिया था पर इसको बिना फलके बाणसे उड़ाकर इसके प्राण बचा दिये थे। यथा—*'बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥'* (१।२१०) फिर भी यह दूसरी बार पञ्चवटीमें इनको साधारण तपस्वी समझकर और पूर्व-वैर स्मरण करके अपने दो साथियोंसहित भयंकर महामृग बनकर उनको मार डालनेके विचारसे उनके आश्रमके पास गया। श्रीरामजीने इसके साथियोंको तो मार डाला; पर यह किसी सूरतसे अपने प्राण बचाकर भाग आया। यह बात उसने स्वयं रावणसे (वाल्मी० ३।३९।१—१४ में) कही है। अध्यात्म० ३, सर्ग ६ में भी कहा है कि जब मैं तीखे सींगोंवाला मृग बनकर पञ्चवटीमें गया था तब उन्होंने एक ऐसा बाण छोड़ा कि मेरा हृदय विंध गया और मैं आकाशमें चक्कर काटता हुआ समुद्रमें आ गिरा। तबसे राज, रत्न, रमणी, रथ आदि (के प्रथम अक्षर 'र') के कानोंमें पड़ते ही भयभीत हो जाता हूँ; इसलिये तबसे मैं 'राम' का ही सोते-जागते निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ। यथा—'**मां**

विलोक्य शरमेकमक्षिपत्॥ २०॥ तेन विद्धहृदयोऽहमुद्भ्रमन् राक्षसेन्द्र पतितोऽस्मि सागरे।''''''''राममेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः॥ राजरत्नरमणीरथादिकं श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत्॥' (२२)—तब कृतघ्नतासे अधिक नीचता क्या होगी?

'यदि कहो कि वह तो परवश था, परवशतासे उसने ऐसा किया, ऐसा न करता तो रावण उसे मार ही डालता ? यथा—'*उभय भाँति देखा निज मरना।''''''''उतरु देत मोहि बधब अभागे॥ कस न मरौं रघुपति सर लागे।*' तो उसका उत्तर भी ग्रन्थकारने एक ही शब्दमें दे दिया है। वह यह कि '*भएउ तुरत सो कपट कुरंगा।*' अर्थात् उसमें नीचता यह थी कि कपटमृग बननेमें किंचित् विलम्ब न किया, तुरन्त ही कपटमृग बन गया और फिर छल भी किया कि एक तो भगवान्‌को छलसे दूर ले गया, दूसरे बाण लगनेपर श्रीरामजीके स्वरमें लक्ष्मणजीका नाम पुकारा, जिसमें वे वहाँसे चल दें, श्रीजानकीजी अकेली रह जायँ तो रावणका काम बन जाय। यथा—'*प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गएउ लै दूरी॥''''''''लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा॥*' (अ० २६)। ऐसा न करता तो सीता-वियोग न होता। इसने पहले तो कपटरूप धरा, फिर मरते समय कपटके वचन भी कहे। अतएव '*नीच*' कहा।

यदि कहो कि 'उसे बदला भी तो लेना था?' तो उत्तर यह है कि बदला लेना चाहिये था श्रीरामजीसे, सो तो बना नहीं; उलटे उसने जानकीजीके साथ नीचता की।

उपर्युक्त विचारोंको लेकर यह कहना पड़ता है कि पूर्व तो यह अवश्य नीच था, पर विरक्त होनेके पश्चात् उसने तीन काम नीचताके किये—रावणका साथ दिया, छलकर श्रीराम-लक्ष्मणको आश्रमसे दूर ले जानेके लिये मृग बना और लक्ष्मणजीका नाम श्रीरामजीके स्वरमें पुकारा। यह क्यों किया ? इसका कारण स्पष्ट है कि वह रावणके राज्यमें रहता है, रावणका मामा है, रावणका जन्मभर नमक खाया है। यदि उसका साथ छोड़कर वह रामजीकी शरण आ गया होता, उसके राज्यमें न रहता तो रावण उसका कुछ कर न सकता था। पर उसने पूर्व ऐसा न किया। उसका यह परिणाम हुआ कि उसे रावणका साथ देना पड़ा। इसी तरह भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य आदिको दुर्योधनका साथ देना पड़ा था और विदुरजी अन्यायका प्रारम्भ देख दुर्योधनको छोड़ चल ही दिये, इससे वे बच गये। भीष्मादिने जानते हुए कि दुर्योधन अधर्म कर रहा है, उसका नमक खानेसे उसीका साथ दिया। दूसरे, रावण-वध करनेपर तैयार है, यदि वह आज्ञापालन नहीं करता। तब उसने स्वामीका कार्य करते हुए भगवान्‌के हाथसे मरनेका दृढ़ निश्चय किया। रावणसे यह कहकर कि राजन्! मैं आपकी आज्ञापालन करूँगा—'**राजन् करोम्याज्ञां तव प्रभो।**' (अध्याय ३। ६।७) फिर वैसा न करता तो भी स्वामिद्रोही, कृतघ्न, असत्यवादी होनेका कलंक लगता। रावणने जो-जो कहा वही उसने किया। श्रीराम-लक्ष्मणको आश्रमसे दूर ले जानेको भी रावणने कहा था—'**विचित्रमृगरूपधृक्। रामं सलक्ष्मणं शीघ्रमाश्रमादतिदूरतः॥ आक्रम्य''''''''**॥' (६।३३-३४) लक्ष्मणजीको आश्रमसे दूर ले जानेका यही उपाय था जो उसने किया। रावणसे झूठ बोलकर प्राणोंके लोभसे श्रीरामजीकी शरण जाना उसने स्वीकार न किया, वरंच उनके हाथसे मरकर तुरत भव-पार होना उत्तम समझा, न जाने जीवित रहनेपर फिर घोर तामसी वृत्ति आ जाये, तब तो भवमें ही पड़ा रह जाना होगा। '*तुरत*' मृग बननेका कारण उसका अभङ्ग प्रेम भी है। आगे टिप्पणी—४ में देखिये। स्वभाव बड़ा बलवान् है। साधु होनेपर भी संगवश वह अपना प्रभाव प्रकट कर देता है—प्रकृतिवश उसने यह काम किया, इसमें उसका दोष क्षम्य है। या यह कह सकते हैं कि लीलाकार्यके अनुकूल उसकी बुद्धि हो गयी, इससे उसने ऐसा किया।

टिप्पणी—४ '*भएउ तुरत सो कपट कुरंगा*' इति। (क) '*तुरत*'। यदि '*नीच*' विशेषण मारीचका मानें तो इसका भाव ऊपर नोटमें आ गया। अर्थात् 'तुरंत' मायामृग बन गया किंचित् विलम्ब न किया; यह नीचताका परिचय है। दूसरा भाव 'तुरंत' का यह है कि उसके हृदयमें श्रीरामदर्शनकी तथा उनके हाथसे मरनेकी उत्कण्ठा और उत्साह है, जैसा कि अरण्यकाण्डमें कहा है; यथा—'*तब ताकिसि रघुनायक सरना॥*

कस न मरौं रघुपति सर लागे॥ अस जिय जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥ मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥'''''''' फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥' (२६)। ☞बालकाण्डमें उसे *'नीच'* विशेषण दिया और अरण्यकाण्डमें लिखते हैं कि उसके हृदयमें श्रीरामजीके चरणोंमें *'अभंग'* अनुराग है। फिर यह भी कहा है कि श्रीरामजीने उसके अन्तः-करणका प्रेम पहचानकर उसे मुनिदुर्लभ गति दी। यथा—*'अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनिदुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥'* (अ० २७) यह विरोधाभास-सा है ? इसका समाधान यह है कि मरते समय भी जो उसने नीचता की कि श्रीरामजीका-सा स्वर बनाकर लक्ष्मणजीको पुकारा सो यह तो उसने स्वभाववश ही किया। नीच और कपटी अपना स्वभाव नहीं छोड़ देते, संग या पूर्व किसी सुकृतके वश भलाई भले ही करने लगें। यथा—*'खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटै न मलिन सुभाउ अभंगू॥'* (बा० ७) तथा *'सुकृत न सुकृती परिहरै कपट न कपटी नीच। मरत सिखावनु देइ चले गीधराज मारीच ॥'* (दो० ४१) दोहावलीका यह दोहा स्पष्ट कह रहा है कि मारीचके आचरणसे हमें यह शिक्षा मिल रही है। स्वभावसे मनुष्य लाचार है—*'काल करम गुन सुभाउ सब के सीस तपत।'* पर प्रभु तो इसकी ओर ध्यान न देकर हृदयका प्रेम देखते हैं। भगवान्‌की प्रेरणासे उसने लीलामें सहायता की।

(ख) *'कपट कुरंगा।'* [**कपट**=बनावटी। अभिप्राय साधनेके लिये असली रूप छिपानेको 'कपट' कहते हैं। **कपटमृग**=मायामृग। कपटमृगका वर्णन मानसके अरण्यकाण्डमें तथा वाल्मीकीयमें विस्तारसे लिखा है। यथा—*'तब मारीच कपट मृग भयऊ॥ अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनकदेह मनिरचित बनाई॥ सीता परम रुचिर मृग देखा॥'* (अ० २७।२—४) देखिये।] 'कुरंग=मृग, हिरन, हरिण। '**कुरंग**' नाम देनेका भाव कि यद्यपि वह बहुत सुरंग (परम रुचिर) बना है तथापि '**कुरंग**' है, क्योंकि कपटका है।

करि छल मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥ ५॥
मृग बधि बंधु सहित हरि* आए। आश्रमु देखि नयन जलु छाए॥ ६॥

अर्थ—उस मूर्ख (रावण) ने छल करके *'बैदेही'* (भार्या-जानकी) को हर लिया। प्रभुका जैसा प्रभाव है वैसा उसे मालूम नहीं था॥ ५॥ भगवान् हिरनको मारकर भाईसमेत आश्रमपर आये। आश्रमको (खाली) देख नेत्रोंमें जल भर आया॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'करि छल ''''''''* इति। छल करके हरानेका अर्थात् युद्ध करनेका साहस न कर सका, युद्ध करके हरण करनेकी ताब न लाया; इसलिये छल किया। *'हरी बैदेही'* अर्थात् जब दोनों भाई कपट-मृगके पीछे चले गये तब अकेलेमें उनको हरा। *'करि छल'* क्या छल किया? छल यह कि मारीचको कञ्चनमृग बनाया और जब छलकारी मृगके पीछे दोनों भाई आश्रमसे चले गये तब स्वयं यति (संन्यासी) बनकर सीताजीके पास आया। यथा—*'होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥'* (अ० २५),*'सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कर बेषा॥'* (अ० २८)—[सीताजीको लक्ष्मणजीकी खींची हुई रेखासे बाहर निकाला—यह भी छल है। रेखाके लङ्घन करनेका भी साहस न हुआ। यथा—*'रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥'* (लं० ३५) किसी ग्रन्थान्तरमें कथा है कि उसने कहा—'हम बँधी भीख नहीं लेंगे।' अतएव संन्यासी जानकर वे भिक्षा देनेको रेखाके बाहर निकल आयीं, तब उसने हरा।]

टिप्पणी—२ *'मूढ़ हरी बैदेही'* इति। *'मूढ़'* कहकर उसका कारण बताते हैं—*'हरी बैदेही'* और *'प्रभु*

---

* प्रभु—१७२१, १७६२, छ०, भा० दा०, को० रा०, गौड़जी। हरि—१६६१, १७०४। 'हरि' का भाव टिप्पणी ५ में दे दिया गया है। 'प्रभु' पाठका भाव यह होगा कि मारीचको मारकर उसकी खाल ले आये, क्योंकि समर्थ हैं। पुनः भाव कि समर्थ होकर भी असमर्थकी तरह विलाप करने लगे।—इसके पूर्व चरणमें तो 'प्रभु' शब्द आ चुका है इससे भी हमने 'हरि' ही पाठको उत्तम समझा। प्राचीनतम और भावयुक्त तो है ही।

प्रभाउ तस बिदित न तेही।' अर्थात् वह प्रभुके वास्तविक प्रभावको यथार्थत: न जानता था, अत: उसे मूढ़ कहा। [दूसरे उसे, मिला क्या ? ***'बैदेही'*** ही तो! अर्थात् जिसके देह नहीं है उसीको तो हरा। माया-जानकी। जानकीजीका प्रतिबिम्ब ही तो हाथ लगा। यथा—***'निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसेइ रूप सील सुपुनीता॥'*** (अ० २४) भाव यह कि रावणने छल किया तो श्रीरामजीने भी उसके साथ वही माया (छल) रची।—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** गीताके इस वाक्यको यहाँ प्रभुने चरितार्थ किया। उसने भगवान्‌को 'मायामृग' दिया तो भगवान्‌ने उसको 'मायासीता' दी। जो दे सो पावे। उसने भगवान्‌के साथ छल करना चाहा सो वे तो ठगे गये नहीं, वह स्वयं ही ठगा गया। तिसपर भी वह मूर्ख समझता है कि मैं 'सीता' को हर लाया। यदि वह सीताजीको हर ले गया होता तो सतीजीको श्रीसीतासहित रामचन्द्रजीका दर्शन कैसे सम्भव हो सकता ? सतीजीको सीतासहित दर्शन हुआ; यथा—***'सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥ फिर चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥'*** (बा० ५४)''''''***'सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता॥'*** (बा० ५५) अतएव मूढ़ कहा।]

टिप्पणी—३ ***'प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही'*** इति। ***'जस'*** और ***'तस'*** का सम्बन्ध है। ***'तस बिदित न'*** से जनाया कि जैसा प्रभाव है वैसा नहीं जानता। भाव कि मोहवश होनेसे, मूढ़ताके कारण उसे संदेह ही बना रहा। यथा—***'सुररंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥ तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥ जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहौं नारि जीति रन दोऊ॥'*** (अ० २३) पुन: ***'तस बिदित न'*** का भाव कि वैसा नहीं जानता पर कुछ अवश्य जानता है। अभी-अभी मारीचने उसे प्रभुप्रताप कह सुनाया और समझाया है। यथा—***'जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हरको दंड। खरदूषन त्रिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥'*** (अ० २५) यह प्रभाव जाना है, इसीसे युद्ध न किया। मारीचने कहा था—***'जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहिं बिरोधि न आइहि पूरा॥'*** (अ० २५) और रावणको प्रभुके मनुष्य होनेका भ्रम है। इसीसे उसने सीताहरण किया।

नोट—१ इसका भाव यह भी हो सकता है कि यदि वह प्रभुका प्रभाव जानता तो निश्छल होकर शरणागत हो जाता, वैर न करता। यथा—***'जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना॥'*** (१।२७७) ***'बिस्मय हरषरहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥'*** (२।१२।३) ***'उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥'*** (सुं० ३४।३)

नोट—२ निश्छल होनेपर ही प्रभुकी प्राप्ति होती है यह न जाना, अत: ***'मूढ़'*** कहा। (वै०)

नोट—३ ***'तस'*** विशेषण पूर्व ***'जस'*** विशेषणका बोधक है। अन्वय होगा—***'जस प्रभाउ तस'***। यथा—***'तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी।'*** (अ० १७) ***'जो जसि करै सो तस फल चाखा।'***

नोट—४ बाबा जयरामदासजी रामायणी लिखते हैं कि 'रावणके सम्बन्धमें जो यह बात फैली हुई है कि उसने श्रीरामजीको ईश्वरावतार जानकर ही वैर बढ़ाया और अपने परिवारसहित मुक्त होनेकी चेष्टामें प्रवृत्त था, यह बात तुलसीकृत रामायणसे सम्मत नहीं है। इस ग्रन्थमें यही प्रमाण मिलता है कि रावणने केवल उस रात्रिमें ऐसा अनुमान किया था कि यदि भगवान्‌ने अवतार लिया होगा तो उनके बाणोंसे प्राण त्यागकर मुक्त हो जाऊँगा। परन्तु जब परीक्षाद्वारा भगवान् राजपुत्र निश्चित हो गये तो उसने अपने उस अनुमानको बदलकर दूसरे अनुमानको, जो भूपसुत होनेका था, पुष्ट और दृढ़ बना लिया, फिर ***'नृपनारी'*** जानकर ही श्रीसीताजीका हरण किया तथा सदैव उनके सम्बन्धमें कुमनोरथ सिद्ध करनेकी धुनमें रहकर प्राण गँवाया। उसने उनका नर होना ही निश्चित किया था। इसीसे तो याज्ञवल्क्यजी कह रहे हैं कि ***'प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही।'*** यदि वह भगवद्विमुख न होता तो वक्ता यह कैसे कहते कि ***'ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहु मन बिश्राम। भूत द्रोहरत मोहबस रामबिमुख***

रत काम॥'……ग्रन्थकार दूसरोंके द्वारा उसके 'नर' माननेका खण्डन कराते हैं; बार-बार समझानेपर भी उसका अटल विश्वास *'नर'* ही रहना लिखते हैं। फिर रावणके अपनी विजयके लिये अमर-यज्ञ करने, यज्ञका विध्वंस होनेपर जीनेकी आशा त्यागकर लड़ाईके लिये चलनेका वर्णनकर तथा उसके लिये *'रघुपतिबिमुख'*, 'शठ', 'हठवश' और 'अज्ञ' आदि शब्दोंका प्रयोगकर उसे स्पष्ट भ्रम और मोहमें पड़ा हुआ निर्णय कर दिखाते हैं।'……

'सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥' (अ० २८), *'एक बार बिलोकु मम ओरा॥'* (सुं०) और *'कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।'* (लं०)—इन तीन स्थलोंके सिवा और कहीं भी ऐसा प्रसङ्ग नहीं है जहाँ अनुमान लगानेवाले लोग अर्थमें खींच-तान करनेकी कल्पना भी कर सकेंगे। यदि रावणके मनके भीतर स्वप्नमें भी कोई दूसरा भाव होता तो ग्रन्थकारको उसे प्रकट करनेमें कदापि संकोच न होता, जिस प्रकार वालीके लिये लिख दिया गया है कि *'हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥'* उसी प्रकार रावणकी भी बात कह दी गयी होती। यदि रावणको यह निश्चित हो जाता कि श्रीरामजी नर नहीं हैं तो सारा ग्रन्थ ही विरोधमें परिणत हो जाता। क्योंकि सबके पहले ब्रह्मा और शिवका वरदान ही नष्ट हो जाता। भगवान्‌के रूपमें उसका वध ही सम्भव नहीं था। नर या वानर होकर ही उसे मारा जा सकता था। दूसरे, ब्रह्माके लेखकी मर्यादा ही जाती रहती। क्योंकि उन्होंने *'नर'* के हाथ उसकी मृत्यु लिख दी थी—*'जरत बिलोक्यों जबहिं कपाला। बिधिके लिखे अंक निज भाला॥ नर कें कर आपन बध बाँची।'* तीसरे, भगवत्सङ्कल्प नीचा हो जाता और जीवका ही संकल्प बढ़ जाता; क्योंकि भगवान् रामजी तो यह चाहते थे कि रावण मुझे ईश्वरके रूपमें न जान पावे। और रावण परीक्षा लेकर जान लेना चाहता था। इस तरह तो यह महिमा ही खण्डित हो जाती कि *'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई'* तथा *'राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥'*……' छठे यदि रावणको वास्तवमें आसुरी प्रकृतिवाला मानें तो फिर उसे भगवान्‌के स्वरूपका बोध होना शास्त्रविरुद्ध हो जाता है—*'तुम्हरी कृपा तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥'*……'

दूसरे पक्षवाले यह कहते हैं कि १—यह कहना कि भगवान् तो यह चाहते थे कि रावण 'मुझे ईश्वररूपमें न जान पावे' इसका उल्लेख ग्रन्थमें कहीं नहीं है। दूसरे यह बात सभी कल्पोंमें लागू होनी चाहिये, क्योंकि सबमें वरदान एकही-सा है। अन्य रामायणोंकी अवहेलना करनी उचित नहीं है। तीसरे प्रारम्भमें रावणको भ्रम होना अवश्य है जैसा—*'जौं भगवंत लीन्ह अवतारा'* से स्पष्ट है। परंतु यह भ्रम आगे जाता रहा तभी तो उसने *'मन महुँ चरन बंदि सुख माना।'* यहाँ उसने हृदयमें दृढ़ कर लिया कि ये जगदम्बा हैं। यह निश्चय उसने त्याग दिया इसका उल्लेख आगे कहीं नहीं है। रहा दुष्टवचन, जो उसने कहे और किसीका कहना न माना कि जानकीजीको दे दे। इसका कारण उसका दृढ़ संकल्प ही था जो उसने गुप्त रखा। यथा—*'मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा'* (३।२३) यदि ऐसा न करता तो श्रीरामजी उसे मारते ही क्यों ? अध्यात्मरामायणमें तो स्पष्ट ही है। जैसे श्रीरामजी अपनेको नर-नाट्यसे छिपाये हैं वैसे ही रावण भी अपने दृढ़ संकल्पको छिपाये हुए है। यहाँ *'मंत्र'* शब्द साभिप्राय है। मन्त्र वह है जो मनन करनेसे भवसागरसे रक्षा करता है—**'मननात्त्राणनान्मन्त्रः'**। मन्त्र गुप्त रखा जाता है, किसीसे प्रकट नहीं किया जाता—*'जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिय दुराऊ॥'* (१।१६८।४) **'आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्। तपो दानाऽपमानौ च नव गोप्यानि यत्नतः॥'** रावणने 'मन', 'कर्म' और 'वचन' तीनोंसे इसको गुप्त और दृढ़ रखा। जो संशय उसको खरदूषणवध सुनकर हुआ उसको दृढ़ करनेवाले खरदूषणवधसे भी अधिक बड़े-बड़े कार्य आगे हुए; जैसे कि वालीवध (कि जो वाली रावणको काँखतले दबाये रहा), समुद्रोल्लंघन, लङ्कादहन, एक ही वानरद्वारा अगणित प्रधान सुभट निशाचरोंका बध, सेतुबंधन, अंगद-पदारोपण इत्यादि। यही नहीं हनुमान्‌जी, मारीच, विभीषणजी, पुलस्त्यजी, माल्यवान्, अंगद, शुक-सारण और कुम्भकर्णतकसे इसके मनका संशय (कि ये भगवान् ही हैं) दृढ़ ही होता गया। इन

विशेष दृढ़ करनेवाले कारणोंके होते हुए यह क्योंकर समझा जाय कि वह संशय जाता रहा। मनसे यह संकल्प बाहर जाने न दिया, वचनसे कभी किसीसे न कहा और कर्मसे दृढ़ रखा कि जो कोई उससे कहता कि जानकीजीको दे दो तो उसे दुर्वचन कहता, लात मारता इत्यादि। क्योंकि दे देनेसे फिर 'जगदीश', 'प्रभु' के सरसे कैसे मरता ? वह प्रभुके हाथों मरकर मुक्त हो जाना निश्चय कर चुका है। इस संशयकी निवृत्तिका उल्लेख आगे नहीं है और न इस संकल्पके त्यागका। बल्कि उसके पूर्ण दृढ़ होनेका उल्लेख स्पष्टरूपसे *'मन महुँ चरन बंदि सुख माना।'* (३।२८) देख पड़ रहा है।

अध्यात्ममें तो रावणने मन्दोदरीसे स्पष्ट कह दिया है कि मैं जानता हूँ कि श्रीराम विष्णु हैं और जानकीजी लक्ष्मी हैं, उनके हाथसे मरकर परमपद प्राप्त करूँगा, यही विचार करके मैंने सीताहरण किया है इत्यादि, यथा—'**जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम्। ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद्बलात्॥ रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम्। विमुच्य त्वां तु संसाराद्गमिष्यामि सह प्रिये॥**' (अध्यात्म० युद्धकाण्ड सर्ग १० श्लोक ५७-५८) और हनु० ना० में विभीषणजीसे उसने कहा है कि मैं जानकीजी और मधुसूदन रामको भी जानता हूँ, अपने वधको भी जानता हूँ तथापि मैं दशानन हूँ, मैं जानकीको किस प्रकार दे सकता हूँ। यथा—'**जानामि सीतां जनकप्रसूतां जानामि रामं मधुसूदनं च। वधं च जानामि निजं दशास्यस्तथापि सीतां न समर्पयामि॥**' (हनु० ७।११)

इस प्रकार ईश्वरके जान लेनेसे वधमें बाधा तो दूर रही, उलटे यही सिद्ध होता है कि रावणको पूर्ण विश्वास था कि मनुष्य तो कोई उसे मार नहीं सकता जबतक कि भगवान् स्वयं ही मनुष्यरूपसे न अवतार लें। अध्यात्मके रावणका संकल्प मन-कर्म-वचनसे दृढ़ न था। इसीसे उसने अन्तमें मन्दोदरीसे कह ही दिया और मानसके रावणका संकल्प मन्त्रतुल्य था। इससे मन-कर्म-वचन तीनोंसे उसे रावणने गुप्त रखा और जब उसने गुप्त रखा तो कवि उसे कैसे प्रकट करता ? विधिका वचन असत्य होनेकी शंकापर दोहा ४९ में देखिये।

टिप्पणी—४ *'मृग बधि बंधु सहित हरि आए।'* इति। (क) मृगका वध करके तब भाईसहित आना लिखनेमें अभिप्राय है कि मृगवधके समय बन्धु लक्ष्मणजी साथ न थे। बीचमें मिले। अतः आश्रममें साथ-साथ आये। (ख) ऊपर कहा था—*'भएउ तुरत सो कपट कुरंगा।'* यहाँ *'मृग बधि'* कहकर कुरंगका अर्थ 'हिरन' है 'मृग' है—यह स्पष्ट कर दिया।

नोट—५ ☞इस ग्रन्थमें आदिसे अन्ततक इस बातका पूर्ण निर्वाह देख पड़ता है कि जहाँ विशेष माधुर्यका वर्णन आता है, वहाँ साथ-ही-साथ कवि सूत्रधारकी तरह ऐश्वर्य भी दिखा दिया करता है जिसमें पाठक सावधान हो जाय, उसको भूलकर भी कभी भगवान् श्रीरामजीमें नर-बुद्धि न आ जाय, उसको उनके चरितमें भ्रम न उत्पन्न हो जाय। ☞यहाँ दूसरे चरणमें *'आश्रम देखि नयन जल छाए'* कह रहे हैं, इसीसे प्रथम ही वक्ता यहाँ *'हरि'* और आगे चलकर *'नर इव'* आदि शब्दोंका प्रयोग करके पाठकको सावधान कर रहे हैं। इन शब्दोंसे ऐश्वर्यका दर्शन कराया है कि ये तो संसारभारके हरनेवाले हैं, जीवोंके मोह आदिके क्लेशोंके हरनेवाले हैं, प्राणियोंके जन्म-मरण आदि कष्टोंके निवारणकर्ता हैं, इत्यादि-इत्यादि। इनको दुःख कहाँ ? ये तो केवल नरनाट्य कर रहे हैं। यही बात वाल्मीकिजीने श्रीरामजीसे कही है; यथा—*'नरतनु धरेउ संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥'......'जस काछिय तस चाहिय नाचा॥'* (अ० १२७)

टिप्पणी—५ (क) *'मृग बधि'* के सम्बन्धसे भी *'हरि'* पद दिया। मारीचने मायामृगका तन धारण किया था, उस मायातनको भी मारा और असली मारीचतनको भी। दोनों शरीर हरण किये; अतः *'हरि'* कहा। श्रीजानकीजीने मायामृगको देखकर भगवान् रामसे कहा था कि *'एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥ सत्यसंध प्रभु बध करि एही। आनहु चरम कहति बैदेही॥'* (अ० २७)। यद्यपि मारीचने प्राण निकलते समय अपना पूर्वराक्षस-देह प्रकट कर दिया फिर भी ये तो *'हरि'* हैं, सत्यसन्ध हैं, उन्होंने बैदेहीजीके

वचनको पूरा करनेके लिये उसके मायावी शरीरको उससे अलग कर दिया और उसे भी मारकर साथ लाये। अतः *'हरि'* कहा। (विशेष आ० २७।१६) *'प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा'* में देखिये।

(ख) *'आश्रम देखि नयन जल छाए।'* अर्थात् आश्रममें श्रीजानकीजीको नहीं पाया, अतः प्राकृत नरवत् विरह और विलापका नाट्य करने लगे। यथा—*'आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥'* (अ० ३०)

नोट—६ *'नयन जल छाए'* अर्थात् स्नेह और विरह-शोकसे नेत्रोंमें आँसू भर आये, जैसा कि प्राकृत मनुष्योंका स्वभाव है। 'हरि' होते हुए ऐसा करते हैं, मानो सत्य ही जानकीहरण हो गया, न जाने कौन ले गया, वे कहाँ और कैसी होंगी, अब हमको मिलेंगी या नहीं, राक्षस खा न गये हों इत्यादि। पंजाबीजी लिखते हैं कि 'अत्यन्त शोक है।' सोचते हैं कि पत्नी बिना वानप्रस्थधर्म नहीं निभ सकता और सीताहरणसे दोनों कुलोंमें हमको कलंक लगेगा, अतः नेत्रोंमें जल भर आया।

वि० त्रि०—'**व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।**' अर्थात् मायावीके साथ जो माया नहीं करता, वह मूढ़ पराभवको प्राप्त होता है। अतः प्राकृत दीनकी भाँति विकल होना, यह रामजीकी माया है, जिसमें मायाकी जानकीको ही वह असली जानकी समझे रहे।

बिरह बिकल नर इव[1] रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥७॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह[2] दुखु ताकें॥८॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजी (प्राकृत) मनुष्योंकी तरह विरहसे व्याकुल हैं। दोनों भाई (मायाजानकीको) ढूँढ़ते हुए वनमें फिर रहे हैं॥७॥ जिसको (वास्तवमें) कभी भी संयोग-वियोग नहीं* उसमें प्रत्यक्ष विरह (जनित) दुःख देखा गया॥८॥

टिप्पणी—१ *'बिरह बिकल नर इव रघुराई।'* इति। यहाँ *'रघुराई'* एक वचन पद देकर जनाया कि केवल श्रीरघुनाथ (श्रीरामचन्द्र) जी विरहसे व्याकुल हैं। लक्ष्मणजी व्याकुल नहीं हैं। ये तो उनको समझाते हैं, यथा—*'लछिमन समुझाए बहु भाँती।'* (अ० ३०) लक्ष्मणजी विकल होते तो समझाते कैसे? [इसीसे एक चरण (पूर्वार्ध) में *'बिरह बिकल'* के साथ *'रघुराई'* शब्द दिया और दूसरे चरणमें (उत्तरार्धमें) उससे पृथक् 'खोजने' में *'दोउ भाई'* पद दिया।]

टिप्पणी—२ (क) [*'नर इव'* में वही भाव है जो (अ० ३०।६) *'भए बिकल जस प्राकृत दीना'* का है तथा—*'एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अतिकामी॥ पूरनकाम राम सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥'* (अ० ३०।१६-१७) में जो भाव हैं वे सब *'नर इव'* इस पदमें भरे हुए हैं।

☞ यहाँ विरहमें व्याकुल होना कहकर पुनः अगली अर्धालीमें ऐश्वर्य दर्शाते हैं। पुनः (ख) ब्रह्मादिके प्रार्थना करनेपर ब्रह्मवाणीने कहा था कि *'नारद बचन सत्य सब करिहौं।'* उसको भी यहाँ चरितार्थ करते हैं। नारद-वचन है कि *'नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी।'* अतएव विरहमें विकल होकर उनके वचन सत्य कर रहे हैं। और *'नर इव'* कहकर जनाया कि रावणको नररूपसे मारकर विधिका वचन सत्य करेंगे। पुनः भाव कि—(ग) विकलता ईश्वरमें नहीं होती इसीसे विरह-विकल होनेमें *'रघुराई'* नाम दिया। तात्पर्य

---

१. इव नर—१७२१, १७६२, भा० दा०। नर इव—१६६१, १७०४, छ०, को० रा०।

२. दुसह—१७२१, १७६२, छ०, को० रा०। बिरह—१६६१, ७०४। पूर्वचरणमेंके 'जोग बियोग' शब्दोंके सम्बन्धसे यहाँ 'बिरह दुखु' उत्तम है।

* भावार्थान्तर—१ 'जिन श्रीसीतारामजीको किसी कालमें संयोगका वियोग नहीं है। अर्थात् इनमें सदा एकरस संयोग रहता है, वियोग तो है ही नहीं।' (रा० प्र०)

२ 'जिनको न संयोग होनेका सुख और न वियोग होनेका दुःख होता है अर्थात् दोनों आनन्दमूर्ति हैं। दोनोंमें सदा एकरस संयोग है।' (वै०) ३—पं० रा० व० श० जीका मत है कि 'न संयोग है, न वियोग। क्योंकि संयोग होनेपर वियोग है और वियोग होनेपर ही संयोग कहा जाता है।'

यह है कि भगवान् माधुर्यमें व्याकुलता ग्रहण किये हुए हैं, इसीसे माधुर्यका नाम दिया और *'नर इव'* कहा। अथवा (घ) नारदजीने दो शाप दिये हैं, एक तो *'नृप तन'* धरनेका, दूसरा नारि-विरहमें व्याकुल होनेका। यथा—*'बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥'*......*'मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी॥'* (बा० १३७) भगवान् नृपरूप धरकर स्वयंवरमें गये थे, यथा—*'धरि नृपतनु तहँ गएउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥'* (बा० १३५) इसीसे *'रघुराई'* शब्द देकर *'सोइ तनु धरहु'* इस शापको सत्य किया। *'बिरह बिकल नर इव रघुराई'* में पूर्णोपमा अलङ्कार है।

टिप्पणी—३ *'खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई'* इति। *'खोजत बिपिन'* अर्थात् लता, तरु, पत्ती आदिसे पूछते हैं—*'पूँछत चले लता तरु पाती।'* इससे व्याकुलता दिखाते हैं। [☞ श्रीरामजी व्याकुल हैं, वे लता, तरु आदि इन सबोंसे पूछते हैं और लक्ष्मणजी इन्हें समझाते जाते हैं तथा चारों ओर दृष्टि जमाये खोजते भी जाते हैं।] खोजनेमें दोनों भाइयोंको कहते हैं। *'फिरत'* कहकर जनाया कि विश्राम नहीं लेते, बैठते नहीं, चलते ही रहते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि 'वनको खोजते फिरते हैं अर्थात् सारे वनमें कोना-कोना ढूँढ़ रहे हैं, वनका कोई भाग खोजनेसे छूटा नहीं।

टिप्पणी—४ *'कबहूँ जोग बियोग न जाकें।'* इति। श्रीरामजी विरहसे व्याकुल हैं, इसीपर कहते हैं कि 'जिसे कभी भी अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमेंसे किसीमें भी संयोग-वियोग नहीं, उसमें विरहदुःख प्रत्यक्ष देखा गया कि रो-रोकर विलाप करते हैं, भोजन-विश्रामादि त्यागकर खोजते फिरते हैं'—यह कैसे सम्भव है? तात्पर्य यह है कि सुख-दुःख योग-वियोगसे उत्पन्न होता है; जहाँ योग-वियोग ही नहीं है, वहाँ योग-वियोगजनित सुख-दुःख कैसे होगा ? जहाँ कारण ही नहीं, वहाँ कार्य कैसे सम्भव है? भाव कि ये सब रघुपतिके चरित हैं, जैसा वक्ता आगे स्वयं कहते हैं। इसीसे अरण्यकाण्डमें कहा कि *'बाहिज चिंता कीन्हि।'* [अद्वितीयको योग-वियोग कहाँ? योग-वियोग तो जीवको होता है, इसीको भ्रमका फन्दा कहा गया है। यथा—*'जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥'* (वि० त्रि०)]

टिप्पणी—५ *'देखा प्रगट बिरह दुख ताकें'* इति। यहाँ *'देखा प्रगट'* का भाव है कि इनके विरह दुसह दुःखको संसार जानता है; यथा—*'एक राम अवधेसकुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥ नारि बिरह दुखु लहेउ अपारा॥'* (बा० ४६)

नोट—१ (क) श्रीशुकदेवलालजी, बैजनाथजी और पंजाबीजी *'देखा प्रगट'* का भाव यह कहते हैं कि यह विरह-दुःख केवल दिखावामात्र है, देखनेभरका है, आरोपितमात्र है। वास्तवमें दुःख नहीं है। साधारणलोगोंको दुःख-सा देख पड़ता है। (ख) जोग (योग)=मेल, मिलाप, संयोग। **बियोग**=मेल वा साथका छूट जाना; जुदाई। **प्रगट**=प्रत्यक्षमें, जाहिरमें। (ग) यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है। क्योंकि यहाँ विरोधी पदार्थोंका वर्णन किया गया है। ऐसा वर्णन वर्णनीयकी विशेषता या उत्कृष्टता जनानेके लिये होता है। (अ० मं०)

* गोस्वामीजीकी सावधानता *

☞ पं० श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी—भगवान् स्वयं रसस्वरूप हैं, आनन्दस्वरूप हैं। भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य विषयको लेकर अथवा भगवान्‌को भूलकर जहाँ रसकी अनुभूति होती है, वहाँ रस है ही नहीं, रसाभासमात्र है। संसारके जितने विषय हैं, जितने नायक-नायिका हैं, उनको लेकर जिस रसका प्रातीतिक अनुभव होता है, उसे सत्य, नित्य और स्थायी रस नहीं कहा जा सकता। यह 'ब्रह्मास्वादसहोदर' होनेपर भी 'ब्रह्मानन्द' नहीं है। परन्तु भगवान् नित्य सत्य हैं, उनकी लीला नित्य सत्य है, इसलिये उन्हें आलम्बन बनाकर जिस रसकी अनुभूति होती है, वह रस वास्तवमें रस है, ब्रह्मानन्द है और एक अर्थमें तो ब्रह्मानन्दसे भी बढ़कर है।.........

भगवान् राम अपने रसस्वरूपका अनुभव करानेके लिये ही अवतीर्ण होते हैं और अनेकों प्रकारकी रसमयी लीला करते हैं। उनके अवतार और लीलाका उद्देश्य ही यह है कि लोग प्राकृत रसाभासमें न भूलकर वास्तविक रसका आस्वादन करें। भगवद्विषयक रस अप्राकृत रस है। महात्मालोग उसी रसका

वर्णन करते हैं। वे उस रसका वर्णन करनेके लिये थोड़ी देर कवित्वको अपना लेते हैं। वे जीवनभर और जीवनके परे भी महात्मा हैं। परन्तु कुछ समयके लिये कवि भी हैं। उनका जीवन काव्यनिर्माणसे शून्य हो सकता है परन्तु महात्मापनसे शून्य नहीं हो सकता। भगवान्‌की स्मृति उनका स्वभाव है और कवित्व आगन्तुक। इसीसे जब वे कविता लिखते हैं तब भी उनका स्वभाव काम करता रहता है और वे यही चाहते हैं कि कभी एक क्षणके लिये भी मैं भगवान्‌को न भूलूँ और इस लीलाको पढ़नेवाला भी न भूले। वे बड़ी सावधानीसे इसपर दृष्टि रखते हैं कि कहीं कोई भगवान्‌को केवल मनुष्य न समझ ले। वह भगवान्‌की स्मृतिसे च्युत हो जायगा, उसके हृदयमें भगवान्‌के प्राकृत होनेका संदेह आ जायगा और वह सच्चे रससे वञ्चित रहकर अन्य अस्थायी सांसारिक रसोंमें फँस जायगा। इसके लिये महात्मालोग भगवान्‌की भगवत्ताका स्थान-स्थानपर स्मरण दिलाया करते हैं। वे कविताके प्रवाहमें बहकर किसी भी दशामें केवल कवि नहीं हो जाते, सर्वदा वे भक्त अथवा महात्मा ही रहते हैं। श्रीगोस्वामीजीके जीवनसर्वस्व श्रीरामचरितमानसमें इस भावपर सर्वत्र दृष्टि रखी गयी है। वे भगवान्‌की मनुजरूपके अनुरूप होनेवाली लीलाओंका वर्णन करते हैं और बार-बार स्मरण दिलाते रहते हैं कि ये भगवान् हैं, यह बात मत भूलो। केवल गोस्वामीजी ही नहीं, भगवान्‌की लीलावर्णन करनेवाले सभी महात्माओंने इस ओर दृष्टि रखी है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णके लीलावर्णनके प्रसङ्गमें ठीक ऐसी ही बात आयी है। केवल भागवतमें ही नहीं, सभी आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर भगवान्‌की भगवत्ताका स्मरण दिलाया गया है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासने भी इस बातपर बड़ा ध्यान रखा है और चेष्टा की है कि कहीं भगवान्‌की विस्मृति न हो जाय। भगवान्‌को केवल मनुष्य मानना अथवा उन्हें भूल जाना बड़ा भारी प्रमाद है, प्रमाद ही मृत्यु है, मृत्युसे रक्षा करनेके लिये ही महात्माओंकी वाणी है।

श्रीमद्गोस्वामीजीने श्रीमद्भागवतकी भाँति भगवान्‌के विद्याध्ययनके प्रसंगमें कहा है—*'जाकी सहज श्वास श्रुतिचारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥'* रामको सीताके विरहमें विलाप करते हुए देखकर स्मरण कर लेते हैं—*'पूरनकाम राम सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥''* और मेघनादके द्वारा नागपाशमें बँध जानेपर उनके मुँहसे स्वभावतः ही निकल पड़ता है—*'नर इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥'*

कहाँतक उद्‌धृत किया जाय? श्रीगोस्वामीजीने सर्वत्र इस दृष्टिका निर्वाह किया है। वास्तवमें यही विशुद्ध रस है। भगवान्‌को भूलकर लोग इन क्षणिक रसाभासोंमें न भूल जायँ, नित्य सत्य रस प्राप्त करें। इनकी कविताकी यही मूल प्रवृत्ति है और यही सर्वथा उचित भी है। भगवान् हम सबपर कृपा करें कि हम उनके स्वरूपभूत नित्य सत्य रसका अनुभव प्राप्त करनेके अधिकारी बन सकें। (कल्याण १३।२)

श्रीविन्दुब्रह्मचारीजी (श्रीअयोध्याजी)—श्रीमद्गोस्वामीजीने नैमित्तिक रामचरितको नित्य रामचरितसे मिला-सा दिया है और माधुर्यको ऐश्वर्यसे वे इस प्रकार एक करते गये हैं कि इसकी पूर्णताकी तनिक भी हानि नहीं हुई है। यह गोस्वामीजीका अपूर्व कौशल है।

नोट—२ पूर्व अन्यत्र भी इस सम्बन्धमें लिखा जा चुका है। प्रो० श्रीरामदास गौड़जीका मत है कि बारम्बार ऐश्वर्यका स्मरण दिलाकर उन्होंने महात्मा श्रीकबीरजी और श्रीगुरुनानकजीके निर्गुणवाद वा दाशरथि-साकेतविहारी रामसे कोई भिन्न रामके प्रतिपादनका खण्डन श्रीशङ्करजी एवं श्रीयाज्ञवल्क्यजीके तथा श्रीभुशुण्डिजीके वाक्योंद्वारा किया है। वे पंथ उनके समयमें काफी जोर पकड़ रहे थे, जिससे नास्तिकता फैल रही थी और जनता भ्रममें पड़ रही थी। भ्रमको मिटानेके लिये जहाँ-तहाँ ऐसे नर-नाट्य आते हैं, वहीं तुरन्त वे पाठकको सावधान करते हैं।

पं० बलदेवजी उपाध्याय एम्० ए०—श्रीरामचन्द्रके विषयमें तुलसीदासकी कौन भावना थी, इसे उन्होंने अपने ग्रन्थमें अनेक स्थानोंमें स्पष्टरूपसे प्रदर्शित किया है। श्रीरामजी स्वयं भगवान्‌के रूप हैं और श्रीजानकीजी साक्षात् शक्तिरूपा हैं। रामसे ही क्यों, रामके रोम-रोमसे करोड़ों विष्णु, ब्रह्मा और शिवजीकी उत्पत्ति होती

रहती है; उसी प्रकार श्रीसीताजीके शरीरसे करोड़ों उमा, रमा और ब्रह्माणीका आविर्भाव हुआ करता है। दो शरीर होनेपर भी उसमें नैसर्गिक एकता बनी हुई है। सीतारामजीकी परिदृश्यमान अनेकतामें भी अन्तरङ्ग एकता-वर्णन तुलसीदासजीने बड़ी मार्मिकताके साथ किया है—'*गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। बंदउँ सीतारामपद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥*' इस प्रकार दो प्रकारके उदाहरणोंको रखते समय गोसाईंजीने इन्हें सर्वसाधारणके लिये बोधगम्य ही नहीं बनाया है, प्रत्युत शक्तिरूपिणी सीता और शक्तिमान्-स्वरूपी रामके द्विविध उपासकोंको पृथक्‌रूपसे पर्याप्त मात्रामें सन्तुष्ट कर दिया है। इस प्रकार युगल सरकारकी मनोरम जोड़ीकी वास्तविक एकताको गोसाईंजीने स्पष्टरूपसे प्रदर्शित किया है।

यही कारण है कि रामचरित्रका वर्णन करते समय तुलसीदासजीने उनके वास्तविक रूपको कहीं नहीं भुलाया है, बल्कि पाठकोंको बार-बार याद दिलाया है कि केवल नरलीला करनेके विचारसे ही सरकार ऐसा चरित कर रहे हैं, अन्यथा ये तो साक्षात् परमात्मा ठहरे, उनको किसी प्रकारका क्षोभ नहीं, किसीपर क्रोध नहीं, सुवर्णमृगपर भी किसी प्रकारका लोभ नहीं, इत्यादि। मायामृगके पीछे मनुष्यलीला करनेके लिये जो दौड़े चले जा रहे हैं, वे वही व्यक्ति हैं जिनके विषयमें श्रुति नेति-नेति कहकर पुकार रही है और शिवजी भी जिनको ध्यानमें भी नहीं पाते—'*निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा॥*' [इसी प्रकार यहाँ मायामृगका वधकर आश्रमपर आकर उसे खाली पाकर उनके नेत्रोंमें जल भर आया, वे विरहसे व्याकुल हैं, पर भक्त कवि हमें भूलने नहीं देते। '*बिरह बिकल नर इव रघुराई। ....*' कहकर बताते हैं कि ये वही हैं कि '*कबहूँ जोग बियोग न जाके।*' इत्यादि।]

ऐसे प्रसङ्गोंकी बाहुल्यताको देखकर कुछ आलोचक गोस्वामीजीपर तरह-तरहका आक्षेप किया करते हैं। उनसे मेरा कहना है कि उन लोगोंने तुलसीदासके दृष्टिकोणको भलीभाँति परखा ही नहीं। यदि वे श्रीरामविषयक उनकी भावनाका ऊहापोह किये रहते तो इस प्रकारकी अनर्गल आलोचना करनेका दुःसाहस नहीं करते। व्यापक दृष्टिसे देखनेपर मानसमें कोई भी प्रसङ्ग आक्षेप करनेलायक नहीं है।

गोसाईंजीने उत्तरकाण्डमें ज्ञान और भक्तिके विषयोंमें अपने विचारोंको स्पष्टरूपसे बड़ी खूबीके साथ दिखलाया है। उस प्रसंगके अवलोकन करनेसे भक्तिकी प्रधानता स्पष्ट ही प्रतीत होती है। (उनके मतानुसार) भक्ति और ज्ञानमें आकाश और जमीनका अन्तर है—महान् भेद है। इस कारण गोसाईंजीने अपना सिद्धान्त स्पष्ट शब्दोंमें प्रदर्शित किया है—'*सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि*........*यह सिद्धांत अपेल।*........'

वाल्मीकिरामायणमें कर्मको आधार मानकर लीलाएँ वर्णित की गयी हैं, अध्यात्मरामायणमें ज्ञानको आश्रय देकर और रामचरितमानसमें भक्तिपक्षको लेकर। इस प्रकार तीनों रामायणोंद्वारा एक-एककी पूर्ति होती है, पुनरुक्ति नहीं। यही कारण है कि देववाणीमें लिखे गये आदिकवि वाल्मीकिके द्वारा निर्मित रामायणके रहते हुए भी विवेकी पण्डितजन भाषामें भी लिखे गये मानसका अध्ययन प्रेमसे करते हैं और उसमें सानन्द अवगाहन कर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। (कल्याण १३—२)

नोट—३ ऊपर कहा था कि '*पिता बचन तजि राज उदासी*' और यहाँ कहते हैं कि '*मृग बधि बंधु सहित हरि आए।*' 'कहाँ तो उदासी और कहाँ मृग-वध—ये दोनों परस्पर विरोधी बातें है। जब उदासी वेषका वचन था तब धनुष-बाण कैसे धारण किये रहे और मृगादिका वध कैसे करते रहे?' यह शङ्का जब-तब रामायणसे अनभिज्ञ लोग किया करते हैं। इस विषयमें दो-तीन बातें ध्यानमें रखनेसे शङ्का-समाधान आप-से-आप हो जाता है। एक तो यह कि 'कैकेयीजीने क्या वर माँगा।' दूसरे, जो वेष उन्होंने धारण किया, वह कैकेयीके सामने या उनकी दृष्टिसे बाहर ? तीसरे, धनुष-बाण धारण करना कैकेयीके मतमें था या नहीं। चौथे, श्रीरामजी सत्यसंकल्प हैं न ? सत्यव्रत हैं न ?

कैकेयीजीने माँगा था—'*तापस बेस बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥*' एवं '*होत प्रात मुनिबेष धरि जो न राम बन जाहिं।*' कैकेयीने स्वयं मुनिवेष अपने सामने धारण कराया। यथा—'*मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदुबानी॥ राम तुरत मुनिबेष बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥ सजि*